

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
lit. mag
साक्षात्कार
अंक : 445, जनवरी 2017
Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Gra

प्रकाशन

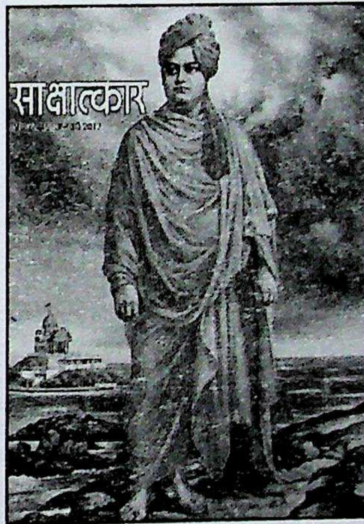
साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

निमाड़ी साहित्य का इतिहास **प्रधान संपादक : देवेन्द्र दीपक** **लेखक : श्रीराम परिहार**	100.00
मालवी साहित्य का इतिहास **प्रधान संपादक : देवेन्द्र दीपक** **लेखक : श्याम सुंदर निगम**	150.00
बुंदेली साहित्य का इतिहास **प्रधान संपादक : प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल** **लेखक : डॉ. आरती दुबे**	380.00
बघेली साहित्य का इतिहास **प्रधान संपादक : प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल** **लेखक : डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी**	190.00
साहित्य का भोपाल संदेश **प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल**	25.00
साहित्य के शाश्वत प्रतिमान **प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल**	50.00
प्रधान संपादक : डॉ. उमेश कुमार सिंह **लेखक : शंकर दयाल भारद्वाज** हमारे छत्रसाल	80.00

साक्षात्कार के उपलब्ध विशेषांक

(सिंहस्थ अंक मई 2016, आपातकाल अंक जून 2016, तस्मै श्री गुरवे नमः जुलाई 2016 छत्रसाल विशेषांक दिसंबर 2016, विशेष पठनीय सामग्री के साथ उपलब्ध हैं)

(जून-जुलाई 05, जून-अगस्त 06, जून-जुलाई 09) प्रवासी भारतीय हिन्दी लेखन प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, कश्मीर विस्थापन तथा नरेश मेहता पर केन्द्रित विशेषांक



उमेश कुमार सिंह
संपादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जनवरी-2017
(पौष, वि.सं. २०७३)
445

संपादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/संपादक, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-3

फ़ोन : 0755 : 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए	:	₹ 250
संस्थाओं के लिए	:	₹ 300
आजीवन	:	₹ 3,000

यह अंक : ₹ 25

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर 'निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल' के नाम स्वीकार्य होंगे।

सदस्यता हेतु सीधे आनलाइन शुल्क निम्न खाते में जमा कर सकते हैं-
State Bank of India A/c No. 53023548072
SBIN0030005

सम्पादन एवं कार्यालयीन सहयोग : रामनिवास झा, के. के. शर्मा

प्रसार : साबिर रहमान, फोन 2554782 (कार्यालयीन समय में)

शब्द संयोजन : राकेश सिंह, सुशील घोटे

प्रूफ रीडिंग : जया केतकी शर्मा

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद का मासिक प्रकाशन

ISSN : 2456-1924

अनुक्रम

सम्पादकीय

मैं उस देश का प्रतिनिधित्व करता हूँ

(एक)

मन में विचार आया विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव देखा जाए। देश के ख्यातिलब्ध विद्वानों से जब परामर्श किया तो उनकी ओर से प्रसन्नता व्यक्त की गई। 'बहुत अच्छा विषय है।' किन्तु जैसे ही अगला अनुरोध रखा कि 'आपसे इस पर एक आलेख चाहिए', तो स्वर कुछ बदल-सा गया। विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव? 'अरे भई! देखना पड़ेगा और सच कहूँ तो बहुत पढ़ना पड़ेगा। इस विषय में तो अभी तक सोचा ही नहीं था। फिर विवेकानन्द का साहित्य पर क्या प्रभाव हो सकता है?' विद्वानों के संदेश मिले 'क्षमा के साथ आलेख भेज पाना संभव नहीं'। सोचने लगा, अभी-अभी देश विवेकानन्द जी के जन्म के डेढ़ सौवें वर्ष को मना रहा था। उनके वक्तव्यों पर ढेर सारा साहित्य सामने आया। तमाम विश्वविद्यालयों से लेकर महाविद्यालयों में भाषण, निबन्ध प्रतियोगिताएँ, व्याख्यानमालाएँ सम्पन्न हुईं। जब विषय भारतीय साहित्य पर प्रभाव का आया तो किन्तु परन्तु सामने आने लगे।

क्या वास्तव में ऐसी स्थिति है? जिस राष्ट्र का प्राणतत्व 'अध्यात्म' कहा जाता है, जिसे नैमीसंस्कृति का देश कहा जाता है। जिसमें रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द जैसे केन्द्र उनके विचारों को वर्षों से प्रबोधित कर रहे हैं। इतना ही नहीं तो देश की राष्ट्रीय सेवा योजना जैसी कई सरकारी संस्थाओं के विवेकानन्द प्रतीक पुरुष हैं,उस देश के साहित्य में विवेकानन्द के प्रभाव की पड़ताल एक असाध्य नहीं तो दुरूह-सा कार्य अवश्य महसूस हुआ। वे बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने सचमुच इस पर कलम चलाई।

इस देश के साहित्य में कालमार्क्स का प्रभाव है, इसकी तलाश गौरव का विषय है? इस देश के साहित्य में गांधी का प्रभाव है, यह गौरव का विषय है ही। किन्तु जब विवेकानन्द के प्रभाव की बात आती है तो कुछ अटपटा-सा उत्तर आता है। क्या सचमुच विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव नहीं है? प्रश्न यह है कि विवेकानन्द का साहित्य में प्रभाव के मायने क्या होता है? स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में ही इसे समझना चाहिए ,''हम में से हर एक को यह अनुभव करना चाहिए कि चारों ओर शुभ लक्षण दिख रहे हैं और भारतीय आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों की फिर से सारे संसार पर विजय होगी।.. ..क्या हमें केवल अपने ही देश को जगाना होगा? नहीं, यह तो एक तुच्छ बात है। मैं एक कल्पनाशील मनुष्य हूँ और मेरी भावना है हिन्दू जाति की सारे संसार पर विजय..। फिर से, भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करनी होगी। यही मेरे जीवन का स्वप्न है और मैं चाहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक जो मेरी बातें सुन रहा है, अपने-अपने मन में उसी स्वप्न का पोषण करें और उसे, कार्य-रूप में परिणत किये बिना न छोड़ें।.. .. अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमें जगत् को जीतना होगा। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है, अवश्यमेव, हम अब करें या मरें। सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिए बस यही एक शर्त है कि भारतीय विचार, विश्व पर विजय प्राप्त करें।''

क्या इस दृष्टि की जानबूझकर सोची समझी रणनीति के तहत उपेक्षा नहीं हो रही है? हमारी पूरी युवा पीढ़ी साहित्य में आखिर कब तक मार्क्स का प्रभाव ढूँढ़ेगी? क्या आज केरल और पश्चिम-बंगाल में 'राष्ट्रीय चिति' की हत्या, मार्क्स को ढूँढ़ने का ही परिणाम नहीं है? सत्य तो यह है कि मार्क्स के अनुयायिओं ने न केवल अपनी 'राष्ट्रीय चिन्तन दृष्टि' खोई है, बल्कि भारतीय युवा की जिसे स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, (we wants a man with 'M') अर्थात् महान लक्ष्यपोषी युवा शक्ति के 'राष्ट्रसर्वोपरि' विवेक को भी भ्रमित किया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि साहित्यकार आत्ममुग्ध हो कर हतोत्साहित-सा पृष्टपेषण की भूमिका में आ गया है। उसे जगना ही होगा, यही समय की माँग है, यही विवेकानन्द को देखने और समझने का नज़रिया है।

(दो)

वस्तुत: विवेकानन्द अर्थात् वेदान्त। विवेकानन्द अर्थात् व्यवहारिक वेदान्त। विवेकानन्द अर्थात् भारतीय 'चिति'। विवेकानन्द अर्थात् 'कवष् ऐलूष' नामक (शूद्र) की खोज। उस ऋषि के 'अक्षसूक्त' और ऋगवेद की पूरी परम्पर को खँगालना। विवेकानन्द अर्थात् अथर्वा (शूद्र) के उस विषय को तलाशना जिसमें उसने राज शासन, वैद्यक, गृह निर्माण, सौतियाडाह जैसे खाटी विषय पर अथर्ववेद लिखा। विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव अर्थात् बाल्मीकि की लोकभाषा, वैदिक भाषा, वैदिक स्वरूप की उस स्थिति की खोज जब वैदिक भाषा इतिहास की वस्तु बनती जा रही थी। वैदिक स्वरूप मात्र माइथोलोजी के अंग बन रहे थे। इतना ही नहीं यह उस अन्वेषण की दिशा होगी जिसमें वाल्मीकि संस्कृति के आदि कवि बने। विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव का अर्थ है, सम्बूक के यज्ञकाल में 'तप' की स्थापना। श्रमणी शवरी की शरणागति। वीर हनुमान का नया युगान्तकारी राष्ट्र-राम के प्रति सेवा भाव। तुलसी का दास्यभाव और सामाजिक समरसता के लिए सूर का सखा भाव।

जब-जब वैदिक वाङ्मय पर संकट आया तब-तब किसी न किसी ने उस पर अपनी कलम चलाई। यही कारण है कि वेद के दुरूह काल में ऐतरेय (शूद्र) ने ब्राह्मण ग्रंथ रच कर वेदों पर टिप्पणी उपस्थिति की। महाभारत के युद्ध पश्चात बौद्धिक चेतना को लगे गहरे आघात को याज्ञवल्क्य का बचाना उसी परम्परा की खोज है, जिसे विवेकानन्द शिकागों में जा कर प्रारम्भ करते हैं। जब हम विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव खोजते हैं तो हमें ऋषि उद्दालक मिलते हैं, जो श्वेतकेतु को न केवल 'तत्वमसि' का संदेश देते हैं, बल्कि भारतीय 'परिवार' परम्परा की नीव भी रखते हैं। विवेकानन्द का व्यवहारिक वेदान्त हमें बुद्ध और महावीर को नये सिरे से खोजने का संकेत करता है। वह स्पष्ट करता है कि जब-जब इस देश में संकट आया तो उसका कारण विज्ञान और अध्यात्म अथवा धर्म के समन्वय की कमी रही है। इतिहास से ध्यान में आता है कि सिकन्दर इस देश में विजयी नहीं बताया जा सकता था, यदि हाथी को घोड़े के साथ लड़ने को मजबूर नहीं किया जाता। यहाँ हमने अध्यात्म को खोजा किन्तु विज्ञान को अमान्य किया। हाथी यदि अध्यात्म का प्रतीक है तो घोड़ा 'अश्वशक्ति' विज्ञान ही तो है। सोमनाथ का मंदिर टूटना हमारी धर्म की आस्था को विज्ञान से काट कर देखने का परिणाम था। यह व्यावहारिक वेदान्त की उपेक्षा थी।

वस्तुत: यदि हम साहित्य में बाल्मीकि, व्यास, तुलसी, सूर, रसखान से रवीन्द्र, शरतचन्द्र और अरविन्द को भी लेकर भारतीय चिति को खोजते हुए विवेकानन्द के माध्यम से भारतीय दृष्टि को स्थापित करते आते तो आज कालमार्क्स की व्याख्या करने का अवसर हम अपनी नई पीढ़ी को न देते। देश के अन्दर जो सिद्धांत और व्यवहार की लम्बी खाई खड़ी हुई है, सम्भवत: वह इतनी गहरी न होती। देश का सत्ता वर्ग वोट की खातिर आरक्षण का गीत न गाता। जाति, प्रांत, भाषा के आधार पर देश के अन्दर प्रश्न नहीं खड़े होते। समझौते, समन्वय और सेक्युलरिज्म के नाम पर गंगा-जमुनी संस्कृति को न दुहराना पड़ता। महिला और दलित विमर्श न करना पड़ता।

मुझे यहाँ जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान पाल डायसन का स्मरण हो रहा है। वे उपनिषदों को मूल संस्कृत में अध्ययन कर अपनी टीप देते हुए अपनी पुस्तक (philosophy of the upanishads) में लिखते हैं,'उपनिषद के भीतर,जो दार्शनिक कल्पना है, वह भारत में तो अद्वितीय है ही, सम्भवत: सम्पूर्ण विश्व में अतुलनीय है।' (Philosophical conceptions unequalled in India or perhaps any where else in the world)

तात्पर्य यह कि व्यवहारिक वेदान्त की यह भारतीय वैश्विक-सांस्कृतिक-चिति, भारतीय मनीषा के उत्क्रमण की यह शोध दृष्टि, दुनिया को भारतीय नवोन्मेषी चिति को समझने-समझाने का उपक्रम सिद्ध होगी। साहित्यकार को यह चिंतन धरोहर के रूप में आने वाली पीढ़ी को सौपना है।

(तीन)

'कंपहि लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा।।' आसुरी सत्ता जब अनीति का पर्याय बन कर रावण स्वरूप प्रकट हो जाय तो जन-राष्ट्र रूपी मंदोदरी असहज-सी दिखाई देती है। रावण से सभी लोकपाल तक डरते हैं। काल उसका ड्योढ़ीदार है। मंदोदरी जो पटरानी भी है उसके भविष्य के लिए आशंकित है, डरी-सहमी है। 'अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलउ सभा ममता अधिकाई।।' अपने आश्वासन से मंदोदरी को आश्वस्त नहीं कर पा रहा है। कारण रावण को वही दरवारी प्रिय हैं जिनके बारे में तुलसी आगे लिखते हैं, 'सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राज धर्म तन तीनि कर होई बेगिहीं नास।।' आसुरी सत्ता की प्रभुता और उसका सामर्थ्य कितना भी हो यदि वह भय से राज्य करता है तो उसका भविष्य ठीक नहीं है। यह बात हमारे देश के स्वतंत्रता पश्चात के राज्यकर्ताओं के व्यवहार और उनके स्वयं के अनुभव से सिद्ध हुआ है।

संविधान के चार सोपान अधिकार सम्पन्न हैं। इन चारों के अन्दर भय के अधीन प्रिय बोलने की आदत हो गई है। एक-दूसरे से सुरक्षा प्राप्ति हेतु 'लोकपाल' चाहिए। लोकपाल किसके लिए 'सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय'। अर्थात् विधि का शासन चाहिए। भारत में दो प्रकार के शासन हैं, एक विधि का जिसकी सरकार है, संविधान है। दूसरी आसुरी सत्ता- अपराधी की, आतंकी की, धन की, धनपतियों की। कुल मिलाकर दूसरी सत्ता का आधार धन है। पुलिस धन से डरती है। न्याय का तराजू धन के भार से एक तरफा झुक जाता है। सत्ता धन से लड़खड़ाती है। कार्यपालिका धन के चरण चुम्बन करती नहीं थकती। ऐसे में सभी चारों पायों की माँग 'लोकपाल' की है। किन्तु 'लोकपाल' क्या इन चारों का कवच बनेगा या जन का कवच बनेगा? जब अहर्निश हिरण्याक्षों के कारण अनाचार, अत्याचार, पापाचार, आतंक होगा, हमारे ही राष्ट्रघातियों के कारण सीमापार से घुसपैठ होगी, देश के प्रति निष्ठा की हुंकार भरने वाले राष्ट्र के खजाने के साथ ही अपघात कर कालेधन को सफेद करेंगे, तब लोकपाल क्या करेंगे?

लोकपाल में लोक समाहित है। किन्तु वही लोक तुलसीदास के शब्दों में 'लोकप जाके बंदीखाना' है। रावण रूपी काला धन सभी को भयभीत कर रहा है, 'लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमे'। इतना ही नहीं तुलसी अन्दर से भविष्य के इस दानव से इतना आशंकित हैं कि वे कहते हैं,'पावकु पवनु पानी भानु हिमवानु जमु कालु लोकपाल मेरे डर से डाँवाडोल हैं।' विनयपत्रिका में आता है,'लोकपाल सोक-विकल रावन-डर डरत।' गीतावली में भी यही प्रश्न है,'लोकपाल सुर नाग मनुज सब परे बन्दि कब मुकतावहिंगे।'

मैं लोकपाल की चर्चा इस तरफ ले जाना चाहता हूँ कि लोकपाल का 'पाल' सर्वत्र व्याप्त है, कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका आदि के साथ पत्रकारिता में भी। रावण रूपी धनपाल के सामने यह सभी पाल नतमस्तक हैं। भारत में पौराणिक काल से आकाश, वायु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, कुबेर आदि लोकपाल थे। लेकिन सभी के सभी रावण के आधीन थे। रावण के यहाँ मन्दोदरी (नैतिक मूल्य) की सत्ता सीमित थी। वह विधायिका की कार्यपालिका

नहीं थी। अपितु धन-डान (रावणी कृत्य से) की तरह वह सीता (अपहृत नैतिक मूल्य) की भोगवादी दृष्टि से सशर्त अनुचरी भी बनाई जा सकती थी।

अब जरा विचार करें तो स्पष्टतया दो पक्ष सामने आते हैं, एक ओर सीता और मंदोदरी है, जो भारतीय संस्कृति हैं। भारतीय अस्मिता है। दूसरी ओर धन-पशु रावण है जो पूरी संस्कृति को आच्छादित करना चाहता है। क्या ऐसे में देश का प्रधानमंत्री अकेले 'लोकपाल' की भूमिका में हो सकता है? नहीं। इसमें जन को, लोक को आगे आना पड़ेगा। हमारा वैदिक ऋषि कहता है,' इंद्रम वर्धन्तो असुर: कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नतो अरावण:। अर्थात क्रियाशील बनो, (राष्ट्रीयत्व)प्रभु-महिमा का प्रचार करो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ, विश्व को आर्य बनाओ, राक्षसों का संहार करो।'

वस्तुत: साहित्यकार का अपना एक मूल्यबोध होता है। अज्ञेय जी लिखते हैं, 'मूल्य या प्रतिमान, शब्दार्थ की दृष्टि से शाश्वत भले ही न हों, स्थायी अवश्य होते हैं।' जब तक इस लोकपाल की भूमिका को रेखांकित करने का कार्य साहित्यकार अपने मूल्यबोध से और स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि (व्यवहारिक वेदान्त)से नहीं करेगा तब तक अर्थ-प्रधान रावण का आतंक समाप्त करना या रोकपाना लोकपाल के सामर्थ्य के बाहर होगा। लोक हमारी ओर देख रहा है।

(चार)

'अथतो भारत जिज्ञासा।' अब जरा भारत का विचार करें। यह कोई वैदिक मंत्र नहीं, उपनिषद की जिज्ञासा नहीं, आप्त वचन है। भूमि की भौगोलिक सीमा अस्थायी होती है। वह दो-चार पीढ़ियों से लेकर दस-बीस पीढ़ियों तक की यात्रा करते सिमटती, सिकुड़ती-फैलती-विस्तारित होती रहती है। किन्तु लोक का प्रवाह कभी जन से एकला चलो, तो कभी समवेत का स्वर बन कर उभरता है। सार्वभौमिकता कभी अपनी, कभी पराई दिखती है, किन्तु वह तब तक विश्रृंखलित नहीं होती, जब तक वह जन के अन्दर 'स्व' के रूप में जिन्दा रहती है। यह 'स्व' की धारा कभी नर्मदा की तरह सिकुड़कर बन्दरकूदनी घाट बनाती है तो कभी कठोर पर्वतों को तोड़ती, समुद्र की तरह गर्जन करती लोक में गुंजायमान होती है। 'स्व' भारत की प्राणशक्ति है,उसकी संस्कृति है। जो हजारों-हजारों ऋषियों, मनीषियों, मुनियों, परिव्राजकों, तपस्वियों, गृहस्थों के आचरण, जीवन-मूल्यों, जीवन-दर्शन के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होती है। 'नित्य नूतन चिर पुरातन' अरुण रश्मियों की तरह। भारत केवल भूखण्ड नहीं, कालजयी सिद्धान्त, चिरन्तर परम्परा, अक्षुण और अजस्र संस्कृति का संवाहक, संरक्षक और संवर्द्धक रहा है। तभी तो शोपनहार कहता है, "Almost superhuman conceptions whose originators can hardly be said to be mere men." भारत विश्व मानव का आदर्श रहा है। किन्तु जब-जब इसमें शिथिलता आई, हमारे मूल्यों का क्षरण हुआ, तब-तब परिणाम न केवल भारत-भूमि के लिए बल्कि विश्व समुदाय के लिए विभीषिका बन कर उल्कापात की तरह बिखरकर समूची मानवता को झुलसाते हैं।

और तब मुहम्मद अली जिन्ना के स्वर उभरते हैं, ''हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग कौमें हैं। ये न कभी मिली हैं, न मिलकर रह सकती हैं। इसलिए मुसलमानों के लिए पाकिस्तान अलग होना चाहिए। इसके लिए डायरेक्ट एक्शन हुआ। तीस हजार हिन्दू 16 अगस्त, 1946 को कलकत्ता में काट डाले गए। मगर कुछ नहीं हुआ।'' (हँस के लेंगे हिन्दुस्तान-नीलकंठ, पृ.202) धीरे-धीरे भारत में आइ.एस.आई.एस. की जड़ें दिखाई देने लगती हैं। खलीफा आइडियालॉजी का प्रभाव बढ़ रहा है। जैश-ए-मुहम्मद, इंडियन मुजाहिद्दीन, लश्कर-ए-तैय्यवा, हिजबुल मुजाहिद्दीन की जमात बनती है। एक तरफ तीन तलाक पर हाईकोर्ट अपनी वेदना सलाह के रूप में जाहिर कर रहा है तो दूसरी ओर समान नागरिक संहिता की बात उठा रहा है। एक प्रश्न और उभरकर आ रहा है कि कश्मीर का पंडित यदि विस्थापित है तो विभाजन की विभीषिका में जन्मभूमि को छोड़ने हेतु मजबूर होने पर देश के सुरक्षित भाग में

आनेवाला सिंधी समाज 'विस्थापित' की जगह 'शरणार्थी' कैसे हो गया ?

वामपंथी सरकार के मुखिया का मध्यप्रदेश में केरल के प्रतिनिधियों द्वारा सम्मान आयोजित किया जाता है। किन्तु जब केरल में देशभक्त नागरिकों की सरेआम हत्या होती है तो उसे विचारधारा और राजनैतिक दल की सहज प्रतिक्रिया कह वहाँ का प्रशासन उपेक्षित कर देता है किन्तु वहीं का मुख्यमंत्री मध्यप्रदेश के जेल एनकांउटर को न्यायाधीश की तरह फर्जी करार देते हैं। ऐसा ही एक वर्ग इस देश से गरीबी, भुखमरी कभी मिटने नहीं देना चाहता। यदि दलित-गरीब, गरीब होता चला गया तो उनकी संख्या बढ़ती जायेगी और उसी के बहाने सेवा के नाम पर, प्रलोभन दे कर अंग्रेजों के काल से चलता आ रहा राष्ट्रांतरण व्हाया धर्मान्तरण का गोरख धंधा चलता रहेगा। तभी तो नोटबंदी के विरोध में लामबन्द यह जमात पूरे ताकत के साथ धूमिल की पंक्ति, 'संसद से सड़क' तक को लज्जित करती है।

इस द्वंद्व में भारतीय संस्कृति और भारत की वेदान्तिक दृष्टि को स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में समझना होगा, ''वेदान्त का भाव व्यक्ति का नाश नहीं, उसकी सच्ची सुरक्षा करता है। हम व्यक्ति को विश्वात्मक होने के सन्दर्भ के अतिरिक्त, किसी अन्य रीति से प्रमाणित नहीं कर सकते।''

अत: भारतीय दृष्टि को समझने हेतु उसके 'स्व' को समझना होगा। छान्दोग्यउपनिषद के शब्दों में, 'स या एषो अणिमा, एतत् आत्म्यमिदं सर्वम्, तत् सत्यं स आत्मा तत् त्वम असि,' अर्थात-विश्व की प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म (अनन्त) तत्व उसकी आत्मा है, वही सत्य है, वही आत्मा है, वही तू है।'' यही है मंदोदरी की आश्वस्ति। विभीषण का अभयम्। हनुमान की हुंकार अर्थात् भारत का 'किण्वन्तो विश्वमार्यम्' है।

(पाँच)

'अथतो ब्रह्म जिज्ञासा'। भारतीय संस्कृति में शब्द को 'ब्रह्म' कहा गया है। उपनिषदों ने तात्विक चिन्तन किया और उसके माध्यम से लौकिक प्रश्नों का समाधान किया। उपनिषदों में प्रयुक्त कथाएँ साहित्य के विकास क्रम में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ की ओर संकेत देती हैं। जब लोककथाएँ उपदेशमूलक आख्यानों के रूप में परिणत होने लगी थीं, तब वे लोक कथाएँ मनोरंजन और चमत्कार प्रधान थीं। पशु पक्षी यहाँ बोल सकते थे। मनुष्य आकाश में उड़ सकते थे। किन्तु इनका तात्पर्य मनोरंजन ही नहीं बल्कि तत्वबोध कराना है।

सत्यकाम जाबाल और हरिद्रुमत गौतम की कथा में जाबाल गौतम के पास ब्रह्म जिज्ञासा ले कर जाता है और आचार्य से सौ कृश गाएँ लेकर गुरु को यह आश्वासन दे कर जाता है कि जब तक एक हजार गाएँ नहीं हो जायेंगी, तब तक नहीं लौटूँगा। कालान्तर में एक वृषभ ने कहा अब एक हजार गाएँ हो गई हैं, अब आचार्य के पास चलें। रास्ते में उसी समय वृषभ ब्रह्म के चार चरणों में से एक चरण का उपदेश देता है और कहता है दूसरे चरण का ज्ञान तुम्हें अग्नि देगा। अग्नि उपदेश पश्चात कहता है कि तीसरे चरण का उपदेश हंस देगा। पश्चात हंस कहता है अब चौथे चरण का उपदेश तुम्हें एक जलचर पक्षी मद्गु देगा। यह उपदेश समाप्त होते तक सभी आचार्य के पास पहुँच जाते हैं। आचार्य ने कहा, 'तुम्हारे अन्दर ब्रह्मविद्या का तेज दिखाई देता है।' जाबालि का कथन बड़ा महत्व का है, 'मनुष्येत्तर प्राणियों ने हमें उपदेश दिया है।'

जिस देश में 'आत्मवत सर्वभूतेषु' की इतनी ऊँचाई रही हो, वहाँ मनुष्य मनुष्य की भाषा नहीं समझ पा रहा है। अपनी मातृभाषा नहीं समझ पा रहा है। अभी कुछ दिनों पहले जनसत्ता में एक समाचार पढ़ा कि 'अंग्रेजी दा हरित अधिकरण' को हिन्दी नहीं समझ में आती अत: अपील अस्वीकार कर दी। विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस देश में हम असमान प्राणियों की भाषा समझ सकते हैं, उस देश में अपनी ही भाषा समझ में नहीं आ रही। वह चाहे हरित

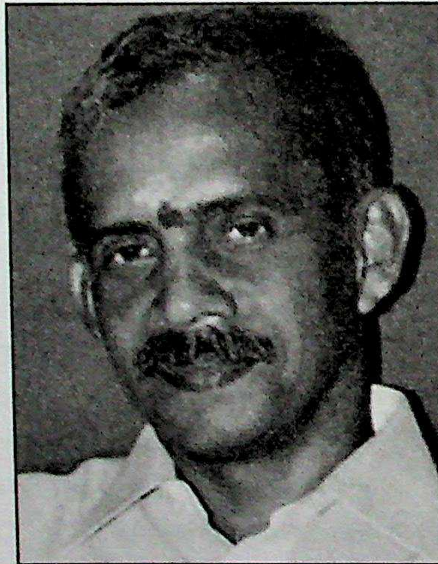
न्यायालय हो या अन्य कोई न्यायालय। दूसरी ओर विश्व हिन्दी सम्मेलनों में हम संकल्प करते हैं कि हिन्दी यू. एन. ओ. की भाषा हो। वस्तुत: स्थिति बड़ी भयावह है। हिन्दी की सभी बोलियों को हम क्षेत्रीय बोलियों के आधार पर स्वतंत्र भाषा का दर्जा देकर (आठवीं अनुसूची में शामिल कर) वही कार्य कर रहे हैं, जो भारत के दायें-बायें कंधे को काटकर, उसके चरण को काट कर उसके मस्तक को क्षत-विक्षत कर देश के अब तक सात टुकड़े कर चुके हैं, फिर भी सार्वभौमिकता का राग अलापते नहीं थकते। भोजपुरी के प्रेमी बाबू राजेन्द्र प्रसाद जब राष्ट्रपति बने तब बिहार के कुछ भोजपुरी प्रेमियों ने उनके सामने कहा, 'आप राष्ट्रपति बन गये हैं, भोजपुरी के लिए कुछ कीजिए।' तब राजेन्द्र बाबू की राष्ट्रीय दृष्टि को देखिये, 'भोजपुरी बोली सभे, काम हिन्दी खातिर करी।' हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इसी मत के थे। बोलियों का अस्तित्व रहना भारतीय सांस्कृतिक विरासत को बचाये रखना होगा, किन्तु हिन्दी के विरुद्ध बोलियों को खड़ा करना उस औपनिवेशिकता को पुन: स्थापित करना होगा जिसे अंग्रेज और अंग्रेजी-दा (तथाकथित) हिन्दी प्रेमी करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। यह जन की भाषा का नहीं उस लोक का अपमान है, जिसे हम राष्ट्र कहते हैं।

मनुष्य हो या संस्थाएँ उसका निर्माण माँ से ही होता है। चाहे वह जन्मदात्री माँ हो, धरती माँ हो या मातृभाषा हो। इसे बालकवि बैरागी के 'साक्षात्कार' से समझें, ''मैं माँ का निर्माण हूँ, पिता का तो जाया हूँ। पिता ने तो पैदा कर दिया कि जाओ, भीख माँगो। क्योंकि वो कुछ कर भी नहीं सकते थे, अपाहिज थे। माँ एक वाक्य मुझे निरंतर कहा करती थी, 'अरे ये दिन भी नहीं रहेंगे रे.., काम कर।' तो इस एक बात पर मैं आज तक जीवित हूँ। मैंने अपने जीवन में किसी को गुरु नहीं बनाया। बैरागी हूँ तो तुलसी की कंठी पहन लेता हूँ, शरीर पर धातु नहीं पहनता। आप देखते होंगे और खादी पहनता हूँ। खादी अपने बचपन को भूल नहीं जाऊँ इसलिए हर तरह से सक्षम होने के बाद भी, मैं माँगकर ही पहनता हूँ। इसलिए भी कि मैं कहीं अपना बचपन न भूल जाऊँ कि मैं गलियों का भिखमंगा था, मँगता था। जिसने प्रताड़ना, अवहेलना, अनादर सब सहा है। प्रताड़ना भी कैसी कि समस्या तब होती थी जब कोई जूठी रोटी दे देता, तो उसे मैं मुँह में किधर से लगाऊँ? मेरा परिवार खाना किधर से शुरू करे उसे? ये हमारी समस्याएँ थीं। लेकिन माँ ने टूटने नहीं दिया। माँ ने घबराने नहीं दिया। माँ ने पूरा सहारा दिया। इसलिए मैं आज जहाँ भी जाता हूँ तो कहता हूँ कि टूटो मत, घबराओ मत, निराश मत होओ। असफलताएँ कदम-कदम पर होंगी।' ...प्रेमचंद ने एक बात बहुत अच्छी लिखी कि 'जब तुम गिर जाते हो, तो क्या करते हो, गिरते वक्त? आस-पास देखते हो, किसी ने तुम्हें देखा तो नहीं गिरते हुए-किन्तु आप देखते हो कि उस वक्त में कई लोग आपका उपहास करने के लिए आस-पास खड़े हँसते रहते हैं।' प्रेमचन्द रुकते नहीं। वे कहते हैं, 'उठो और उठकर के जिसे पुरुषार्थ कहते हैं, उसका उपयोग करो।' 'हम उठते हैं, धूल झटकते हैं, अपने कपड़ों की। और वो हँसते रहते हैं, देखने वाले। वे आपकी उठने में मदद नहीं करेंगे। धूल झटकते हैं, हम खुद ही अपनी।..' प्रेमचन्द कहते हैं,'जिन्दगी से कहो, 'मैं गिर गया, हार गया। कोई बात नहीं आ जा, एक बार फिर हो जाए।' इसका नाम है जिन्दगी।''

विवेकानन्द जिस दरिद्रनारायण की सेवा की बात करते हैं, उसको और उसकी भाषा को समझने के लिए क्या जाबालि और बालकवि बैरागी पर्याप्त नहीं हैं। क्या इसे ही नित्य नूतन और चिरपुरातन विवेक नहीं कहते हैं? क्या अब भी हम को आश्चर्यमिश्रित प्रश्न करने का अधिकार बनता है कि विवेकानन्द का साहित्य पर प्रभाव कितना है?

उमेश कुमार सिंह

श्री जे. नंदकुमार से हरिहर शर्मा



राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय सह प्रचार प्रमुख तथा प्रमुख मलयाली साप्ताहिक केसरी के प्रधान सम्पादक।

(साक्षात्कार के इस अंक में दो साक्षात्कार हैं, एक सुधी,राष्ट्रीय विचारक-चिन्तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ज्येष्ठ प्रचारक श्रीमान जे. नन्दकुमार का तथा दूसरा धरोहर अन्तर्गत पूज्य स्वामी विवेकानन्द जी के स्वयं के वार्तालाप का एक अंश।-सम्पादक)

हरिहर शर्मा : स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से आप कब और कैसे प्रभावित हुए?

जे.नंदकुमार : मेरे माता-पिता दोनों शिक्षक थे। विशेषकर मेरे पिता की अध्ययन में अत्याधिक रुचि थी तथा आध्यात्मिक जीवन की ओर भी उनका झुकाव था। तो इस प्रकार मैंने जन्म से ही अपने परिवार में आध्यात्मिक माहौल पाया। इसी प्रकार मेरा विकास भी हमारे संतों और आध्यात्मिक विभूतियों की कथा कहानियाँ पढ़ते-सुनते हुआ। मेरे विद्यालय में भी एक 'पाठक क्लब' था, जिससे मेरी पढ़ने की आदत को बढ़ावा मिला। हमसे कहा जाता था कि हमने जो पढ़ा है, उसके नोट्स भी बनाये। वहाँ ही मैंने पहली बार स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकों को पढ़ा। तीसरा बड़ा कारण मेरी संघ से निकटता है, जिसके कारण मुझे स्वामी जी के कुटेशन (बोधवाक्य) याद करने की प्रेरणा मिली। उसके बाद मैं उच्च अध्ययन के लिए कोच्चि गया। वहाँ मैं अन्य अनेकों विद्यार्थियों की तरह संघ कार्यालय में ही रहा, जहाँ मेरी भेंट पी. माधव जी, रंगाहरि जी, पी. परमेश्वर जी, एम.ए. कृष्णन सर आदि महान और प्रतिभाशाली हस्तियों से हुई। यद्यपि ये सभी महान विभूति थे, किन्तु वे हमेशा छात्रों के साथ समय बिताते थे, जिनमें से मैं भी एक था। उन लोगों के साथ बातचीत से प्रेरित होकर, मैंने आगे चलकर स्वामी विवेकानंद के विशाल साहित्य सागर में डुबकी लगाई। यही कुछ हद तक स्वाभाविक विश्लेषण है।

हरिहर शर्मा : भारत में स्वामी विवेकानन्द को युवाओं का 'आईकोन' क्यों माना जाता है?

जे.नंदकुमार : स्वामी जी स्वयं भी एक अत्याधिक बहादुर नौजवान थे। उन्होंने ज्यादातर युवाओं को ही संबोधित किया और युवाओं पर ही अपनी आस्था व्यक्त की। स्वामी जी ने हमेशा सत्य के साथ खड़े होने और असत्य के खिलाफ आवाज उठाने के लिए आग्रह किया। उनकी स्पष्ट मान्यता थीं, 'लक्ष्यप्राप्ति की दिशा में बढ़ते समय, मार्ग में आने वाली हर बाधा को नष्ट कर दो।' उनकी वाणी में जो शक्ति थी, वही हमारे युवाओं को अपने जीवन में लाना चाहिए। कोई साथ आये, न आये, अगर अकेले भी हैं, तो भी सत्य की रक्षा के लिए आगे आना चाहिए, यही सन्देश स्वामी जी ने अपने जीवन के माध्यम से हमारे युवाओं को दिया। उनका आदर्श वाक्य है, जिसे उन्होंने ज्यादा से ज्यादा और बार-बार दोहराया वही महान उपनिषदों का संदेश भी है, 'अभय...अभय' (डरो नहीं)! युवाओं के लिए निर्भयता या साहस क्यों? हमारे समाज, हमारे देश और पूरी मानवता के उत्थान के लिए साहस की ही तो आवश्यकता है। उन्होंने अपनी शिक्षाओं में देशभक्ति की प्रबल भावना और अपनी संस्कृति तथा परंपराओं पर पूर्ण श्रद्धा हो, पर जोर दिया। उन्होंने चरित्र पर भी बल दिया। स्वामी जी ने जोर देकर कहा कि युवा महिलाओं और पुरुषों में नैतिक और महान चरित्र का विकास होना चाहिए। एक आदर्श युवा के विकास हेतु स्वामी जी के ये तीन अमर संदेश अत्याधिक महत्वपूर्ण हैं।

हरिहर शर्मा : स्वामी विवेकानन्द जी के विकास क्रम में श्री रामकृष्ण परमहंस की क्या भूमिका थी?

जे.नंदकुमार : कोई और कारण नहीं था, बल्कि यह केवल उनकी उत्कट भक्ति और निष्ठा ही थी, जिसकी वजह से उन्हें श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे गुरु मिले। उन्हें अपने बाल्यकाल से ही ज्ञान प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा थी। जब ज्ञान की भूख हो, तो गुरु मिल ही जाते हैं। यही हमारी परंपरा है। महान गुरु की कृपा हर एक को प्राप्त नहीं होती, वह तब तक नहीं मिलती, जब तक कि कोई पुरुष या महिला उसके लिए पात्र न हो जाए या सक्षम न बन जाए। यहाँ तक कि वे उच्चतम आध्यात्मिक मूल्य और गुरु की महानता को पहचानने में भी सक्षम नहीं हो सकते। यही सतर्कता और धैर्य

स्वामी विवेकानंद में बाल्यकाल से ही था। बाद के वर्षो में स्वामी जी के ये जन्मजात गुण और अधिक विकसित हुए। यह परमहंस ही थे, जिन्होंने स्वामी जी के आंतरिक आध्यात्मिक उत्साह और अन्य अनेक गुणों को क्रमबद्ध किया।

हरिहर शर्मा : वर्तमान भौतिकवादी युग में स्वामी विवेकानंद की वैश्विक प्रासंगिकता क्या है?

जे.नंदकुमार : स्वामी जी ने अपने प्रसिद्ध शिकागो भाषण में और अन्य अनेकों अवसरों पर इसे असंदिग्ध रूप से वर्णित किया है। कोलंबो से अल्मोड़ा तक दिए गए व्याख्यानों में भी यह दृष्टिगोचर होता है। दुनिया में आज जितनी भी चुनौतियाँ या समस्याएँ हैं, सबका समाधान उनके शिकागो भाषण में है। वास्तव में तो, शिकागो भाषण का अंतिम अंश केवल उसी पर केंद्रित है। चाहे आतंकवाद हो या धार्मिक कट्टरता, उन्हें स्वामी जी के सनातन धर्म और वैदिक विचारों पर आधारित संदेश से ही, हमारे दैनंदिन जीवन में हल किया जा सकता है। अपने शिकागो भाषण में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टाध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारम्परिक कटुताओं का मृत्युनिनाद सिद्ध हो। यह वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में काफी प्रासंगिक है।

हरिहर शर्मा : क्या स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित वेदांत व्यावहारिक है?

जे.नंदकुमार : नि:संदेह, स्वामीजी हमेशा व्यावहारिक वेदांत के पक्ष में रहे, हठधर्मिता और जो अव्यावहारिक है, उसके लिए नहीं। उन्होंने कभी भी ऐसी बातों से समझौता नहीं किया, जो हमारे वास्तविक जीवन में संभव नहीं है और इस बारे में वे बिलकुल स्पष्ट थे। वेदांत की उनकी शिक्षाओं का शीर्षक ही 'व्यावहारिक वेदांत' है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, 'जो बिल्कुल अव्यवहारिक है, ऐसा सिद्धांत किसी काम का नहीं, वह तो महज बौद्धिक व्यायाम है। इसलिए धर्म के रूप में वेदांत, पूर्णत: व्यावहारिक होना चाहिए।'

हरिहर शर्मा : आधुनिक दुनिया पर स्वामी जी का क्या प्रभाव दृष्टिगोचर होता है?

जे.नंदकुमार : किसी भी अन्य समकालीन विचारक की तुलना में स्वामी जी ने आधुनिक दुनिया को अधिक प्रभावित किया है। वैसे तो सबको किया है, किन्तु पश्चिमी दुनिया को तो उनके द्वारा बहुत अधिक प्रभावित किया गया है, क्योंकि उन्होंने यूरोप और अमेरिका की कई बार यात्रायें कीं। यही कारण है कि फिलिप गोल्डबर्ग के द्वारा 'अमेरिकी वेद' जैसी पुस्तकें लिखी गईं। उन्होंने अनेक पश्चिमी विचारकों और साहित्यिक दिग्गजों को प्रभावित किया, जिनमें विलियम जेम्स व रोमां रोलां से लेकर से विल दूरांत तक शामिल हैं। अभी भी बहुत से पश्चिमी लोग, उनके आध्यात्मिक संदेश और उनकी पुस्तकों की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

हरिहर शर्मा : नन्दकुमार जी आपने कहा, आपकी विवेकानन्द पर रुचि जाग्रति होने के मूल में रा.स्व.संघ है, तो संघ किस तरह से स्वामी जी के सिद्धांत पर चलता नजर आता है?

जे.नंदकुमार : एक राष्ट्र का जीवन लक्ष्य क्या होता है? हमारे प्राचीन ऋषियों ने पवित्र ग्रंथों में सुस्पष्ट किया है: 'क्रण्वंतो विश्वमार्यम्' (विश्व को श्रेष्ठ बनाना), 'सर्वेपि सुखिन: संतु'। उनके शब्द हिंदू राष्ट्र के लक्ष्य को इंगित कर रहे थे। परन्तु किसी कारणवश लक्ष्य प्राप्ति की इस यात्रा में बाधा आ रही थी, जिसे दूर करने के लिए राष्ट्र में एक प्रभावशाली और मजबूत संगठन तैयार हुआ। इस चेतना को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम दिया गया। अत: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राष्ट्र के क्रमिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। यही कारण है कि अस्तित्व में आने के बाद से यह संगठन निरन्तर उत्थान की ओर बढ़ रहा है। इस तथ्य को बेहतर तरीके से समझने के लिए हमें 90 वर्ष पूर्व विजयादशमी पर डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार के कहे गए शब्दों पर गौर करना होगा। उनके शब्दों की शाश्वत दृढ़ता और महत्ता

पवित्र वैदिक मंत्रों जैसी पावन है। उन्होंने सरल लहजे में कहा था, ''आज संघ की शुरुआत हो रही है।'' उन्होंने यह नहीं कहा कि आज मैं, डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार, संघ की शुरुआत कर रहा हूँ या हम संघ की शुरुआत कर रहे हैं। अत: मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि डॉ. हेडगेवार के नेतृत्व में युवाओं के एक समूह ने संघ की शुरुआत (स्थापना) की। डॉक्टर जी के कर्म में कभी कर्ता होने का अहं नहीं रहा। श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार, किसी व्यक्ति का कर्म तभी कर्मयोग कहलाता है जब वह 'कर्ता' की अहमन्यता से मुक्त हो। संघ की स्थापना का बुनियादी दर्शन यही है। स्वामी जी की दृष्टि भी यही थी।

हरिहर शर्मा : नन्दकुमार जी आपका सम्बन्ध केरल से ज्यादा रहा है। केरल के साथ वर्तमान वैश्विक परिदृश्य को देखते हुए जरा स्पष्ट करें कि भारत में संघ की भूमिका के बावजूद मार्क्स का चिन्तन साहित्य और समाज में क्या बहुत प्रभावी नहीं दिखता है?

जे.नंदकुमार : इसको कुछ इस तरह से समझना होगा। संघ का मुख्य लक्ष्य वर्गभेद और सीमाओं में उलझे बगैर समस्त विश्व के कल्याण और हित पर केन्द्रित है। लेकिन संघ या डॉक्टर जी ने कभी इसका डिंडोरा नहीं पीटा। संघ के गठन के समय नागपुर के मोहिते के बाड़े में ली गई प्रतिज्ञा में देश के समाज को संगठित कर 'परम वैभव' की प्राप्ति की बात कही गई थी। इसी लक्ष्य के लिए रोजाना एकत्रित होने की एक सरल और आडम्बर रहित योजना तैयार की गई जो आज एक महान संगठन बन चुकी है।

संघ की शक्ति के दिव्य स्वरूप को समझने के लिए एक तुलनात्मक विश्लेषण आवश्यक है। लेकिन विश्व में संघ जैसा अन्य कोई संगठन नहीं, इसलिए समग्र तुलनात्मक आकलन संभव नहीं है। फिर भी, केरल की असाधारण हालात को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है। भारत में कम्युनिष्ट पार्टी का उदय 1920 के दशक में हुआ था। इसी दौरान संघ भी अस्तित्व में आया। कम्युनिष्ट दलों के लक्ष्यों से सभी परिचित हैं। उनका दावा है कि उनका जन्म इतिहास में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए हुआ है, वृहद् वैश्विक कल्याण से जुड़ा उनका नारा है, हमारा लक्ष्य हमारे देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं। वे दूसरों के विचारों का मजाक उड़ाते हैं मानो वामपंथ प्रगति का पर्याय है। उनके अनुसार वामपंथ एकमात्र विवेकशील विचारधारा है।

इस बीच, मजबूती के साथ उभर रहे संघ ने युवाओं एवं बच्चों को एकजुट करके उन्हें राष्ट्रहित के कार्यों में लगाने का निर्णय लिया ताकि उनमें राष्ट्रीयता की भावना पैदा हो। इस तरह संगठन में ज्ञान और ऊर्जा के प्रवेश की भूमिका तैयार हुई। संघ ने सभी देशों के एक होने का आह्वान कभी नहीं किया; न ही दुनिया में क्रांति लाने की चुनौती ली। स्वयंसेवकों का मंत्र था कि दूसरों को बदलने से पहले हमें अपने आप को बदलना होगा। वे यह बात दोहराते कि अगर हम अपने जीवन और विचार में परिवर्तन लाते हैं, तो समाज में स्वत: बदलाव आ जाएगा।

एक तरफ अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त एम.एन.रॉय एवं रजनी पाम दत्त का नेतृत्व था और दूसरी तरफ डॉ. हेडगेवार थे, एक आम इन्सान, लेकिन देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत। जहाँ उन्हें (एम.एन. रॉय एवं रजनी पाम दत्त को) संयुक्त राज्य अमेरिका की धुर विरोधी तत्कालीन महाशक्ति सोवियत संघ का प्रश्रय प्राप्त था, वहीं डॉ. हेडगेवार के पास एक बस्ती तक का समर्थन नहीं था। कम्युनिष्ट पार्टी ने पाउंड और रूबल्स में सहायता हासिल करके अथाह पूँजी इकट्ठी कर ली थी। जबकि बेहद गरीब घर में पैदा हुए डॉ. हेडगेवार की एकमात्र पूँजी थी, उनकी मजबूत इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास।

बच्चों के एक समूह के साथ शुरू हुआ संघ बड़े दावों का प्रदर्शन किए बगैर आज महान संगठन का रूप ले चुका है, जो वैश्विक द्वंदों को सुलझाने की क्षमता रखता है। आज यह राष्ट्र पुनर्निर्माण के कार्य में लगा है।

वहीं, ईश्वर की बजाय खुद के इस ब्रह्मांड की केन्द्रीय शक्ति होने का दावा करने वालों को इतिहास कूड़ेदान में फेंक चुका है।

सच यह है कि आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अंतरराष्ट्रीय समाज शास्त्रियों एवं विशेषज्ञों के लिए चमत्कार की तरह है। वे अब संघ की असाधारण प्रगति के कारणों का पता लगाने के प्रयास में लगे हैं। कोनराड एल्स्ट की 'द सैफ्रन स्वास्तिका' एवं वाल्टर के. एंडरसन एवं श्रीधर दामले की 'द ब्रदरहुड इन सैफ्रन' इन्हीं शोध प्रयासों का नतीजा हैं।

हरिहर शर्मा : नन्दकुमार जी वर्तमान में राष्ट्र के समक्ष खड़ी समस्याओं का आकलन आप जैसे मनीषी करते हैं, उनकी पहचान और समाधान के नए सूत्र एवं कारगर उपाय क्या हो सकते हैं? क्या संघ की सफलता ही राष्ट्रीय समस्याओं का निदान है?

जे.नंदकुमार : संघ के सफलता सूत्र क्या है? इसके लिए संघ के विकास और लक्ष्य प्राप्ति से जुड़ी उसकी पृष्ठभूमि की जानकारी हासिल करना जरूरी है। देश की तात्कालिक परिस्थितियों के व्यापक विश्लेषण के बाद डॉक्टर जी ने अपने समकालीनों के साथ संघ से संबंधित विमर्श शुरू किया। उन्होंने राष्ट्र के समक्ष खड़ी समस्याओं का आकलन किया, उनकी पहचान की और समाधान के नए सूत्र एवं कारगर उपाय सामने रखे।

समस्या के कारण थे— 1. राष्ट्र के अस्तित्व सम्बन्धी विचार का अभाव। 2. देशभक्ति का अभाव। 3. अपनी अस्मिता के एहसास का अभाव। 4. व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्धों का अभाव। 5. समाज की समस्याओं का समाधान करने की जिम्मेदारी का अभाव और 6. समाज को एक इकाई मानने की जागरूकता का अभाव।

समय बीतने के साथ, समस्याओं के बादलों से घिरे भारत पर यूरोपीय लोगों का कब्जा हो गया। प्रचलित मिथकों के विपरीत इस पक्षाघात की वजह पश्चिम की फतह या राज नहीं था। अतः डॉक्टर जी इस नतीजे पर पहुंचे कि बुनियादी कमजोरी को दूर करना सबसे जरूरी है।

इस दिशा में एक सुगठित, सभ्य, सुदृढ़, त्रुटिहीन एवं समतावादी समाज का गठन सबसे पहले जरूरत थी, जिसके जरिये राष्ट्र 'परम वैभव' प्राप्त करे और समस्त विश्व एक बार फिर सनातन हिंदू दर्शन को अंगीकार करे। इस स्वप्न को साकार करने के लिए सकारात्मक विचारों वाले देशप्रेमी युवाओं या स्वयंसेवकों की जरूरत थी जो एक समर्पित जीवनादर्श का पालन करें। स्वयंसेवकों का समर्पित जीवन ही राष्ट्र की समस्याओं के निवारण की औषधि है। शाखा कार्यक्रम इसी औषधि के निर्माण की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से गुजरने वाला व्यक्ति आदर्श स्वयंसेवक बनता है और देश की चुनौतियों को सुलझाने में जुटता है। संघ के दो लक्ष्य हैं— 1. शाखा के माध्यम से स्वयंसेवक तैयार करना। 2. स्वयंसेवकों के जरिये समाज को संगठित करना।

समाज में इस बदलाव के सफल बीजारोपण के लिए शाखाओं में स्वयंसेवकों में उत्कृष्टता और श्रेष्ठता के गुण बोए जाते हैं। इस दिशा में सबसे पहले जो दृष्टिकोण विकसित होता है, उसे सत्य दृष्टि कह सकते हैं। 'भारत एक है; भारतभूमि की मिट्टी का प्रत्येक कण मेरे लिए पवित्र है। मैं और कुछ नहीं बल्कि हिन्दू राष्ट्र का एक अंग मात्र हूँ। समाज और मेरे बीच अनूठा, अद्वितीय सम्बन्ध है।' इसी दृष्टिकोण के कारण स्वयंसेवक अस्तित्व से जुड़े उस प्रश्न के भाव को समझ पाते हैं-कि मैं कौन हूँ?

दूसरा है सहानुभूति का भाव। जब हम इस गहन भाव को समझ लेते हैं कि समाज और हम एक हैं, तब समाज के प्रत्येक व्यक्ति की समस्या और प्रसन्नता हमारी अपनी हो जाती है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने लाहौर में अपने प्रसिद्ध भाषण में कहा था, ''आप तभी एक हिन्दू हैं जब अन्य किसी की पीड़ा से आपके हृदय में वैसी ही दुःख की लहर दौड़ जाती है, जैसी कि अपने पुत्र को तकलीफ में देखकर होती है।'' (स्वामी

विवेकानन्द समग्र, खण्ड-3, कोलम्बो से अल्मोड़ा तक के सम्भाषण)। शाखा में निरन्तर दी जा रही शिक्षा से स्वयंसेवक सच्चे हिन्दू बनेंगे, जैसी कि स्वामी विवेकानन्द ने कल्पना की थी।

तीसरा बोध, समाज के सामने खड़ी समस्त चुनौतियों के निवारण की जिम्मेदारी हमारी है। इसलिए समस्या चाहे कितनी भी जटिल हो, उसकी जिम्मेदारी लेने की हिम्मत विकसित करनी होगी। इस समझ के साथ स्वयंसेवक विभिन्न क्षेत्रों में बिना किसी बाहरी आकर्षण के सेवा गतिविधियों से जुड़े रहते हैं। इस प्रेरणा के साथ कि परिवर्तन 'प्रथम पुरुष' या मुझसे ही शुरू होता है, स्वयंसेवक अपनी रुचि व क्षमता के अनुसार सेवा क्षेत्र, शिक्षा, अकादमिक, कला, विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ते हैं।

इस दिशा में चौथा पक्ष व्यवहार से जुड़ा है। एक ही लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में एक ही समय में अनेक लोग प्रयास करते हैं। इसलिए उन्हें एक इकाई समझकर आगे बढ़ना और उस प्रयास को सारगर्भित व समग्र संवाद के तौर स्वीकार करना जरूरी है। अत: संघ एक सशक्त संगठन, समाज के एक मजबूत ढाँचे के तौर पर सफल रहा है।

पाँचवाँ लक्ष्य है कि स्वयंसेवक शुद्ध आत्मा का स्वामी हो। यह चौथे पक्ष का ही एक भिन्न रूप है। हमारे समाज में संघ द्वारा प्रस्तुत मंचों से इतर कई व्यक्ति एवं संगठन ऐसे हैं जो राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रमों से जुड़े हैं। संघ और स्वयंसेवकों ने कभी दावा नहीं किया कि वे राष्ट्रीय लक्ष्य की दिशा में काम करने वाले एकमात्र संगठन हैं। स्वयंसेवक स्वभावत: ऐसे लोगों को एकजुट करने में भूमिका निभाते हैं जो अपनी असाधारण सेवाएँ देश को दे रहे हैं। उन्हें राष्ट्रीय नवचेतना के मंच पर आगे लाने का प्रयास किया जाता है।

इसके बाद आता है छठा पक्ष— नैतिकता- 'सुशीलम् जगद्येन नम्रम भवेद्'- स्वयंसेवक वे हैं जो समस्त विश्व में वंदनीय आदर्श चरित्र को अपने व्यक्तित्व में ढालने की आकांक्षा रखते हैं। जहाँ तक संघ का प्रश्न है, यह सबसे महत्वपूर्ण गुण है जिसके बिना कोई व्यक्ति किसी कार्य में कहीं सफल नहीं हो सकता। संघ पश्चिम के 'अंत भला तो सब भला' का हिमायती नहीं हैं। संघ का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि हमारे साधन भी उतने ही पवित्र होने चाहिए जितना की लक्ष्य। संघ बार-बार कहता है कि शुचिता, नैतिकता एवं आदर्श जैसे गुणों का सिफल निजी जीवन में ही नहीं, बल्कि सार्वजनिक जीवन में भी पालन होना चाहिए।

सातवाँ पक्ष, समाज को पूर्णत: संगठित करने से जुड़ा है। डॉ. हेडगेवार कहते हैं, ''हमारा संगठन समाज में नहीं, बल्कि समाज से बना है।'' इसीलिए संघ समाज एवं संगठन के समन्वय की बात कहता है जो प्रत्येक स्वयंसेवक का प्रेरणा सूत्र है। संगठन वह शक्ति है जो शाखा यानी उसके गर्भ से प्रस्फुटित होती है और समूचे समाज को शामिल एक राष्ट्र को आच्छादित क़र लेती है। स्वामी विवेकानंद ने अपने एक शिष्य अलसिंघ पेरुमल को लिखे पत्र में कहा है, ''संगठन के साथ आगे बढ़ते जाओ और कुछ जरूरी नहीं है, केवल प्रेम-गांभीर्य-धैर्य जरूरी है। प्रेम ही जीवन है और स्वार्थ मृत्यु।''

स्वामी जी ने बेहद उत्साह के साथ एक ऐसे संगठन की इच्छा व्यक्त की थी जो राष्ट्र व्यापी होता- उन्होंने कहा है : ''मध्यभारत में एक नगर बनाने की वृहद योजना है, जहाँ आप अपने विचारों का स्वतंत्रतापूर्वक पालन कर सकें, फिर एक छोटा उत्प्रेरण सभी को उत्प्रेरित कर देगा। इसी दौरान एक केन्द्रीय समिति का गठन करें, जिसकी शाखाएँ समस्त भारत में फैलें। अभी केवल धर्म के आधार पर शुरुआत करें और तीखे सामाजिक सुधारों से जुड़े विचारों का उपदेश देने से फिलहाल परहेज करें; मूर्खतापूर्ण अंधविश्वासों को बढ़ावा न दें। शंकराचार्य, रामानुज एवं चैतन्य जैसे महापुरुषों के बताए प्राचीन सार्वभौमिक निर्वाण एवं समता के विचारों को समाज में पुनर्जाग्रत करने का प्रयास करें।''

हरिहर शर्मा : नन्दकुमार जी आप ने कहा,

'हमारा संगठन समाज में नहीं, बल्कि समाज से बना है।' इसे आप प्रगतिशीलता का गुण मानते हैं? यदि हम संघ को समाज का प्रतिबिम्ब मान ले तो स्वामी विवेकानन्द जी का संघ पर क्या प्रभाव दिखता है? इसमें साहित्य की क्या भूमिका दिखती है?

जे.नंदकुमार : विचारों को साकार रूप देने के लिए स्वामी जी ने जिस स्वतंत्र क्षेत्र की स्थापना की बात कही थी, उसी की तर्ज पर संघ की प्रेरणा से विभिन्न केन्द्रीकृत संगठनों की भी स्थापना हुई। स्पष्ट है कि यह विस्तार वास्तव में प्रगतिवादी है। प्रत्येक विविध क्षेत्र समय, परिस्थितियों एवं जरूरत से जुड़ा स्वाभाविक विकास है। इस दिशा में आज शिक्षा से लेकर रोजगार, संस्कृति से लेकर विज्ञान, अर्थशास्त्र से लेकर राजनीति , साहित्य से लेकर समाज तक के क्षेत्रों में 35 संगठन कार्यरत हैं। इसके अलावा, संघ समान लक्ष्यों के लिए काम कर रहे विभिन्न व्यक्तियों व संगठनों के साथ भी समन्वय करता है।

संघ कार्य के वैज्ञानिक आधार को इससे बेहतर तरीके से समझाना संभव नहीं है। अपनी मजबूत वैचारिक बुनियाद के आधार पर 90 वर्ष पूरे होने के बाद भी संघ नित नई ऊँचाइयाँ छू रहा है और नई ऊर्जा और उत्साह के साथ आगे बढ़ रहा है। अत: इसमें कोई संदेह नहीं कि संघ हिन्दू राष्ट्र के अपने बुनियादी लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर बढ़ रहा है जो विचार खुद इस देश की इच्छाशक्ति से जाग्रत हुआ है। हालाँकि स्वामी जी ने करीब 125 वर्ष पूर्व गरीबी या शिक्षा आदि से जुड़ी समस्याओं पर चिंतन किया था, लेकिन उनमें से ज्यादातर आज भी कायम हैं। इसीलिए सिफल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि पूरी मानवता के लिए स्वामी विवेकानंद आज भी प्रासंगिक हैं। 'जाग्रत भारत, विश्व का प्रबोधन करे', इस उद्घोष ने उस प्रासंगिकता को आज की परिस्थिति से पुन: जोड़ दिया है। स्वामी विवेकानंद के मुख्य विचारों को आज की दुनिया के सामने फिर से प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत करना साहित्य का भी उद्देश्य होना चाहिए।

संपर्क : श्री जे. नंदकुमार
प्रमुख मलयाली साप्ताहिक केसरी के प्रधान सम्पादक

संपर्क : हरिहर शर्मा
पूर्णायन, गणेश कॉलोनी, विष्णु मंदिर के पीछे,
शिवपुरी (म.प्र.), मो. 9425136564

(यह वार्ता स्वामी विवेकानन्द साहित्य के षष्ट भाग से पृथक -पृथक प्रसंगों पर आधारित है। अन्त में स्वामी जी की स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी से वार्ता है। पाठक कर्ममय प्रेरणा और आनन्द की अनुभूति कर सकेंगे। - सम्पादक)

(एक)

स्वामी विवेकानन्द : शिष्य को लक्ष्य करके 'विवेकचूड़ामणि' का यह श्लोक कहने लगे-

मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्यपाय:
संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपाय:।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं
तमेव मार्ग तव निर्दिशामि।।

-'हे विद्वन्! डरो मत; तुम्हारा नाश नहीं है, संसार-सागर के पार उतरने का उपाय है। जिस पथ के अवलम्बन से यती लोग संसार-सागर के पार उतरे हैं, वही श्रेष्ठ पथ मैं तुम्हें दिखाता हूँ!' ऐसा कहकर उन्होंने शिष्य को श्री शंकराचार्य कृत 'विवेकचूड़ामणि' ग्रंथ पढ़ने का आदेश दिया।

शिष्य इन बातों की सुनकर चिंता करने लगा- क्या स्वामी जी मुझे मंत्र-दीक्षा लेने के लिए संकेत कर रहे हैं? उस समय शिष्य वेदान्तवादी और आचार-मार्गी था। गुरु से मंत्र लेने की प्रथा पर उसे कोई आस्था न थी और वर्णाश्रम धर्म का वह एकांत पक्षपाती तथा अनुयायी था। फिर नाना प्रकार के प्रसंग चल रहे थे कि इतने में ही किसी ने आकार समाचार दिया कि 'मिरर' दैनिक पत्र के सम्पादक श्री नरेन्द्रनाथ सेन स्वामी जी के दर्शन के लिए आए हैं। स्वामी जी ने संवादवाहक को आज्ञा दी, 'उन्हें यहाँ लिवा लाओ।' नरेन्द्र बाबू ने छोटे कमरे में आकर आसन ग्रहण किया और वे अमेरिका, इंग्लैण्ड के विषय में स्वामी जी से नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे। प्रश्नों के उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि 'अमेरिका के लोग जैसे सहृदय, उदारचित्त, अतिथि सेवी और नवीन भाव ग्रहण करने में उत्सुक हैं, वैसे संसार के किसी भी राष्ट्र के लोग नहीं हैं। अमेरिका में जो कुछ कार्य हुआ है, वह मेरी शक्ति से नहीं हुआ, वरन् अत्यंत सहृदय होने के कारण ही अमेरिकावासी इस वेदांत भाव को ग्रहण करने में समर्थ हुए हैं।' इंग्लैण्ड के विषय में स्वामी जी ने कहा कि 'अंग्रेज जाति की तरह प्राचीन रीति-नीतिपरायण और कोई जाति संसार में नहीं। पहले तो ये लोग किसी नए भाव को सहज में ग्रहण करना ही नहीं चाहते; परंतु यदि अध्यवसाय के साथ कोई भाव उनको एक बार समझा दिया जाए तो फिर उसे वे कभी भी नहीं छोड़ते। ऐसा दृढ़ निश्चय किसी दूसरी जाति से नहीं पाया जाता। इसी कारण अंग्रेज जाति ने सभ्यता में और शक्ति-संचय में पृथ्वी पर सबसे ऊँचा पद प्राप्त किया है।'

यह घोषित करते हुए कि यदि कोई सुयोग्य प्रचारक मिले तो अमेरिका की अपेक्षा इंग्लैंड में ही वेदांत कार्य के स्थायी होने की अधिक सम्भावना है, उन्होंने आगे कहा, 'मैं केवल कार्य की नींव डालकर आया हूँ, मेरे बाद के प्रचारक उसी मार्ग पर चलकर भविष्य में बहुत बड़ा काम कर सकेंगे।'

प्रश्न : इस प्रकार धर्म-प्रचार करने से भविष्य में हम लोगों को क्या आशा है?

उत्तर : हमारे देश में जो कुछ है, वह वेदांत धर्म ही है। अन्य बातों की तुलना में पाश्चात्य सभ्यता के सामने हम

नगण्य हैं; परंतु धर्म के क्षेत्र में यह सार्वभौम वेदान्तवाद ही नाना प्रकार के मतावलम्बियों को समान अधिकार दे रहा है। इसके प्रचार से पाश्चात्य सभ्य संसार को विदित होगा कि एक समय भारत वर्ष में कैसे आश्चर्यजनक धर्म-भाव का स्फुरण हुआ था और वह अब तक वर्तमान है। इस धर्म की चर्चा होने से पाश्चात्य राष्ट्रों की श्रद्धा और सहानुभूति हमारे प्रति बढ़ेगी, एक सीमा तक इनकी अभिवृद्धि हुई भी है। इस प्रकार उनकी यथार्थ श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त करने पर हम अपने ऐहिक जीवन के लिए उनसे वैज्ञानिक शिक्षा ग्रहण करके जीवन संग्राम में अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे। दूसरी ओर वे हमसे वेदांत मत ग्रहण करके अपना पारमार्थिक कल्याण करने में समर्थ होंगे।

प्रश्न : क्या इस प्रकार के आदान-प्रदान से हमारी राजनीतिक उन्नति की कोई आशा है?

उत्तर : वे (पाश्चात्य राष्ट्र) महापराक्रमी विरोचन की संतान हैं। उनकी शक्ति से पंचभूत कठपुतली के समान उनकी सेवा कर रहे हैं। यदि आप लोग यह समझते हों कि उनके खिलाफ इसी भौतिक शक्ति के प्रयोग से किसी न किसी दिन हम उनसे स्वतंत्र हो जाएँगे तो आप लोग सरासर गलती पर हैं। और इस शक्ति-प्रयोग की कुशलता में उनके सामने हम ऐसे ही हैं जैसे हिमालय के सामने एक सामान्य शिला-खण्ड। मेरा मत क्या है, जानते हैं? उक्त प्रकार से हम लोग वेदांत धर्म का गूढ़ रहस्य पाश्चात्य जगत में प्रचार करके उन महा शक्तिशाली राष्ट्रों की श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त करेंगे और आध्यात्मिक विषय में सर्वदा उनके गुरुस्थानीय बने रहेंगे। दूसरी ओर वे अन्यान्य ऐहिक विषयों में हमारे गुरु बने रहेंगे। जिस दिन भारतवासी धर्म शिक्षा के लिए पाश्चात्यों के कदमों पर चलेंगे उसी दिन इस अध:पतित जाति का जातित्व सदा के लिए नष्ट हो जाएगा। 'हमें यह दे दो, हमें यह दे दो', ऐसे आंदोलन से सफलता प्राप्त नहीं होती। वरन् उपयुक्त आदान-प्रदान के फलस्वरूप जब दोनों पक्षों में पारस्परिक श्रद्धा और सहानुभूति का आकर्षण पैदा होगा, तब अधिक चिल्लाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। वे स्वयं हमारे लिए सब कुछ कर देंगे। मेरा विश्वास है कि वेदांत धर्म की चर्चा और वेदांत का सर्वत्र प्रचार होने से हमारा तथा उनका दोनों का ही विशेष लाभ होगा। इसके सामने राजनीतिक चर्चा मेरी समझ में निम्न स्तर का उपाय है। अपने इस विश्वास को कार्य में परिणत करने के लिए मैं अपने प्राण तक दे दूँगा। आप यदि समझते हैं कि किसी दूसरे उपाय से भारत का कल्याण होगा तो आप उसी उपाय का अवलम्बन ग्रहण कर आगे बढ़ते जाइए।

(दो)

नरेन्द्र बाबू के चले जाने के पश्चात गौरक्षण सभा के एक उद्यमी प्रचारक स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए। वे साधु-संन्यासियों का सा वेश धारण किए हुए थे। मस्तक पर गेरुए रंग की एक पगड़ी थी। देखते ही जान पड़ता था कि वे पश्चिमोत्तर अंचल के हैं। इन प्रचारक के आगमन का समाचार पाते ही स्वामी जी कमरे से बाहर आए। प्रचारक ने स्वामी जी का अभिवादन किया और गौ माता का एक चित्र उन्हें दिया। स्वामी जी ने उसे ले लिया और पास बैठे हुए किसी व्यक्ति को देकर प्रचारक से वार्तालाप करने लगे।

स्वामी जी : आप लोगों की सभा का उद्देश्य क्या है?

प्रचारक : हम देश की गौमाताओं को कसाई के हाथों से बचाते हैं। स्थान-स्थान पर गौशालाएँ स्थापित की गई हैं, जहाँ रोगग्रस्त, दुर्बल और कसाइयों से मोल ली हुई गउओं का पालन किया जाता है।

स्वामी जी : बड़ी उत्तम बात है। सभा की आय कैसे होती है?

प्रचाकर : आप जैसे धर्मात्माओं की कृपा से जो कुछ प्राप्त होता है, उसी से सभा का कार्य चलता है।

स्वामी जी : आपकी जमा पूँजी कितनी है?

प्रचारक : मारवाड़ी वैश्य वर्ग इस कार्य में विशेष सहायता देता है। उन्होंने इस सत्कार्य में बहुत-सा

धन दिया है।

स्वामी जी : मध्य भारत में इस वर्ष भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा है। भारत सरकार ने घोषित किया है कि नौ लाख लोग अन्न-कष्ट से भर गए हैं। क्या आपकी सभा ने इस दुर्भिक्ष में कोई सहायता करने का आयोजन किया है?

प्रचारक : हम दुर्भिक्षादि में कुछ सहायता नहीं करते। केवल गौ माता की रक्षा करने के उद्देश्य से ही यह सभा स्थापित हुई है।

स्वामी जी : आपके देखते-देखते इस दुर्भिक्ष में आपके लाखों भाई कराल काल के चंगुल में फँस गए। पास में बहुत सा नकद रुपया होते हुए भी क्या आप लोगों ने एक मुट्ठी अन्न देकर इस भीषण दुर्दिन में उनकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझा?

प्रचारक : नहीं, मनुष्य के पाप कर्म फल से यह दुर्भिक्ष पड़ा था। जैसे कर्म, वैसा फल।

प्रचारक की बात सुनते ही स्वामी जी के क्रोध की ज्वाला भड़क उठी और ऐसा मालूम होने लगा कि उनके नयनप्रांत से अग्निकण स्फुरित हो रहे हैं। परंतु अपने को सँभालकर उन्होंने कहा, 'जो सभा-समिति मनुष्यों से सहानुभूति नहीं रखती, अपने भाइयों को बिना अन्न मरते देखकर भी उनकी रक्षा के निमित्त एक मुट्ठी अन्न की सहायता न दे, पर पशु-पक्षियों के निमित्त हजारों रुपये व्यय कर रही है, उस सभा-समिति से मैं लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखता। उससे मनुष्य समाज का विशेष कुछ उपकार होगा, इसमें मुझे विश्वास नहीं।' 'अपने कर्म-फल से मनुष्य मरते हैं।' इस प्रकार सब बातों में कर्म-फल की दुहाई देने से जगत में किसी विषय में कोई भी उद्यम करना व्यर्थ प्रमाणित हो जाएगा। पशु-रक्षा का काम भी इसी के अंतर्गत आता है। कहा जा सकता है कि गौ-माताएँ भी अपने कर्म-फल से ही कसाइयों के पास पहुँचती हैं और मारी जाती हैं; अतएव उनकी रक्षा का उद्यम करना भी निष्प्रयोजन ही है।'

प्रचारक ने कुछ झेंपकर कहा, 'हाँ महाराज, आपने जो कहा वह सत्य है, परंतु शास्त्र में लिखा है कि गौ हमारी माता है।'

स्वामी जी हँसकर बोले, 'जी हाँ गौ हमारी माता है, यह मैं भली भाँति समझता हूँ। यदि ऐसा न होता तो ऐसी कृत-कृत्य संतान और दूसरी कौन प्रसव करती?'

प्रचारक, इस विषय पर तो कुछ नहीं बोले। शायद स्वामी जी का व्यंग्य प्रचारक की समझ में नहीं आया। फिर मूल प्रसंग पर लौट कर उन्होंने कहा, 'इस समिति की ओर से आपके सम्मुख भिक्षा के लिए उपस्थित हुआ हूँ।'

स्वामी जी : मैं ठहरा फकीर आदमी, रुपया मेरे पास कहाँ है कि मैं आपकी सहायता करूँ? परंतु यह भी कहे देता हूँ कि यदि कभी मेरे पास धन आए तो मैं उस धन को पहले मनुष्य-सेवा में व्यय करूँगा। सबसे पहले मनुष्य की रक्षा आवश्यक है, उन्हें

अन्नदान, धर्मदान, विद्यादान करना पड़ेगा। इन कामों को करके यदि कुछ रुपया बचे तो आपकी समिति को कुछ दूँगा।

इन बातों को सुनकर प्रचारक स्वामी जी को नमस्कार कर चले गए। तब स्वामी जी कहने लगे, 'देखो, कैसे अचम्भे की बात उन्होंने बतलायी! कहा कि मनुष्य अपने कर्म-फल से मरता है, उस पर दया करने से क्या होगा? हमारे देश के पतन का अनुमान

इसी बात से किया जा सकता है। तुम्हारे हिंदू धर्म का कर्मवाद कहाँ जाकर पहुँचा है! जिस मनुष्य का मनुष्य के लिए जी नहीं दुखता वह अपने को मनुष्य कैसे कहता है?' इन बातों को कहने के साथ ही स्वामी जी का शरीर क्षोभ और दुःख से तिलमिला उठा।

(तीन)

प्रश्न : 'सभ्यता' किसे कहते हैं?

उत्तर : इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि जो समाज या जो जाति आध्यात्मिकता में जितनी आगे बढ़ी है, वह समाज या वह जाति उतनी ही सभ्य कही जाती है। भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र तथा शिल्पगृह निर्माण

करके इस जीवन के सुख तथा समृद्धि को बढ़ाने मात्र से कोई जाति सभ्य नहीं कहला सकती। आज की पाश्चात्य सभ्यता लोगों में दिन प्रतिदिन अभाव और हाहाकार को ही बढ़ा रही है। भारत की प्राचीन सभ्यता सर्वसाधारण को आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग दिखलाकर यद्यपि उनके इस जीवन के अभाव को पूर्ण रूप से नष्ट न कर सकी तो भी उसको बहुत कम करने में निःसंदेह समर्थ हुई थी। इस युग में इन दोनों सभ्यताओं का संयोग कराने के लिए भगवान श्री रामकृष्ण ने जन्म लिया। आजकल एक ओर जैसे लोग कर्मतत्पर बनेंगे, वैसे ही उनको गम्भीर आध्यात्मिक ज्ञान भी हासिल करना होगा। इसी प्रकार भारतीय और पाश्चात्य सभ्यताओं का मेल होने से संसार में नए युग का उदय होगा। इन बातों को उस दिन स्वामी जी ने विशेष रूप से समझाया। प्रासंगिक रूप से स्वामी जी ने पाश्चात्यों की एक और बात बतलायी। बोले, 'वहाँ के लोग मानते हैं कि जो मनुष्य जितना धर्मपरायण होगा, वह बाहरी चालचलन में उतना ही गंभीर बनेगा; मुख से दूसरी बातें निकालेगा भी नहीं। परंतु एक ओर मेरे मुख से धर्म-व्याख्या सुनकर उस देश के धर्मप्रचारक जैसे विस्मित होते थे, वैसे ही दूसरी ओर वक्तृता के अंत में मुझको अपने मित्रों से हास्य-कौतुक करते देखकर कम आश्चर्यचकित नहीं होते थे। कभी-कभी उन्होंने मुझसे स्पष्ट ही कहा, 'स्वामी जी, धर्म प्रचारक बनकर साधारण जन के समान ऐसा हास्य-कौतुक करना उचित नहीं। आपमें ऐसी चपलता कुछ शोभा नहीं देती।' इसके उत्तर में मैं कहा करता था कि हम आनंद की संतान हैं, हम क्यों उदास और दुःखी बने रहें? इस उत्तर को सुनकर वे इसके मर्म को समझते थे या नहीं, मुझे शंका है।'

प्रश्न : परंतु महाराज, परहित का प्रयोजन क्या है?

उत्तर : अपना ही हित साधन। यदि तुम यह सोचो कि तुमने इस शरीर को जिसका अहंभाव लिए बैठे हो, दूसरों के निमित्त उत्सर्ग कर दिया है तो तुम इस अहंभाव को भी भूल जाओगे और अंत में विदेह बुद्धि आ जाएगी। एकाग्र चित्त से औरों के लिए जितना सोचोगे उतना ही अपने अहंभाव को भूलोगे। इस प्रकार कर्म करने पर जब क्रमशः चित्तशुद्धि हो जाएगी, तब इस तत्व की अनुभूति होगी कि अपनी ही आत्मा सब जीवों तथा घटों में विराजमान है। औरों का हित करना आत्मविकास का एक उपाय है, एक पथ है। इसे भी एक प्रकार की ईश्वर साधना जानना। इसका भी उद्देश्य आत्मविकास है। ज्ञान, भक्ति आदि की साधना से जैसो आत्मविकास होता है, परार्थ कर्म करने से भी वैसा ही होता है।

प्रश्न : मैंने सुना है कि लोग नग्न होकर अमरनाथ जी का दर्शन करते हैं। क्या यह सत्य है?

उत्तर : मैंने भी कौपीन मात्र धारण कर और भस्म लगाकर गुफा में प्रवेश किया था। तब ठण्डक या गरमी कुछ नहीं मालूम हुई, परंतु मंदिर से निकलते ही शरीर ठण्ड से अकड़ गया था।

प्रश्न : क्या यहाँ कभी कबूतर भी देखने में आया था? सुना है कि ठण्ड के मारे वहाँ कोई जीव-जंतु नहीं बसता, केवल सफेद कबूतरों की एक टुकड़ी कहीं से कभी-कभी आ जाती है।

उत्तर : हाँ, तीन-चार सफेद कबूतरों को देखा था। वे उसी गुफा में रहते हैं या आसपास के किसी पहाड़ में, यह ठीक अनुमान नहीं कर सका।

प्रश्न : महाराज, लोगों से सुना है कि यदि कोई गुफा से बाहर निकलकर सफेद कबूतरों को देख ले तो समझना चाहिए कि शिव के यथार्थ दर्शन हुए।

स्वामी जी बोले, 'सुना है कि कबूतर देखने से जिसके मन में जो कामना रहती है, वही सिद्ध होती है।

प्रश्न : क्या आपने पाणिनि की अष्टाध्यायी पढ़ी है?

उत्तर : जब जयपुर में था, तब एक बड़े भारी वैयाकरण के साथ साक्षात्कार हुआ। उनसे व्याकरण पढ़ने की इच्छा हुई। व्याकरण के बड़े विद्वान होने पर भी, उनमें पढ़ाने की योग्यता बहुत नहीं थी। उन्होंने मुझे तीन

दिन तक प्रथम सूत्र का भाष्य समझाया, फिर भी मैं उसकी धारणा न कर सका। चौथे दिन अध्यापक जी विरक्त होकर बोले, 'स्वामी जी, जब मैं तीन दिन में भी प्रथम सूत्र का मर्म आपको नहीं समझा सका तो अनुमान होता है कि मेरे पढ़ाने से आपको कोई लाभ नहीं होगा।' यह सुनकर अपने मन में बड़ी भर्त्सना हुई। भोजन और निद्रा त्यागकर प्रथम सूत्र का भाष्य अपने आप ही पढ़ने लगा। तीन घण्टे में उस सूत्रभाष्य का अर्थ *मानी करामलक* के समान प्रत्यक्ष हो गया। तत्पश्चात अध्यापक जी के पास जाकर सब व्याख्याओं का तात्पर्य बातों में समझा दिया। अध्यापक जी सुनकर बोले, 'मैं तीन दिन से जो समझा न सका, आपने तीन घण्टे में उसकी ऐसी चमत्कारपूर्ण व्याख्या कैसे सीख ली?' उस दिन से प्रतिदिन शीघ्र गति से अध्याय पर अध्याय पढ़ता चला गया। मन की एकाग्रता होने से सब सिद्ध हो जाता है- सुमेरु पर्वत को भी चूर्ण करना सम्भव है।

प्रश्न : आपकी सभी बातें अद्भुत हैं?

उत्तर : अद्भुत नाम की स्वयं कोई विशेष चीज नहीं। अज्ञता ही अंधकार है। इसमें सब कुछ ढके रहने के कारण अद्भुत जान पड़ता है। ज्ञान-लोक से प्रकाशित होने पर फिर कुछ अद्भुत नहीं। 'अघटनघटनपटीयसी' जो माया है, वह भी लुप्त हो जाती है। जिसको जानने से सब कुछ जाना जाता है, उसको जानो; उसके विषय पर चिंतन करो। उस आत्मा के प्रत्यक्ष होने से शास्त्रों के अर्थ 'करामलकवत्' प्रत्यक्ष होंगे। जब प्राचीन ऋषि ऐसा कर सके थे, तब हम लोगों से क्यों न होगा? हम भी तो मनुष्य हैं। एक व्यक्ति के जीवन में जो एक बार हुआ है, चेष्टा करने से वह अवश्य ही औरों के जीवन में फिर सिद्ध होगा। इतिहास अपने को दुहराता है; जो एक बार हुआ है, वह बार-बार होता है। यह आत्मा सर्व भूत में समान है, केवल प्रत्येक भूत में उसके विकास का तारतम्य मात्र है। इस आत्मा का विकास करने की चेष्टा करो। देखोगे कि बुद्धि सब विषयों में प्रवेश करेगी। अनात्मज्ञ पुरुषों की बुद्धि एकदेश-दर्शिनी होती है, आत्मज्ञ पुरुषों की त्रिलोक त्रिकालदर्शी। आत्मप्रकाश होने से, देखोगे दर्शन, विज्ञान सब तुम्हारे अधीन हो जाएँगे। सिंहगर्जन से आत्मा की महिमा की घोषणा करो। जीव को अभय देकर कहो, 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'

प्रश्न : स्वामी जी, ब्रह्म यदि एकमात्र सत्य वस्तु है तो फिर जगत में इतनी विचित्रताएँ क्यों देखी जाती हैं?

उत्तर : ब्रह्म वस्तु को (यह सत्य हो अथवा जो कुछ भी हो) कौन जानता है, बोल? जगत को हम देखते हैं और उसकी सत्यता में दृढ़ विश्वास रखते हैं। परंतु सृष्टि की विचित्रता को सत्य मानकर विचार-पथ में अग्रसर होते-होते समय पर मूल एकत्व को पहुँच सकते हैं। यदि तू इस एकत्व में स्थिर हो सकता तो फिर इस विचित्रता को नहीं देखता।

प्रश्न : स्वामी जी, क्या खाद्य-अखाद्य के साथ धर्माचरण का कुछ संबंध है?

उत्तर : थोड़ा बहुत अवश्य है।

प्रश्न : मछली तथा माँस खाना क्या उचित तथा आवश्यक है?

उत्तर : खूब खाओ भाई। इससे जो पाप होगा वह मेरा। तुम अपने देश के लोगों की ओर एक बार ध्यान से देखो तो, मुँह पर मलिनता की छाया; कलेजे में न साहस, न उल्लास; पेट बड़ा, हाथ-पैरों में शक्ति नहीं; डरपोक और कायर।

प्रश्न : मछली और माँस खाने से यदि उपकार ही होता तो बौद्ध तथा वैष्णव धर्म में अहिंसा को 'परमो धर्म:' क्यों कहा गया है?

उत्तर : बौद्ध तथा वैष्णव धर्म अलग नहीं। बौद्ध धर्म के उच्छेद के समय हिंदू धर्म ने उनके कुछ नियमों को अपना लिया था। वही इस समय भारत में वैष्णव धर्म के नाम से विख्यात है।

'अहिंसा परमो धर्म:'- बौद्ध धर्म का एक बहुत अच्छा सिद्धांत है, परंतु अधिकारी का विचार न करके जबरदस्ती राज्य की शक्ति के बल पर उस मत को

सर्वसाधारण पर लाद कर बौद्ध धर्म ने देश का सर्वनाश किया है। परिणाम यही हुआ कि लोग चींटियों को तो चीनी देते हैं, पर धन के लिए भाई का भी सर्वनाश कर डालते हैं। इस प्रकार अनेक बक: परमधार्मिक: के अनुसार जीवन व्यतीत करते देखे जाते हैं। दूसरी ओर देख, वैदिक तथा मनु के धर्म में मछली और माँस खाने का विधान है और साथ ही अहिंसा की बात भी। अधिकारी भेद से हिंसा और अहिंसा धर्मों के पालन करने की व्यवस्था है। श्रुति ने कहा है, 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि', मनु ने भी कहा है- 'निवृत्तिस्तु महाफला।'

प्रश्न : अच्छा महाराज, मृत्यु की चिंता यदि न भी की, पर इस अनित्य संसार में कर्म करके भी क्या लाभ है?

उत्तर : अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है तो ईंट-पत्थरों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ? It is better to wear out than to rust out-जराजीर्ण होकर थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं?

प्रश्न : महाराज, आत्मज्ञान की प्राप्ति होने पर भी क्या कर्म रह जाता है।

उत्तर : ज्ञान-प्राप्ति के बाद साधारण लोग जिसे कर्म कहते हैं, वैसा कर्म नहीं रहता। उस समय कर्म 'जगद्धिताय' हो जाता है। आत्मज्ञानी की सभी बातें जीव के कल्याण के लिए होती हैं। श्री रामकृष्ण को देखा है- 'देहस्थोऽपि च देहस्थ:' (देह में रहते हुए भी देह में न रहना) यह भाव! वैसे पुरुषों के कर्म के उद्देश्य के संबंध में केवल यही कहा जा सकता है- 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' (जो कुछ वे करते हैं, वे लोक में लीला रूप में हैं।)

प्रश्न : परन्तु महाराज, आचार्य शंकर के मतानुसार कर्म भी ज्ञान का विरोधी है- उन्होंने ज्ञान-कर्म-समुच्चय का बार-बार खण्डन किया है। अत: कर्म ज्ञान का प्रकाशक कैसे बन सकता है?

उत्तर : आचार्य शंकर ने वैसा कहकर फिर ज्ञान के विकास के लिए कर्म को आपेक्षिक सहायक तथा चित्तशुद्धि का उपाय बताया है; परंतु विशुद्ध ज्ञान में कर्म का प्रवेश नहीं है। मैं भाष्यकार के इस सिद्धांत का प्रतिवाद नहीं कर रहा हूँ। जितने दिन मनुष्य को क्रिया, कर्ता और कर्म का ज्ञान रहेगा, उतने दिन क्या मजाल कि वह काम न करते हुए बैठा रहे? अत: जब कर्म ही जीव का सहायक सिद्ध हो रहा है तो जो सब कर्म इस आत्मज्ञान के विकास के लिए सहायक हैं, उन्हें क्यों नहीं करता रहे? कर्म मात्र ही भ्रमात्मक है, यह बात पारमार्थिक रूप से यथार्थ होने पर भी व्यावहारिक रूप में कर्म की विशेष उपयोगिता रही है। तू जब आत्म-तत्व को प्रत्यक्ष कर लेगा, तब कर्म करना या न करना तेरी इच्छा के अधीन बन जाएगा। उस स्थिति में तू जो कुछ करेगा, वही सत्कर्म बन जाएगा। इससे जीव और जगत दोनों का कल्याण होगा। ब्रह्म का विकास होने पर तेरे श्वास प्रश्वास की तरंगें तक जीव की सहायक हो जाएँगी। उस समय फिर किसी विशेष योजना पूर्वक कर्म करना नहीं पड़ेगा, समझा?

प्रश्न : महाराज, मैं नाम-यश की आकांक्षा नहीं रखता। फिर भी आप जैसा कर रहे हैं, कभी-कभी मेरी भी वैसी इच्छा अवश्य होती है। परंतु विवाह करके घर-गृहस्थी में ऐसा जकड़ गया हूँ कि कहीं मन की बात मन ही में न रह जाए।

उत्तर : विवाह किया है तो क्या हुआ? माँ-बाप, भाई-बहन को अन्न-वस्त्र देकर जैसे पाल रहा है, वैसे ही स्त्री का पालन भी कर, बस। धर्मोपदेश देकर उसे भी अपने पथ में खींच ले। महामाया की विभूति मानकर उसे सम्मान की दृष्टि से देखा कर। धर्म-पालन में 'सहधर्मिणी' मान कर और दूसरे समय जैसे अन्य दस व्यक्ति देखते हैं, वैसे ही तू भी देखा कर। इस प्रकार सोचते-सोचते देखेगा कि मन की चंचलता एकदम मिट जाएगी। भय क्या है?

-साभार-विवेकानंद साहित्य, षष्ट-खण्ड

(चार)

रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के बीच एक दुर्लभ संवाद-

स्वामी विवेकानंद : मैं समय नहीं निकाल पाता, जीवन आपा-धापी से भर गया है।

रामकृष्ण परमहंस : गतिविधियाँ तुम्हें घेरे रखती हैं, लेकिन उत्पादकता आजाद करती है।

स्वामी विवेकानंद : आज जीवन इतना जटिल क्यों हो गया है?

रामकृष्ण परमहंस : जीवन का विश्लेष्ण करना बंद कर दो, यह इसे जटिल बना देता है। जीवन को सिर्फ जियो।

स्वामी विवेकानंद : फिर हम हमेशा दु:खी क्यों रहते हैं?

रामकृष्ण परमहंस : परेशान होना तुम्हारी आदत बन गई है। इसी वजह से तुम खुश नहीं रह पाते।

स्वामी विवेकानंद : अच्छे लोग हमेशा दु:ख क्यों पाते हैं?

रामकृष्ण परमहंस : हीरा रगड़े जाने पर ही चमकता है। सोने को शुद्ध होने के लिए आग में तपना पड़ता है। अच्छे लोग दु:ख नहीं पाते बल्कि परीक्षाओं से गुजरते हैं। इस अनुभव से उनका जीवन बेहतर होता है, बेकार नहीं होता।

स्वामी विवेकानंद : आपका मतलब है कि ऐसा अनुभव उपयोगी होता है?

रामकृष्ण परमहंस : हाँ, पर लिहाज से अनुभव एक कठोर शिक्षक की तरह है। पहले वह परीक्षा लेता है और फिर सीख देता है।

स्वामी विवेकानंद : समस्याओं से घिरे रहने के कारण, हम जान ही नहीं पाते कि किधर जा रहे हैं।

रामकृष्ण परमहंस : अगर तुम अपने बाहर झांकोगे तो जान नहीं पाओगे कि कहाँ जा रहे हो। अपने भीतर झाँको। आँखें दृष्टि देती हैं। हृदय राह दिखाता है।

स्वामी विवेकानंद : क्या असफलता सही राह पर चलने से ज्यादा कष्टकारी है?

रामकृष्ण परमहंस : सफलता वह पैमाना है जो दूसरे लोग तय करते हैं। संतुष्टि का पैमाना तुम खुद तय करते हो।

स्वामी विवेकानंद : कठिन समय में कोई अपना उत्साह कैसे बनाए रख सकता है?

रामकृष्ण परमहंस : हमेशा इस बात पर ध्यान दो कि तुम अब तक कितना चल पाए, बजाय इसके कि अभी और कितना चलना बाकी है, जो कुछ पाया है, हमेशा उसे गिनो; जो हासिल न हो सका उसे नहीं।

स्वामी विवेकानंद : लोगों की कौन सी बात आपको हैरान करती हैं?

रामकृष्ण परमहंस : जब भी वे कष्ट में होते हैं तो पूछते हैं, 'मैं ही क्यों?' जब वे खुशियों में डूबे रहते हैं तो कभी नहीं सोचते, 'मैं ही क्यों?'

स्वामी विवेकानंद : मैं अपने जीवन से सर्वोत्तम कैसे हासिल कर सकता हूँ?

रामकृष्ण परमहंस : बिना किसी अफसोस के अपने अतीत का सामना करो, पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने वर्तमान को सँभालो। निडर होकर अपने भविष्य की तैयारी करो।

स्वामी विवेकानंद : एक आखिरी सवाल, कभी-कभी मुझे लगता है कि मेरी प्रार्थनाएँ बेकार जा रही हैं।

रामकृष्ण परमहंस : कोई भी प्रार्थना बेकार नहीं जाती। अपनी आस्था बनाए रखो और डर को परे रखो। जीवन एक रहस्य है जिसे तुम्हें खोजना है, यह कोई समस्या नहीं जिसे तुम्हें सुलझाना है। मेरा विश्वास करो, अगर तुम यह जान जाओ कि जीना कैसे है तो जीवन सचमुच बेहद आश्चर्यजनक है।

प्रभाकर माचवे

समकालीन भारतीय कविता

पत्रिका 'साक्षात्कार' अंक-12, माह-जून-अगस्त 1979 से लिया गया।

मैं कविता का एक विनम्र पाठक हूँ। कई भाषाओं में, कई देशों, प्रदेशों की कविताएँ गए पैंतालीस वर्षों से पढ़ता आ रहा हूँ। जब मुझसे 'समकालीन भारतीय कविता' पर कुछ लिखने का 'साक्षात्कार' के संपादक ने आग्रह किया तो मैं सोचने लगा, क्या मैं इस विषय के साथ न्याय कर सकूँगा? अव्वल तो भारत में शायद ही कोई हो जो भारत की सब भाषाएँ पढ़ता हो और जो लोग भाषा जानते हैं (या पढ़ाते हैं) जरूरी नहीं कि उन्हें कविता से भी उतना ही प्रेम हो। तब क्यों न प्रयत्न किया जाए, कम से कम अपने देश की विविध भाषाओं में पढ़ी हुई कविताओं का एक विहंगम स्मृति-सर्वेक्षण करने का हर प्रयत्न अधूरा होगा, क्योंकि भारत महान है। उसकी संविधान-सम्मत पन्द्रह भाषाएँ महान हैं। उनमें भी संस्कृत जैसी 'क्लासिक' भाषा को मैं छोड़ रहा हूँ। 'समकालीन' चेतना की कविताएँ उसमें भी कुछ मित्र खोजकर दिखा देंगे। पर भाषाओं के 'क्लासिक' और 'आधुनिक' भेद में मेरा विश्वास है। बची चौदह भाषाएँ- उनकी गए एक दशक या दो दशकों की कविता की विशिष्ट धाराओं की यहाँ चर्चा है जितनी एक लेख में सामान्यत: सम्भव है। भारतीय अँग्रेजी कवियों को मैंने जान बूझकर छोड़ दिया है।

बीसवीं सदी के आरंभ में राष्ट्रीय संग्राम प्रधान कविता 'छायावादी' या रोमेंटिक हो गई। रवीन्द्रनाथ को 1913 में नोबेल पुरस्कार मिला। सुब्रह्मण्यम भारती तो बहुत पहले ही गुजर गए थे। सन् 30 में इक़बाल, सन् 41 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर और स्वराज्य के साथ-साथ ही साने गुरुजी चल बसे। नजरूल इस्लाम और 'निराला' मूक और विक्षिप्त हो चुके थे। जिन प्रतिभाओं से बड़ी उम्मीद थी, जिन्होंने भारतीय कविता में नवयुग निर्माण किया वे जीवनानंददास और बी.सी. मर्ढेकर, बीसवीं सदी के मध्याह्न में ही अस्त हो गए। ऐसी स्थिति में गत महायुद्ध के समय जो रोमेंटिक कविता 'प्रगति-वादी' बनी थी, वह भी थिरा गयी। नदी में जैसे उफान आया, उतर गयी बाढ़। बचे रह गए घोंघे और सीप-शंख, कीचड़-कांदो और रपटनभरी काई। मानवेन्द्रनाथ राय की पुस्तक का नाम है 'रोमेंटिसिज्म' रिवोल्यूशन में छायावाद-प्रगतिवाद अपनी 'अंधी गली के आखिरी मकान' में पहुँचे और विवेक का सूर्य कहीं उदय होता हुआ नजर नहीं आया। ऐसे समय एक शब्द कवियों को बड़ा सहारे का लगा। वह शब्द था 'मिथक'। आदिम बिंब- 'आर्केटाइप'।

क्या हम एक आदिवासी नहीं हैं? थोड़ा सा खरोंचिये- वही जात-पाँत, वही प्रदेशवाद, वही अंध भाषावाद उभर आएगा। कविता का अपना संस्कार होता है। पर यहाँ तो वही गाय है, हर कोई बहुत जल्दी दुहराने तिहराने लगता है। तब कवियों के कई प्रकार हो जाते हैं : (1) वे जो 'मिथक' को मिथक की तरह ही रहने देना चाहते हैं (2) जो 'मिथक' से प्रेरणा लेना चाहते हैं, उसे नया अर्थ देने की कोशिश करते हें (3) जो 'मिथक' से लड़ते हैं, जो 'मिथक' को प्रतिक्रियावादी मानते हैं, जो 'मिथक' को शत्रु मानते हैं (4) जो जानते हैं कि मिथक से छुटकारा नहीं है, पर जो उसके आगे हथियार भी नहीं टेकना चाहते हैं (5) जो अपना नया 'मिथक' निर्माण करना चाहते हैं- शब्दों से, बिंबों से, नए विचारों से।

समकालीन भारतीय कविता की बहुमुखी, अनेकरंगी छवि में एक धारा अतीतोन्मुखी है। मिथक से वह प्रेरणा लेनी चाहती है। उसे आधुनिक संदर्भ में पुनर्जीवित करना चाहती है। जीवित कवियों में, हिंदी का ही उदाहरण लें तो, कुँअरनारायण, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती, डॉ. विनय, जगदीश चतुर्वेदी, दुष्यंत कुमार, बलदेव वंशी, भारत भूषण अग्रवाल, नरेश मेहता आदि अनेक कवियों ने मैथिलीशरण, सियारामशरण, दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, राम कुमार वर्मा की ही तरह महाभारत रामायण, पुराण कथा, पुराख्यान से सीधे प्रेरणा ली। उन्हीं विषयों पर खण्डकाव्य महाकाव्य लिखे यथा नचिकेता, एकलव्य, उर्वशी, हनुमान, द्रोपदी, भरत, सीता की अग्नि परीक्षा कर्ण, गांधारी, अश्वत्थामा, राम, पांडवों का हिमालय गमन, विश्वामित्र आदि। यह प्रवृत्ति अन्य भारतीय भाषाओं में भी है : मलयालम में 'अमृत मंथन' चेरियन के। चेरियन का काव्य है, तो 'मेनका' एम.गोविंदन का। मराठी में स्व. ग. दि. माडगूलकर का 'गीत रामायण' बहुत लोकप्रिय हुआ। बांगला में बुद्धदेव बसु ने ऋष्यशृंग की कथा पर पद्य-नाटक लिखा और ओड़िया में जीवन वाणी ने दीर्घतमस पर। यहाँ तकि कि उर्दू भी इससे मुक्त नहीं है : सागर निजामी ने 'शाकुंतल' का अनुवाद किया। [illegible] ने '[illegible] का सफरनामा' कविता का विषय बनाया, हरीन्द्र दवे ने गुजराती में 'सूर्योपनिषद' रचा। अनिल कुमार ने 'गारुड़ मंत्र' तंत्र-दर्शन पर आधारित लिखा। वीरेन्द्र कुमार जैन अहिंसक ढँग से अतीन्द्रिय अध्यात्म के सूर्योदय की राह देखते रहे और ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं...।

यह प्रेरणा केवल मिथक वाले आख्यानों से ही नहीं पर इतिहास से भी मिलती रही है। प्राय: सभी भारतीय भाषाओं के कवि इतिहास को पुन: खुली आँखों से देखने लगे हैं। इसी का परिणाम है कि हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के समय इतिहास को देखने की रोमांटिक दृष्टि (हाली के 'मुसद्दस' और मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत भारती') या 'पूर्व दिव्य ज्यांचे त्यांचा रम्य आदिकाल' (मराठी में सावरकर या शिवाजी पर महाकाव्य रचने वाले यशवंत) या सुब्रह्मण्यम भारती की ही धारा में भारतीदासन का प्राचीन तमिल संस्कृति का गुणगान या इतिहास के महापुरुषों को अति-मानव मानने की वृत्ति (जिसमें से इक़बाल की 'खुदी' का फलसफ़ा और 'मर्दे-मोमिन' की बात उठी) या बार-बार इतिहास में प्रतीकों का स्मरण 'बाबरेर प्रार्थना' (शंख घोष, बांगला) या श्रीकांत वर्मा का चंगेज और नादिर शाह को याद करना आदि, सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं। इतिहास के भग्नावशेष भी कई कवियों के लिए सैरगाह ही नहीं, पूजा-स्थल हैं (सरोजिनी नायडू की 'गोलकोंडा के महल', या उमाशंकर जोशी की शिवाजी के 'शिवनेरी' किले पर कविता) तो उससे विपरीत जगदीश चतुर्वेदी 'इतिहास-हंता' कहकर इतिहास को अस्वीकार करने में लगे हैं।

जैसे आत्यंतिक श्रद्धा के कारण पूजा-भाव और आत्यंतिक विरोध इतिहास और मध्ययुगीन जीवन के प्रति मिलता है, हमारे राष्ट्रीय आंदोलन और उसके महापुरुषों (यथा तिलक, गाँधी, सुभाष, नेहरू आदि) के प्रति भी यही परस्पर विरोध प्रेम-धन-तिरस्कार का भाव (ऐंबीबैलेन्स) पाया जाता है, गाँधीजी के प्रति स्तोत्र और महाकाव्य लिखने की ललक एक ओर है तो दूसरी ओर

मराठी कवि विंदा करंदीकर की गाँव के भाई पर कविता (एक बार उस बूढ़े की मैं हजामत करना चाहता था) या मुक्तिबोध के 'अँधेरे में' गाँधी की प्रतिमा का अतियथार्थवादी वर्णन, 'गाँधीजी के तीनों बंदर बना रहे हैं बापू को' (नागार्जुन का व्यंग्य); या फिर सख्त गाँधी विरोधी कविताएँ, झुँझलाहट से भरी, अहिंसा की विरोधिनी (परशुराम की प्रतीक्षा- दिनकर) या आज गाँधीवाद की संदर्भ-च्युतता दरशाने वाली रचनाएँ भी लिखी गई हैं। जो बात गाँधीवाद के बारे में सही है, वही हिंदुत्व-निष्ठता, समाजवाद, साम्यवाद आदि राजनैतिक विचार-धाराओं और उनके प्रवर्तकों के विषय में कवियों के बदलते हुए दृष्टिकोण की परिचायक है। कुछ भाषाओं में, जैसे गुजराती में गाँधी-विरोधी कोई रचना नहीं मिलेगी, वैसे ही मराठी में हिंदुत्व-निष्ठा और समाजवादी विचार-धारा का विचित्र सम्मिश्रण कुछ कवियों में पाया जाता है, बंगाली, मलयालम और उर्दू में मार्क्सवाद का प्रभाव सर्वाधिक है। उसमें भी कई शाखा-प्रशाखाएँ हो गईं। कई भूतपूर्व मार्क्सवादी घोर व्यक्तिवादी बन गए, कुछ मार्क्सवादी धर्म और अध्यात्म की ओर झुक गए कुछ 'नास्तिक अस्तित्ववादी' बन गए। कुछ ने लिखना बंद कर दिया, कुल मिलाकर हम 'विचार-कविता' की कितनी ही बात करें और चौथा सप्तक की भूमिका में 'अज्ञेय' ने कवियों की बौद्धिक प्रतिबद्धता की चर्चा की है, फिर भी कवि और वैचारिक पक्षधरता का संबंध एक अत्यंत विवादास्पद बात बनी रही है। कई बार बहुत अच्छे कवियों की राजनैतिक प्रतिबद्धता बहुत जनप्रिय नहीं रही है। सावरकर कट्टर हिंदुत्वनिष्ठ थे- पर उनकी कविता उस संकीर्णता से बहुत ऊपर की चीज है। एजरा पाउंड को फासिस्ट प्रचार करने के कारण गत महायुद्ध में अमेरिका ने निष्कासित कर दिया था। रवीन्द्रनाथ-शताब्दी के वर्ष में काप्रो द्वीप से एक पत्र एजरा पाउंड ने टेढ़े-मेढ़े टाईप करके केन्द्रीय साहित्य अकादमी को भेजा था, जिससे परवर्ती 'निराला' की मानसिकता, अर्द्धविक्षेप का संकेत मिलता था।

भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कवियों का एक वर्ग इस स्वतंत्रता से बहुत आश्वस्त नहीं हुआ था। कुछ लोगों ने बहुत उत्साह से उसका स्वागत किया था। नेहरू-काल यानी 1947 से 1964 तक के कवियों में से अधिकतर लोग नेहरू के व्यक्तित्व से जैसे चेतन-अचेतन रूप से आकर्षित थे, वैसे शायद ही किसी और नेता के व्यक्तित्व से हों। 'जोश' मलीहाबादी तो उनके अंतरंग मित्र थे, बच्चन उनके विदेश-मंत्रालय में इलाहाबाद से खिंचकर आ गए थे, 'दिनकर' के 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका उन्होंने लिखी, 'अज्ञेय' ने उन पर नेहरू अभिनंदन ग्रंथ संपादित किया, सुमित्रानंदन पंत की उन पर एक कविता है। अन्य भाषाओं की नेहरू के प्रति कविताएँ 'शांतिदूत' पुस्तक में संग्रहित हैं जो दिनकर जी ने संपादित की थी। (मैंने उनमें मराठी कविताएँ खोजकर अनुवाद करके दी थी) आचार्य अत्रे जैसे नेहरू के सख्त आलोचक नेहरू की मृत्यु के बाद 'सूर्यास्त' नामक सुंदर पुस्तक लिखते हैं, जिसमें उनके 'मराठा' पत्र में लिखे तेरह दिन के संपादकीय हैं।

नेहरू युग में आधुनिक भारतीय कवियों के रूस-चीन-समर्थक साम्यवादी और उनके मुखर विरोधी साम्यवाद-आलोचक अमेरिकी-यूरोपीय कवियों की अनुकृति करने वाले रचनाकार कहीं-कहीं कुछ भाषाओं में स्पष्टत: दिखाई देते थे पर अधिकतर शीतयुद्ध के दोनों छोरों के बीच कहीं के यानी न अमेरिका न रूस-समर्थक अपनी राष्ट्रीयता के पोषक अधिकतर कवि विकासशील देश की ओर वात्सल्य और कुतूहल से देख रहे थे। योजनाएँ बन रही थीं, उपयोगीकरण बढ़ रहा था, गाँवों से जनता शहर की ओर खिंची आ रही थी। कुछ अच्छे कवि रेडियो, सिनेमा आदि जन-प्रचार माध्यमों में चले गए। बल्कि कहें कि खप गए। कई वहाँ की जीवन-पद्धति के मंथर मदमातेपन में 'शै और शराब के मारा' कहते हुए दम तोड़ बैठे। हर भाषा में ऐसे दो-चार उदाहरण हैं, उर्दू में अधिक। उर्दू के मजाज, मलयालम के वायलार, तमिल के कन्नदासन, तेलुगु के आलूरी बैरागी चौधरी, पंजाबी के शिवकुमार बटालवी, हिंदी के 'रेणु' आदि अनेक गहरी बीमारियों के शिकार होकर

अकाल काल-कवलित हो गए [illegible] पर उसकी कमजोरियों को बढ़ावा देने वाली यंत्र-युग की 'परात्म भाव' (एलियनेशन) बढ़ाने वाली एकाग्रता और उससे बचने के अनेक उपाय, 'तौबा को तोड़-तोड़ के लहरा के पी गया' (जिगर) भी शामिल है, राजकमल चौधरी और दुष्यंतकुमार हिंदी के इधर के प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

सन् 64 में चीनी आक्रमण के गहरे सदमे से नेहरू स्वर्गवासी हुए और समकालीन कविता का मुहावरा यहाँ से उदय तेवर लेकर सामने आया। सोद्देश्य रचनाकारों ने चीन-विरोधी, बाद में पाकिस्तान-विरोधी, और सन् 71 में बांगला-देश की मुक्ति संबंधी कविताएँ लिखीं। बहिर्मुखी कवियों ने ऐसा किया हो इतना ही सच नहीं। बड़े-बड़े व्यक्ति वादी, प्रयोगशील और तथा-कथित 'तटस्थ' कवियों ने भी ऐसा ही किया। कैलाश वाजपेयी और इन्दु जैन ने 'कल्पना' और 'ज्ञानोदय' आदि में लिखा इसमें आश्चर्य नहीं, पर 'अज्ञेय' और रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर और राजकमल चौधरी ने भी ऐसी कविताएँ लिखी हैं जिनमें 'दिक्कालातीत' तत्व कम हैं। अन्तर्मुख कवियों में स्वतंत्रता के बाद जो धारा न केवल छन्द, शैली, शब्द-रचना आदि के प्रयोग कर रही थी, वह और अधिक 'अ-सामाजिक' होती गई। यानी पहले ही वे रसिक, भावुक या श्रोता-पाठक की परवाह नहीं करते थे। उनमें से एक ओर गुस्सैल, बड़बोला, सर्व-विनाशवादी वर्ग मुँह बिराने लगा, 'समाज? ठेंगे से? बीटनिक असर कहिए या बंगाल की 'क्षुत्कातर पीढ़ी' (हंग्री जनरेशन), तेलुगु की 'दिगंबरलु कविता' और विप्पलवी रचनाकार संधमु. मराठी की छोटी पत्रिकाएँ छंद, शब्द, बाचा, येरु, फक्त, अबकडई, टिंव, चक्रवर्ती से शुरू होकर दलित पैंथर आंदोलन तक, हिंदी की 'अ-कविता' पत्रिका और 'प्रारंभ' 'निषेध' जैसे संग्रहों तक इस तरह की कविता के कई रूप हैं। इसी में गुजराती के 'रे मठ' और पंजाबी के मृत्यु-बोध' जैसे कवियों की। उसी धर्म की छोटी पत्रिका, उड़ीसा की ग्रे स्टोन पत्रिका और आदिवासी कविता की ओर प्रत्यावर्तन का महापात्री मुहावरा, तमिल [illegible] ग्रुप और कन्नड़ के इमरजेंसी-विरोधी 'इन्दिरा! इन्दिरा!! इन्दिरा!!!' संग्रह जैसे अनेक आंदोलन, लघु-पत्रिकाएँ, संकलन और कवि-समूह आते हैं। आलोचक कहेंगे कि इन सबको एक लाठी से हाँकना उचित नहीं। चूँकि इनमें सामाजिक दृष्टि से उच्च वर्ण-विरोधी, तथाकथित नीची जाति, दलित या नव-बौद्ध हरिजन कवियों का एक अलग स्वर है; राजनैतिक दृष्टि से इसमें नक्सलवादी भी हैं तो सी.पी. (एम) वाले भी; कई तरह की भाषा और शैली के प्रयोगकर्ता भी हैं जैसे मराठी में र. कृ. जोशी की 'मूर्त कविता' (ठोस कविता) या 'पोस्टर कविता' के भाऊ समर्थ के प्रयोग आदि।

अब, इन प्रवृत्तियों की मोटी-मोटी रेखाओं को अंकित करने के बाद भाषावार कुछ नाम और विशेष प्रवृत्तियाँ भी यहाँ संक्षेप में, नोट कर रहा हूँ। यह मेरी जानकारी कुछ तो विभिन्न प्रदेशों में घूमने, कवियों से व्यक्तिश: मिलने, कुछ अनुवाद या मूल में रचनाएँ पढ़ने और कुछ सुनी हुई जानकारी पर आधारित है। अत: मेरी यह सब सूचनाएँ अंतिम या 'आप्तवाक्य' प्रमाण नहीं हैं। मुझसे मतभेद रखने वाले भी अनेक होंगे। कइयों के नाम, इस छोटे से लेख में, छूट भी गए होंगे। पर उसके लिए हर भाषा पर एक विस्तृत लेख की राह देखनी होगी।

पूर्वांचल में असमिया में नवीनतम शैली के प्रवर्तकों में; जीवित कवियों में नवकांत बरुआ प्रधान हैं। 'मोर अरु मोर पृथिवीर' (1973) उनका सर्वोत्तम कविता-संग्रह है। अजित बरुआ गीतकार होने पर भी इसी ग्रुप के कवि हैं, जो समकालीन मोहभंग के कवि हैं। यांत्रिक औद्योगीकरण से ग्रामीण अतीत की शांति नष्ट हो गई, युद्धान्माद ने मनुष्य को वहशी बना दिया है, भोलापन अब नहीं रहा, यही स्वर इन कवियों में मुख्य है। हरी बरकाकटी, हीमेन बरगोहांई, वीरेश्वर बरुआ और प्रफुल्ल मुहयाँ इन्हीं प्रयोगधर्मी आत्मोन्मुखी कवियों में हैं। दूसरा दल साम्राज्यवाद-विरोधी, पूँजीवाद-विरोधी, संप्रदायवाद, विरोधी बहुर्मुखी कवियों का है। अमूल्य बरुआ और स्व. हेम बरुआ (समाजवादी दल से लोकसभा के सदस्य)

आदि के बाद औरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, राम गोगोई, केशव महंत इस मार्क्सवाद-प्रभावित कवि-समूह में आते हैं। साठोत्तरी पीढ़ी में इन दो कवि-समूहों की दरार बढ़ती गई : एक ओर बिंबवादी, रूपवादी, दूसरी ओर प्रतिबद्ध मार्क्सवादी, महिम बरा, नीलमणि फूकान, ('काइत गोलाप अरुण कहात' 1977), कवयित्री निर्मला प्रभा बार्दलेई, भवने बरुआ, हरेकृष्ण डेका प्रथम वर्ग के कवि हैं। जनवादी कवियों में हीरेन गोहांई, रवीन्द्र सरकार आदि हैं। कुछ ऐसे भी कवि हैं, जिन्हें किसी वर्ग में नहीं डाला जा सकता- यथा हीरेन भट्टाचार्य और हीरेन्द्रनाथ दत्त, हीरेन गोहांई ने उनके बारे में 'भोर देश' के कविता विशेषांक (अक्टूबर 77) में एक पत्र में लिखा, 'दत्त आज के सब कवियों में सर्वाधिक भिन्न, अपनी अनुभूतियों और विचारों के प्रामाणिक कवि हैं।'

बांगला की स्थिति बहुत विचित्र है। जबकि अधिकांश जनता क्या रेडियो पर क्या उत्सवों में रवीन्द्र संगीत और नजरुल-गीति ही सुनती है, विशेष काव्य-प्रेमी जीवनानंद दास, सुधीन्द्र नाथ दत्त, बुद्धदेव बसु को कविता में आधुनिकता का जनक मानते रहे हैं। अब वे तीनों ही नहीं रहे। पहले दो तो अनुकरणीय हैं। बुद्धदेव के नरेश गुहा, कविता सिंह आदि शिष्य कहे जा सकते हैं। मार्क्सवादी कवियों में विष्णु दे के बाद सुभाष मुखोपाध्याय उनके पुरोधा रहे हैं 'पदातिक' (1940) से ही, यद्यपि सुकांत भट्टाचार्य (1926-47), जो अल्पवय में ही जान खो बैठे, सुभाष से भी अधिक जन-प्रिय रहे। सुभाष को 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। बाद में अफ्रो-एशियाई लेखक संघ का लोटस पुरस्कार भी। उनके बाद की पीढ़ी में उतने मार्क्सवाद से प्रतिबद्ध नहीं, पर जाने-माने कवि हैं पचपन वर्षीय नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती। भूखी पीढ़ी आई और गई, शक्ति चट्टोपाध्याय ही उनमें से थोड़े याद किए जाएँगे। मंगलाचरण चट्टोपाध्याय और वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय और सिद्धेश्वर सेन जनवादी कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। पर सुनील गांगुली, दिनेश दास के बाद इस समय सबसे प्रसिद्ध बंगाली कवि हैं। शंख घोष, जो 47 वर्ष के हैं। लोकनाथ भट्टाचार्य ने भी, अपनी फ्रेंच कविता की अभिज्ञता से, कुछ उत्तम प्रयोग किए हैं। पर कुल मिलाकर, आलोचकगण शिकायत करते हैं कि आज बंगाल के पास कोई महाकवि नहीं है और उस भाषा की कविता की प्रेरणा बहुत कुछ परभूत (उधार की, बाहर की कविता की अनुकृति वाली) है।

ओड़िया कविता में (स्व.) मायाधर मानसिंह के बाद शोची राउत राय ने आधुनिकता का प्रारंभ किया, वे मुक्त छंद लाए। उनकी 'बाजी राउत' और अन्य कविता के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका हुमायूँ कबीर ने लिखी थी। शची राउत राय का मार्क्सवादी रुझान केवल बौद्धिक फैशन की तरह था। पर अनन्त पटनायक साम्यवाद समर्थक कवि रहे हैं। गुरुप्रसाद महांती ने आधुनिकता को आगे बढ़ाया, उसके 'चांपा फूल' में भाव-संवेदन की सूक्ष्मता और 'काल-पुरुष' में टी.एस. एलियट जैसी निस्संगता एक साथ नजर आती है। उसी तरह के दूसरे विशिष्ट शैलीकार हैं रमाकांत रथ। 'अनंत शयन' से उन्होंने शुरू किया, उनकी कुछ कविताओं पर दुर्बोधता का आक्षेप लगाया गया। सीताकांत महापात्र ने आदिवासी (खोंड, परजा, संथाल आदि) कविताओं के अनुवाद भी किए और उनसे प्रेरणा ग्रहण की। सौभाग्य मिश्र तरुण कवियों में सबसे अधिक सशक्त हैं, कम शब्दों में सबसे अधिक अर्थ, टटके बिंब और गहन काव्य-विचार उनकी रचनाओं में हैं। जगन्नाथप्रसाद दास ने 'प्रथम पुरुष' (हिंदी में भी अनुवादित, अँग्रेजी में भी 'लव इज ए सीजन') से अपनी कविता में जादुई, वायवी, यक्ष-नगरी को जैसे छूने का यत्न किया। बार-बार 'तिलिस्म', 'ताबीज' नई कविता के अवचेतन में भय-विस्मय को इंगित करता है। और अच्छे कवि हैं- राजकिशोर एण्ड, देवदास छोटराय, हरिहर मिश्र, फणि महांती, हरिचंदन तुलसीदास आदि।

दक्षिण भारत के कवियों में, तमिल में आलोचकों ने बाकायदा काँग्रेस कवि, डी.एम.के. कवि और कम्युनिष्ट कवि भेद किए हैं। सुब्रह्मण्यम् भारती जैसे राष्ट्रीय कवि के अनुयायी भारती-दासन आरम्भ में 'मुल्लै-काडु' में

राष्ट्रीय गीत लेखक के नाते उभरे। धीरे-धीरे तमिल भाषा और तमिलनाडु उनका देवता बन गया। 'पणमुख मनमुख' (पैसा ही मानव मूल्यों का स्थान ले रहा है) कहते हुए श्रम जीवियों के गीत उन्होंने लिखे। भारतीदासन के 'पिचिरांत्तेयार' नाटक को मरणोपरांत पुरस्कार मिला। इसमें 'तमिलवाद' का जोरदार प्रचार है। वाणीदासन, सु.बु.दा (सुब्बु रतिन दासम्) मुडि आसन आदि इसी तरह की प्रादेशिक राष्ट्रीयता के कवि हैं। शुद्धानन्द भारती ने 'भारत माता शक्ति काव्यम्' लिखा। कोत्त मंगलम् सुब्बु ने 'गाँधी चरितकथै', लिखी। यह सब सन् साठ तक चलता रहा। अंग्रेजी के प्रोफेसर ए. श्रीनिवास राघवन आदि ने रविन्द्रनाथ की 'उर्वशी' और अंग्रेजी (रोमेंटिक कवियों की दार्शनिकता ब्राउनिंग आदि) की धारा तमिल में लोकप्रिय बनाई। आल इंडिया रेडियो के कंदस्वामी, सेंतामरै (के.पी.एम. हमीद) आप्पस्वामी आदि ने धर्म-निरपेक्षता और मानवतावाद पर बल दिया। द्रविड़ मुन्नेट कलगम के कवि भारतीदासन के झंडे के नीचे जमा हुए। उनमें सबसे प्रसिद्ध हुए भूतपूर्व मुख्यमंत्री 'कवै कलंजियर' (कवियों के कवि) करुणानिधि। अन्नादौरै की मृत्यु पर उनके विलाप-गीत बहुत लोकप्रिय हुए। कम्युनिष्ट कवियों में जी-वा, रघुनाथन (उर्फ तिरुचित्र्यं-बालक कविरायर), पट्टुकोर्ट कल्याण सुन्दरम् और के.सी. अरुणाचलम् विख्यात हैं। परंतु किसी लेबल से मुक्त जो कवि नहीं हैं उनमें सालै इलंतरियनन्, राजेन्द्रन, इलम् भारती, तूरन्, का ना. सु., सिपफल, शक्तिक्कानल आदि बहुत से नए लोग हैं, जिनमें कई प्रयोगशील भी हैं। प्रियमूर्ति उर्फ भिक्खु ने पुराने छंद छोड़ दिए अपनी 'कुमिलिन सुरुदि' में, टी.एस. वेणुगोपालन ने, इंजीनियर होने से, 'कोयै वयल' में औद्योगिक जीवन के छंद को पकड़ा है। चौबीस कवियों की मुक्त छंद में लिखी 63 कविताएँ 'उदयनीलल' में हैं। कामराजन ने हिजड़ों पर 'कवितापप्पुक्कल' और नीग्रो लोगों पर 'करुप्पु मलरगल' कविताएँ लिखी हैं। जो बहुत सशक्त हैं। 'मि.रा. (मि. राजेन्द्रन्) ने 'कनुवगल+कर्पनैगल=कागिर्तगल' नामक कविता में निराश प्रेम और भग्न स्वप्न केवल कागज बने रह जाते हैं ऐसी स्थापना की है।'

तेलुगु नव्य-कविता के सबसे बड़े उद्गाता थे श्री.श्री. (जो इमरजेंसी में 'विप्लवी रचनाकार संघम'-'विरसम्'- के कवियों के साथ जेल भी गए) उन्हीं के प्रगतिशील अनुयायी अरुद्र, कुंदूर्ति, शेषेन्द्र शर्मा, शिष्टला आदि ने 'श्री.श्री.' के अराजक मुहावरे को अपनाया जैसे 'श्री.जी.' लिखते थे, ब्रेन लो ब्रेनगुन। रेन् लो आलोचनल ट्रेन। स्पेनल कार्ड लो स्पेन... आदि। सोम सुन्दर के 'वज्रायुधम्' में जन-शक्ति की विजय का विश्वास था, उसने निजाम को ललकारा था- 'खबरदार, खबरदार, निजाम पादशाहे'। आनिसेट्टी की 'अग्नि वीणा' शांति के लिए गुहार थी, महायुद्ध के विरुद्ध। इसी समय 'वचन कविता' (मुक्त छंद की रचनाएँ) शुरू हुई। बेल्लम कोंडा, इलचेरी आदि ने अपने को 'नायगारा' कवि कहा, कुंदूर्ति का 'तेलंगाना' बहुत प्रसिद्ध हुआ। उन्हीं में अरिपिरल विश्वम् गोपाल चक्रवर्ती, मदिरंजु रंगराव प्रगतिशील धारा के कवि हुए। रोमेंटिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण का समन्वय स्वर्गीय बाल गंगाधर तिलक नामक कवि में मिलता है जिसकी 'अमृत बरसाने वाली रात्रि' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला (मरणोपरांत)। व्यक्तिवादी काव्य धारा श्रीरंगम् नारायण बाबू से ही शुरू हो गई थी। बैरागी (हिंदी में 'पलायन' के कवि) ने 'चीकटि नीदलु' (अंधकार की छायाएँ) में अति यथार्थवादी रचनाएँ दीं। उसकी 'नूर्ति लो गोंतुकुल' (कुएँ की आवाजें 1951) उसी 'वीरान जमीन' (बेस्ट लैड) और अस्तित्ववादियों के चिंतामिश्रित क्रोध से भरी हैं। आंध्रप्रदेश के निर्माण के बाद दाशरथी के 'शतकम्' में और सी.नारायण रेड्डी के 'नागार्जुन सागरम्' में वही स्वतंत्र भारत के प्रति आशावाद प्रकट है। सोमसुंदर ने 'पंचशील' लिखा और बाद में घरंजिनी के गीत। दुर्गानंद भी 'अंतर्गोलालु' की चिनगारियों से शुरू कर 'मधूलिका' के शांतिमंत्र तक ठंडे होते गए। वे मन के वचनों की तरह मलनि 'गलीवीर मात' (छोटे-छोटे सूत्र) लिखते रहे। कालोजी ने पद्य में

व्यंग्य-कथा लिखी 'ना गोदव' (मेरी कहानी)। जोषुवा ईसाई कवि थे, जिन्होंने चमगादड़ और फिरदौसी लिखा था, ईसा मसीह पर काव्य लिखने लगे। वे अब नहीं हैं। ईसा के काव्य पर उन्हें अकादमी पुरस्कार मिला।

हैदराबाद में एक रिक्शा-वाले की लात, 1965 की मध्य रात्रि में, कविता पुस्तक पर मारकर, दिगम्बर कवियों का प्रथम संग्रह उद्‍घाटित हुआ। फिर विजयवाड़ा में 1966 में दूसरा संग्रह एक होटल के बैरा ने विमोचित कराया, 1968 में विशाखापट्टनम में एक भिखारिन द्वारा तीसरा संग्रह विमोचित हुआ। निखिलेश्वर, नग्नमुनि, 'ज्वालामुखी', 'महास्वप्न', 'चेखण्डराजु' ने अपनी जाति, नाम छोड़ दिए। भयानक, चौंकाक, फूहड़, प्रतिष्ठान-विरोधी कविताएँ लिखीं। उन्हें वीभत्स और अश्लील कहा गया। उसमें कै, पस, मूत्र, विष्ठा, जूँ, झींगर, आदि अपशब्द काफी हैं। इन्होंने सी. विजयालक्ष्मी नामक मार्क्सवादी कवयित्री से भी प्रेरणा ली। 70 के मध्य में दिगम्बर आंदोलन समाप्त हुआ। वे अपने को 'विरसम्' कहलाने लगे, 'श्री.श्री.', कुटुंबराव, के.वी. रमणरेड्डी उनके नेता थे। गुंटूर के छह कवियों ने दिगम्बर के बदले 'पैगंबर' कविता शुरू की, इन छह में एक महिला भी थी। 'जीव नाड़ी' के कवि बरबरराय इनके नेता हैं। रंडिसोम राजु ने 'विरिगिना कल्चर' में गाँव की ठेठ भदेस भाषा लिखी। सी. बी. कृष्णाराव ने हरिजनों की जीवन-पद्धति और भाषा को काव्यात्म दिया। तेलुगु में एक साथ देवुलपल्लि, कृष्ण शास्त्री (देखें-मेरा उन पर निबंध, 'व्यक्ति और वाङ्मय', 1952 में) पंत जैसे रोमेंटिक गीतकार हैं (जो अब बेचारे स्वरहीन हो गए हैं) तो श्री.श्री. जैसे प्रगतिवादी भी हैं और एकदम नए तरुण प्रयोगशील कवि भी हैं।

मलयालम में 2 फरवरी 1977 को जी. शंकर कुरूप का देहांत हो गया, जो न केवल भारतीय ज्ञानपीठ के प्रथम पुरस्कार विजेता थे पर उस भाषा के पंत-प्रसाद एक साथ थे। उस भाषा के रवीन्द्रनाथ और 'निराला' (स्व.) वल्लत्तोल नारायण मेनोन की तो गत वर्ष जन्म शताब्दी बड़े ही भव्य ढंग से सारे केरल राज्य में मनाई गई। बालमणि अम्मा (कमलादास उर्फ माधवी कुट्टी की अम्मा) वहाँ की महादेवी वर्मा हैं। उनकी कविता में वात्सल्य और भक्ति कूट-कूट कर भरी है। परशुराम के कुल्हाड़े पर उन्होंने भी लिखा है, पर 'दिनकर' से भिन्न दृष्टि से। वहाँ जन विश्वास है कि केरल प्रांत इसी कुल्हाड़े को समुद्र में फेंकने से बन गया। वेणिकुल्लम और कुंजिरामन अपनी बिंबात्मकता और सुंदर शैली के लिए विख्यात हैं। वायलोपल्ली की कविता में केरल के वर्तमान समाज जीवन की झाँकी है। एन.बी. कृष्णवारियर ने 'गाँधी और गोड़से' में अपनी पैनी व्यंग्य दृष्टि का परिचय दिया है। प्रो. विजयन ने आधुनिक मलयालम कविता हिंदी में अनुवादित की है, ग्रंथ रूप में सुगतकुमारी वहाँ की अधुनातन कवयित्री हैं। एन.वी. कृष्णवारियर के कविता-संग्रह मढेंकर और शमशेर बहादुर सिंह के कविता संग्रह की ही तरह 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और लम्बी कविताएँ' शीर्षक से छपी हैं। 'मरे हुए चूहों' पर वारियर की कविता, 'सुंदरम्' की 'उंदरडी' ('कोया भगत नी कड़वी वाणी'-गुजराती) और मर्ढेकर की 'पिपांत मेले ओल्या उंदिर' से भिन्न है : 'क्या कभी कोई चूहा भूख से मरा है? हममें न विजय न दासता है, हम स्पर्धा तक नहीं करते। मूर्खों, तुम चूहे हो या आदमी?' ओ. एन.बी. कुरूप संगीतमय रचना करते हैं। नवीनतम कवियों में विष्णु नारायण नपूंतिरी, अय्यप्पन पणिक्कर, चाको, करुणाकरन आदि प्रसिद्ध हैं।

कन्नड़ में छायावादी रहस्यवादी धारा के महाकवि द. र. बेन्द्र (अंबिका तनयदत्त) और अरविंदवादी महाकाव्यकार कु. वें. पुट्टप्पा (दोनों ही ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता) के बाद तथ्यधारा गोपाल कृष्ण अडिग ने शुरू की। हिंदी के 'अज्ञेय', मराठी के मर्ढेकर, बांगला के बुद्धदेव वसु की तरह अडिग का नया मुहावरा एक धारा बन गया। प्रगतिशील धारा वहाँ बहुत प्रबल नहीं रही। पर प्रयोगशील धारा में कई और लोग आगे बढ़े। ककी, पु.ति. नरसिंहाचारी, राजनम्र के. एस. नरसिंहस्वामी,

दिनकर देसाई, जयदेवताई लि[illegible] का भी निर्वाह करते रहे। पर और अधिक प्रयोगशील और क्रुद्ध मुद्रा ए. के. रामानुजन्, निसार एहमद, लंकेश, चन्द्रशेखर पाटिल आदि की कविता में पाई जाती है। लंकेश की कविताएँ हिंदी 'आलोचना' में अनुवादित होकर छपी हैं। चेन्नवीर कणवी, नाडिग, सिद्धलिंग पट्टनशेट्टी भी कुछ और कवि हैं जो अच्छे नए कवि माने जाते हैं।

भारत के पश्चिमांचल की तीन भाषाओं गुजराती, मराठी, सिंधी से हिंदी-भाषियों का काफी निकटतम संपर्क है, इसलिए उनके बारे में और उत्तर अंचल के कश्मीरी, पंजाबी, उर्दू आदि के बारे में अधिक विस्तार से कम लिख रहा हूँ, जो स्थिति हिंदी की है, कमोवेश वहाँ भी है। रोमेंटिक और राष्ट्रीय प्रगतिवादी कविता का दौर स्वराज्य के पहले तक चलता रहा, उसी की प्रलम्बित छाया नेहरू-युग तक पड़ती हुई नजर आती है। गत दस पन्द्रह वर्षों में कुछ सख्त मुकाबला बहिर्मुखी-अंतर्मुखी, सोद्देश्य-निरुद्देश्य, प्रगतिवादी-प्रयोगशील कविता में नजर आता है। मराठी में भारत की बांगला, मलयालम आदि अन्य भाषा की तरह सर्वाधिक प्रयोगोन्मुखता नजर आती है। मर्ढेकर की मृत्यु (1957) के बाद गत बाइस वर्षों में उन्हीं के से मुहावरे में लिखने वाले अनेक कवि हुए। पर दिलीप चित्रे, 'ग्रेस', आरती श्रमु के नाम विशेष रूप से किए जा सकते हैं। मंगेश पाडगाँवकर, बिंदा करंदीकर, बसंत बापट (पहले तीनों मिलकर कवि सम्मेलन किया करते थे) धीरे-धीरे तीनों की तीन दिशाएँ हुईं- मंगेश ने राजनैतिक व्यंग्य भी लिखे, 'वात्रटिकाएँ' भी लिखीं, बिंदा ने मुक्त सुनीत और 'ताल-चित्रों' के साथ-साथ 'विरूपिकाएँ भी, बसंत बापट अपने रंग में ही लिखते रहे, समाजवादी, राष्ट्र सेवा दल के लिए भी लिखा और 'इमरजेंसी विरोधी' कविताएँ भी। तीनों ने मराठी की नव-कविता को जनता तक पहुँचाने की और जनाभिरुचि समृद्ध बनाने, बदलने की कोशिश की। पर एक ओर शरतचन्द्र मुक्तिबोध, नारायण सुर्वे, सतीश कालसीकर [illegible] कवि और दूसरी ओर विभंजक कविताएँ लिखने वाले 'दलित' कवि (नामदेव सालूबाई ढसाल, दया पँवार, राजा ढाले, गुरुनाथ धुरी, केशव मेश्राम, वामन हंगले, इत्यादि), मराठी की मर्ढेकर से चित्रे तक चलने वाली व्यक्तिवादी कविता के एकदम दूसरे छोर पर हैं। वे कविता को शास्त्र की तरह प्रयुक्त करना चाहते हैं। इन दो अतिवादों के बीच में पुरानी पारंपरिक गीतवादी धारा (ताँबे से चलकर बा.भ. बोरकर, राजा ढाले, ग.दि. माडगूलकर और महानोर तक) बराबर जनप्रिय ढँग से चुपचाप बहती जाती है। रवीन्द्रनाथ की 'नदी' और 'सरि, धीरे बह री' (निराला) एक तीसरा बहुत महत्वपूर्ण प्रयोगधर्मी वर्ग उन कवियों का है जो किसी 'वाद' या साँचे में नहीं रखे जा सकते, उनकी विचारधारा कहीं-कहीं अस्तित्ववादी है और शैली प्रयोग-प्रधान। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं या थे, पुरुषोत्तम शिवाराम रेगे। और फिर एक पूरी पीढ़ी ऐसे नवीनतम कवियों की है जिनमें अरुण कोलटकर और बसंत आबाजी डहाके और 'सत्यकथा' से छपने वाले दर्जनों कवि हैं। जिनमें से एक कोई नाम लिया नहीं जा सकता, पर उन्होंने मराठी काव्याभिरुचि को नया मोड़ तो दिया ही है।

गुजराती की समकालीन कविता में दो ही प्रसिद्ध पुराण-पुरुषा हैं : उमाशंकर जोशी, गाँधीवाद के प्रतीक; और 'सुन्दरम्' अरविन्द भक्त। उन्हीं के प्रभाव में अनेक नवीन कवि आगे बढ़े। 'सूर्य' पुरस्कार विजेता राजेन्द्र शाह भी ऐसे ही रोमेंटिक कवि हैं। उशनस् 'जिन्हें गत वर्ष साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला या श्री हरीन्द्र दवे जिन्हें इस वर्ष यह पुरस्कार मिला कोमल संवेदनाओं के विचारशील कवि हैं, जो दोनों ही प्रभावों से पूर्णत: मुक्त नहीं कहे जा सकते। श्री हरीन्द्र दवे ने गालिब और स्वामी नारायण दोनों पर पुस्तकें लिखी हैं, ग़ज़लें भी लिखीं और आपातकाल में आपातकाल विरोधी 'सर्व-शैली-समभाव' के उत्तम उदाहरण हैं। साहित्य अकादमी से अंग्रेजी में प्रकाशित प्रो. मनसुखलाल झवेरी के 'हिस्ट्री ऑफ गुजराती लिटरेचर' में कविता में उमाशंकरजी की

इस सव्यसाचिता, अनेक छंदों और विषयों के प्रयोग की सराहना की गई है। इस प्रकार की परम्पराप्रिय नवता से भिन्न, हँसमुख पाठक, सुरेश जोशी, रावजी पटेल, लाभशंकर ठाकर, गुलाम मुहम्मद शेख, आदिल मंसूरी, सुरेश दलाल आदि नए कवियों की एक दूसरी धारा है। इसमें लाभशंकर ठाकर का 'रे मठ' आंदोलन उस तरह के अत्याधुनिक अस्तित्व-बोध का उत्तम उदाहरण है। हिंदी की ही तरह गुजराती में ग़ज़ल-लेखन की फैशन चल पड़ी है- उसमें बहुत सा लेखन रीति-बद्ध हो जाता है। आंतरिक पीड़ा से कलापी या गनी दोहावली की तरह ग़ज़ल लिखने वाले थोड़े और बिरले ही हैं। सुरेश दलाल की मासिक 'कविता' में नई कविता के दर्शन होते हैं। गीता पारिख को छोड़ शायद कोई विशिष्ट कवयित्री नहीं।

कुछ वर्ष पहले सिंधी के कवि श्री नारायण 'श्याम' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। लेखराज 'अजीज' एक पुरानी पीढ़ी के सूफी रंग के कवि थे, जिन्होंने सिंधी ग़ज़ल और कविता को नया आयाम 'सुराही' से दिया। बाद में क्रिशिन राही और लक्ष्मण भाटिया 'कोमल' को भी पुरस्कार मिले हैं। पर आधुनिकता का विशेष रूप 1960 से निखरा। इन नए कवियों के विषय में 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य' पर केन्द्रीय साहित्य अकादमी से छपी अँग्रेजी पुस्तक में डॉ. सदारंगाणी 'खादिम' लिखते हैं, 'छपे दशक के अंत में ही मुक्त वृत्त कुछ जमा। रामकमाल और सदारंगाणी 'खादिम' ने ही इस कविता रूप में कुछ सार्थक किताबें लिखी हैं। अब कवि गुल और बुलबुल पर नहीं लिखते। पर अब किसान, मजूर, वियतनाम, ऊँची बनाने वाली आणविक-किरणें, गर्भ निरोध के साधन, भ्रूण हत्या, पुरुष-वैश्या, मानवी माँस नोंचते गिद्ध और जहरीले राजनीतिज्ञों जैसे विविध और साहसिक विषयों की ओर कवियों की कल्पना शक्ति मुड़ी है।' इसी लेख में गोवर्धन भारती की 'सेनेटोरियम में प्रथम रात' और हरीश वासवानी, वासदेव मोही, मोहन कल्पना, विष्णु भाटिया, प्रेम प्रकाश, आनन्द खेमाणी आदि अनेक नाम गिनाए गए हैं। 'ये कवि सेक्स की विकृतियों के प्रति विशेष रुचि दिखाते हैं, पर उनके विषय और शैली में नई जमीन तोड़ने के प्रयत्न सराहनीय हैं।' आनंद खेमाणी 'बीमार पीढ़ी' कविता में आज की राजनीति को 'स्त्री पुरुष का अनैतिक संबंध' कहते हैं, वासुदेव मोही लिखते हैं, 'मैं एक बिजली का बटन हूँ', चाहे जो मुझे 'आन' करे, चाहे जो 'आफ'। मोतीलाल जोतवाणी एक कविता में लिखते हैं कि 'मुस्कान लुटाते लुटाते मेरे पास कुछ नहीं बचा, घर लौटा तो मुस्कान के बिना'। उत्तर भारत की कश्मीरी, पंजाबी, उर्दू में समकालीन कविता की अराजकता हिंदी जैसी ही है। किसिम-किसिम की कविता 'में कुछ अज्ञेय' से नकल करते हैं, कुछ 'मुक्तिबोध' से। कुछ 'धूमिल' हो रहे हैं, तो कुछ राह न मिलने से रास्ता टटोल रहे हैं। कोई बड़ा कवि तीस बरस की उम्र के नीचे की पीढ़ी में नजर नहीं आ रहा है, कुछ अच्छी कविताएँ या कहें 'अ-कविताएँ' हैं, कभी एकाध ग़ज़ल की चाटुक्ति मन लुभा लेती है। कोई ताजा बिंब कहीं हाथ पड़ जाता है, कभी किसी पुस्तक में दो चार अच्छी कविताएँ एक साथ गले मिलती हैं। पर यह कहना कठिन है कि नवीनतम पीढ़ी का यही एकमात्र सशक्त-तम हस्ताक्षर है। वही बात उर्दू, पंजाबी, कश्मीरी की है।

न रहे अब मजाज या जिगर न मखदूम या जाँनिसार अख्तर, न अब उर्दू वाले 'फैज' साहब के नाम का जप करते हैं। 'जोश' सरदार जाफरी, कैफी आजमी, जज्बी जैसे अब बुझी हुई मशशालें हैं। नई पीढ़ी में कुछ ही कवियों ने आपातकाल विरोधी रचनाएँ लिखीं जैसे जोय अंसारी ने या आलम खुंदमीरी ने, पर कुल मिलाकर वही समस्या है। 'नवभारत' (मराठी मासिक) के नए अंक में स्वातंत्र्योत्तर उर्दू साहित्य पर एक प्रोफेसर का लेख छपा है, उसमें नई तंजिया और कटुक्तियों भरी रचनाओं का उल्लेख है। पर बस यथार्थ की विद्रूपता को छूकर वे रह जाती हैं। 'माध्यम' में अभीक हनफी ने नई उर्दू कविता पर कई वर्ष पहले क्रमशः कई लेख लिखे थे, स्थिति

वहीं की वहीं है। एक अजीब तरह की यथा-स्थिति जारी है। कोई साहब बलराज 'कोमल' के तरफदार हैं तो कोई आख्तरुल-ईमान के।

पंजाबी में प्रो. मोहनसिंह (जो हाल में मर गए) अंतिम दिनों और भी गर्म-जोशी से लिख रहे थे। अमृता प्रीतम 'नागमणी, संपादित करती है, उनका अपना उठान जो सन् साठ के करीब हो चुका था, वही कायम है। अ़मृता ने आत्म-कथा में जो लिखा, 'पर मेरा जीवन एक जलती हुई सिगरेट है, मेरी कविता उसकी राख है,' अब तक सही है। और भी नए हस्ताक्षर उभरे, स्व. शिवकुमार जीवन भर गीत गाते रहे डॉ. हरभजन सिंह ने प्रयोग किए। प्रभाजीत कौर से मनजीत हिवाना तक एक खास किस्म की रोमान-विरोधी कविता सामने आई। जगतार और हरनाम और कई और तरुणों ने नई जमीन तोड़ने की कोशिश की पर उर्दू का असर बरकरार कायम रहा। या तो गुरु ग्रंथ साहब में या 'हीर राँझा' में जो ऊँचाई मानवीय भावनाओं की कविता ने छुई उससे आगे, भाई वीरसिंह से आगे, धनीराम चात्रक और बाबा बलवंत के आगे, कहीं कोई और ऊँची उड़ान नहीं दिखाई देती। पंजाबी कविता का आधुनिक उभार हाल-हाल का है। तीस चालीस वर्षों का शायद और इंतजार जरूरी है।

कश्मीरी के पास तो महजूर और मास्टरजी, नादिम और रहमान 'राही' के बाद नाम ही इने-गिने दस-पाँच ऐसे कवियों के हैं जिनकी कविताएँ सार्थक मानी जाती हैं। पर वहाँ प्रकाशन के साधन नहीं, राज्य की भाषा वह नहीं, न अनुवाद छपते हैं, न यह भाषा विश्वविद्यालय स्तर में काम में आती है। तब नादिम ने सवाल पूछा था मुझसे दस साल पहले, 'कवि कश्मीरी में लिखे ही क्यों?'

यह सरसरी निगाह से समकालीन भारतीय कविता की एक विहंगम झाँकी है। कई प्रश्न इसमें उठते हैं कवियों के लिए, रसिकों के लिए आलोचकों के लिए। उन्हें संक्षेप में यों गिनाया जा सकता है,

1. कविता का अपनी जमीन से क्या रिश्ता है? यानी भूगोल बदलता जाता है, तो क्या कवि और प्रकृति के संबंध भी बदलते हैं?

2. कविता का अपनी परंपरा से क्या संबंध है? यदि गीति या ग़ज़ल, या मणिप्रवाल शैली, या संस्कृत छंद, या द्वयाक्षर प्रास, या बैंत बाजी या गई पीढ़ी की लीकें छोड़नी हैं तो किस प्रकार? या वे ही फिर घूम-फिरकर, अनजाने कविता में उभर कर आ जाती है?

3. कविता का अपने काल से क्या संबंध है? जिस समाज, परिस्थिति, राजनैतिक वातावरण में कवि जन्म लेता है, बढ़ता है, उससे जूझता, हारता, उभरता है, वह क्या कविता में कहीं न कहीं अपनी छाप नहीं छोड़ता? वह एकसीमा है, या सामर्थ्य?

4. कविता का विचारधारा से क्या संबंध है? अगर कविता हिंदुत्वनिष्ठ, समाजवादी, साम्यवादी, मार्क्सवादी, गाँधीवादी या ऐसे ही किसी 'वाद' से प्रेरित है, जो क्या उतनी मात्रा में वह कम या अधिक कविता हो जाती है?

5. भारतीय कविता में आधुनिकता कितनी छद्म है, कितनी प्रामाणिक? उस पर विदेशी प्रभाव कितने, कैसे, कहाँ-कहाँ, किस रूप में पड़े हैं? क्या वह केवल भाषा पर, बिंबों पर मिथक के पुनर्निर्माण पर, वक्रताओं और भंगिमाओं पर पड़े हैं या वे कहीं मौलिक रूप से जड़ों से विच्छिन्न बनाने वाले संस्कार हैं?

6. कविता में अपने प्रदेश, भाषा-परिवेश से परे क्या कोई राष्ट्रीय एकात्मकता जैसी चीज होती है? वही शायद सारे भारत के कवियों को एकत्र करती है, एकत्र सोचने और मनन करने में सहायक होती है? क्या वह केवल युद्ध-काल में ही उभरती है?

7. कविता में युग-बोध जैसी कोई विश्वात्मक गुणवत्ता होती है? किसी ने कहा कि वही कविता सच्ची है जो अनुवाद में भी टिकी रह सकती है? क्या विदेशी भाषाओं में भारतीय कविताओं के अनुवाद कालिदास और रवीन्द्रनाथ के बाद आधुनिक काल में गत दस-बीस वर्षों में बहु-प्रशंसित हुए? यदि हाँ तो कौन से? यदि नहीं, तो क्यों?

-साभार 'साक्षात्कार' पत्रिका

डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद

पंत की काव्य चेतना के आयाम

द्विवेदी युग के बाद छायावाद आधुनिक हिंदी काव्य के नए सौंदर्यबोध, नई जीवन दृष्टि और नूतन काव्य कला के साथ अवतरित हुआ। यह माना जाता है कि अपभ्रंशकाल के बाद भक्तिकाव्य हिंदी के संपूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार छायावादी काव्य आधुनिक हिंदी के चैतन्य रूप का मर्मस्पर्शी परिदर्शन है। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी चारों छायावाद के उज्ज्वल आलोकपूर्ण स्तम्भ हैं। पर चारों एक-दूसरे से विशिष्ट हैं। यह सत्य है कि इन चारों ने पैराणिक मिथकीय चमत्कारों, रीतिकालीन शृंगारिकता और भाषागत अलंकृति को अस्वीकार कर नवजागरण की चेतना के काव्य की रचना की है। इन चारों में श्री सुमित्रानंदन पंत तो पूर्णत: नवजागरण चेतना के कवि थे।

उन्होंने 'रश्मिबंध' की भूमिका में लिखा है, 'भारतीय पुनर्जागरण विश्व सभ्यता के इतिहास में एक और भी महान लोकजागरण का अंग बन कर आया था, विश्व सभ्यता के इतिहास का ही नहीं, वह मानवचेतना के भी एक महान सांस्कृतिक क्रांति के युग का समारम्य बन कर उदय हुआ। इसलिए छायावाद में हमें राष्ट्रीय जागरण के मुखर गीतों के अतिरिक्त मानवीय जागरण के गम्भीर स्वप्न, मौन संवेदन भरे स्वर तथा धरती के नवजागरण के संघर्ष मुखर, विद्रोह भरे स्वर भी एक साथ सुनने के मिलते हैं।'

इस भूमिका से छायावाद और छायावाद के अंतर्गत पंत की काव्यचेतना का विशिष्ट परिचय मिल जाता है। पंतजी की जन्म शताब्दी के अवसर पर 'हिंदी अनुशीलन' ने विशेषांक निकाला है। इसमें सर्वश्री राममूर्ति त्रिपाठी, लक्ष्मीकांत वर्मा और जगदीश गुप्त ने पंत के काव्य को वैचारिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में समझने का प्रयत्न किया है। डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार, 'मेरी दृष्टि में वे आदि से अंत तक प्रकृति के प्रति विस्मय, संस्कृति के प्रति सद्भाव तथा मानवता के प्रति मंगलकामनाओं के अद्वितीय कवि थे जिनका अंतर्बाह्य जीवन सदा एक सा बना रहा।'

प्रकृति की गोद में जन्म, परिवार की आर्थिक विपन्नता, संस्कृत और अंग्रेजी काव्य के अध्ययन, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी और योगी अरविन्द के प्रभाव ने पंत जी के जीवन को गढ़ा है। स्वयं सौंदर्यरूप और सुकुमार व्यक्ति पंत आरंभ में भव्य सौंदर्य स्थली प्रकृति पर विस्मय-विमुग्ध रहे हैं। इस सुंदर और सुकुमार कवि की प्रशंसा श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने बड़े भावुक शब्दों में की है। वैसे तो छायावाद का दार्शनिक आधार विवेकानंद का नवअद्वैत चिंतन ही है। छायावाद के बृहत् चतुष्टय पर विवेकानंद के नव अद्वैतचिंतन का ही प्रभाव है। फलत: छायावाद भारतीय नवजागरण का काव्ययुग माना गया है। प्रसाद ने तो अद्वैत के साथ कश्मीरी शैवदर्शन (शैवाद्वैत) को भी अपनाया है। निराला

आद्यन्त विवेकानंद की अद्वैत समता क्रांति के ओजस्वी कवि हैं। महादेवी के रहस्यवाद के मूल में अद्वैत ही है। पंत जी ने नव अद्वैत में गाँधीवाद, मार्क्सवाद तथा अरविंद चिंतन को भी समन्वित किया है। इसे मार्क्सवादी न स्वीकार कर सके और न सहन कर सके। मार्क्सवादी प्रगतियुग ने अद्वैत समता चेतना को संशय के घेरे में कैद कर दिया था, जिससे द्वन्दात्मक भौतिकवाद सामने आ सके।

यह भी चिंता का विषय है कि विवेकानंद की अद्वैतसमता चिंतन का संपूर्ण रूप सामने नहीं आ सका। विवेकानंद ने तो अद्वैतसमता के आधार पर मानवीय नैतिक मूल्यों की रचना पर बल दिया था। पर भारतीय दार्शनिक, चिंतक और आचार्य अद्वैतसमता दृष्टि के आधार पर समाज, संस्कृति, साहित्य तथा राजनीति की उद्‌भावना एवं संकल्पना नहीं कर सके। इसीलिए पंत जी ने भी नवअद्वैत को व्यक्तिगत साधना और मानवता के प्रति मंगलकामना तक सीमित मान लिया। जबकि सत्य यह है कि मार्क्सवादी समता क्रांति का विकल्प अद्वैतसमता दृष्टि ही है। इसे हम संकल्प के साथ संशोधित नहीं कर सके। परंतु प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर और पोद्दार रामावतार अरुण के काव्य में अद्वैत समता चेतना अभिव्यक्ति पाती रही है। इसीलिए इन सबके काव्य में प्रगतिशील भारतीयता से अनुप्राणित जीवन की कलापूर्ण अभिव्यंजना हुई है।

'वीणा' की एक रचना, 'बालप्रश्न' से अनुमान होता है कि पंत जी ने शैशव में विवेकानंद की अल्मोड़ा आगमन पर एक झलक पाई है या उनकी चर्चा सुनी है। उनमें जिज्ञासा जगी है। बाद में उन्होंने विवेकानंद और रामतीर्थ का अध्ययन किया है। इसलिए प्रकृति प्रेम के साथ ही चिंतन में भी अभिवृद्धि हुई है। पर उनमें उनकी काव्यचेतना का प्रथम सत्य है कि पर्वतीय प्राकृतिक सौंदर्य ने उन्हें मुग्ध कर प्रकृति का कवि बना दिया है। इसलिए इनका सौंदर्यदर्शन आधुनिक हिंदी काव्य में अप्रतिम है। प्रकृति का सौंदर्य, उल्लास, विस्मय, जिज्ञासा, रहस्य और जीवन दर्शन का आधार बन गया है। प्रकृति और जीवन एक-दूसरे से आत्मीय रूप में जुड़ गए हैं। प्रकृति एवं जीवन का ऐसा चैतन्य एवं रागात्मक संबंध संपूर्ण हिंदी काव्य में विरल है। यह भी सत्य ही है कि प्रकृति ने ही जीवन की ओर आकृष्ट किया है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में ही प्रेम एवं विरह की मार्मिक स्थितियों की व्यंजना हुई है। संपूर्ण प्रकृति कवि की वेदना में साथ है। कवि की चेतना प्रकृति की चेतना बन जाती है। नारी चेतना प्रकृतिमय ही है। अस्वस्थ होने पर जीवन के प्रति जिज्ञासा प्रबल हो जाती है। प्रकृति और विवेकानंद इस जिज्ञासा के समाधान में सहायक हैं। जीवन का सत्य भी, प्रकृति के माध्यम से ही प्रकट होता है। प्रकृति के मध्य जीवन के सत्य को पाने की विकलता मार्मिक है। वे प्रकृति के सौंदर्य से जीवन के सौंदर्य के पास पहुँच जाते हैं। यह कवि पंत की काव्य चेतना का सम्यक विकास है। यह विकास धीरे-धीरे जीवन एवं जगत की परिवर्तनशीलता में नित्य सत्य की खोज की ओर बढ़ जाता है। यह सत्य की अनुभूति और चिंतन की परिणति है।

एक ही तो असीम उल्लास, विश्व में पाता विविधाभास/तरल जलनिधि में हरित विलास, शांत अम्बर में नील विकास/वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस, कुसुमों में वास।

'परिवर्तन' कविता का सत्यदर्शन शिवदर्शन में परिणत हुआ है। वह सौंदर्य को सत्य से और सत्य को लोकसेवा की शिवचेतना से समन्वित कर हमारे हृदय तक पहुँचा देना चाहता है। यदि 'परिवर्तन' द्वन्द से होकर सत्यदर्शन तक पहुँचा है तो 'गुंजन' सत्यदर्शन के समन्वित शिवचेतना का काव्य है। उसने सुख-दुःख के मधुर मिलन से जीवन को परिपूर्ण करना चाहा है। उसने भावना की है, *तप रे मधुर-मधुर मन!/विश्व वेदना में तप प्रतिपल, जग-जीवन की ज्वाला मंगल,/बन अकलुष उज्ज्वल औ कोमल।*

पर कवि का संवेदनशील हृदय जनजीवन की दीनता, हीनता तथा अथाह पीड़ा की गहरी अनुभूति से द्वन्दग्रस्त हो जाता है। वह गाँव के शोषित-पीड़ित जीवन को निकट से देखता है, समझता है। अब वह मनमोहक

पर्वतीय सौंदर्य के बदले गाँव की प्रकृति तक पहुँच जाता है। उसे लगता है कि विवेकानंद और गाँधी के चिंतन जीवन की समस्याओं के समाधान नहीं दे पाते। विवेकानंद का अद्वैत व्यक्तिगत साधना के लिए है। गाँधी भी अपर्याप्त है। पंत जी का यह द्वन्द विवेकानंद की संपूर्ण अद्वैतसमता दृष्टि को नहीं समझने के कारण है। इसीलिए वे मार्क्स की ओर झुकते हैं। उन्हें मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन तथा क्रांति अभियान में मानव की समस्याओं का समाधान झलकता है। प्रगतिवाद भी उनका अभिनंदन करता है।

पंत जी पुरातन के परित्याग और जीर्णशीर्ण मान्यताओं के ध्वंस का आवाहन करते हैं। वे 'छायायुग' का युगान्त कर प्रगतिवाद की युगवीणा के तारों को झंकृत कर देते हैं। परंतु मार्क्सवाद का भौतिकवादी चिंतन, हिंसा पूर्ण क्रांति और एकतंत्री यांत्रिक शासन उन्हें संपूर्ण संतुष्ट नहीं कर पाते। वे पुन: द्वन्दग्रस्त हो जाते हैं। यह वैचारिक द्वन्द युग का द्वन्द है। यह युग का संघर्ष है। इस युग संघर्ष के साथ वे आगे बढ़ते हैं। मानवता के समग्र जीवन के सम्यक् उत्थान के लिए आगे बढ़ जाते हैं। प्रगतिवाद सहम गया। यह आधुनिक काव्येतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय है। कारण है कि अरविन्द के चेतना विकासवाद ने कविवर पंत को मार्क्स के भौतिक दर्शन से आगे प्रेय एवं श्रेय, भौतिक एवं अध्यात्म और पदार्थ एवं आत्मतत्व से समन्वित समग्र मानदर्शन की ओर इंगित किया। मार्क्स में मनुष्य मात्र आर्थिक प्राणी है। विवेकानंद, गाँधी और अरविन्द में मनुष्य संपूर्ण मनुष्य है शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मचेतना से संपन्न। अत: द्वन्द, द्वन्द से मुक्ति और समग्र जीवन संस्कृति की अभिव्यक्ति ही पन्त का उत्तर काव्य है। वे 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्णधूलि', 'अतिमा', 'उतरा' आदि में द्वन्द की भूमि से मानव मंगल की शिवभूमि पर आ जाते हैं। वे एक ओर दीनता-हीनता-पीड़ा से मुक्ति के लिए संघर्ष करते हैं तो दूसरी ओर वे मानव की चेतना को जाग्रत करते हैं। अब वे भारत के सांस्कृतिक स्वरूप को भी चिंतित करते हैं। अब 'वीणा' और 'पल्लव' की प्रकृति सांस्कृतिक चेतना से प्लावित 'हिमाद्रि' में मुस्कुराती है। 'धरती कितना देती है' नामक कविता में प्रकृति जीवन की श्रमप्रधान संस्कृति की ओर संकेतित करती है। यह कवि की जीवन यात्रा एवं कला साधना की नई प्रसन्न दिशा है।

कवि ने 'हिमाद्रि' में हिमालय के सांस्कृतिक रूप का चित्रण किया है।

मानदण्ड भू के अखण्ड हे,/पुण्यधरा के स्वर्गारोहण,/प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से/घेरे मेरे जीवन के क्षण!

कवि गीत विहग के रूप में नई मानवता का संदेश सुनाता है। वह धरती की सेवा-श्रमसाधना के आधार पर समता एवं ममता पूर्ण जीवन की नई रचना का संघोष करता है। इसलिए वह लिखता है-*रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ।/इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,/इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,/इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं।*

मार्क्सवादी आलोचकों ने पंत की काव्य साधना के तीसरे रूप की कटु आलोचना की। तथापि डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा संपादित 'समालोचक' में श्री प्रताप सिंह चौहान ने लिखा है, 'पंतजी' के उत्तरकाल में जहाँ एक ओर 'अरविन्द दर्शन' मूर्त हुआ है, शिल्प में प्रौढ़ता आई है, वहाँ अनेक स्थलों पर भाव और रस को अवांछित क्षति पहुँची है...। फिर भी 'अरविंद दर्शन से प्रभावित इन रचनाओं का अपना पृथक मूल्य है और मानवता के हितसाधन के लिए मार्क्सवाद के समानान्तर इस मानवतावादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा के लिए भी इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व है।' (समालोचक-जनवरी, 1960)

मार्क्स का भौतिकदर्शन अधूरा है जैसे मोक्षवादी-पलायनवादी दर्शन। विवेकानंद, गाँधी और अरविन्द का दर्शन समग्र मानव दर्शन है। इसने हिंदी काव्य को नई दृष्टि दिशा प्रदान की है। तभी तो पंत ने लिखा है,

जन भू पर निर्मित करना नव/जीवन बहरंतर संयोजित,/
एक मनुज हो, एक धरा हो,/यह भागवत जीवन निश्चित।

-साभार

स्वामी आत्मभोलानन्द

विवेकानन्द के विचारों का आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

भारत की भूमि धर्म और दर्शन की पुण्य भूमि है। यह सत्य के अन्वेषक एवं कठोर तपस्या द्वारा जीवन के सौंदर्य को विकसित करने वाली, ऋषियों एवं तपस्वियों की पावन भूमि है। ऋषियों के कण्ठ से निकलने वाली वाणी ने भारतीय दर्शन एवं साहित्य का रूप ग्रहण किया है। उनकी चर्चा एवं चिंतन-मनन का केन्द्र बिन्दु परमात्मा रहा है। वेदों के महान सूत्रों से लेकर कबीर, सूरदास, मीराबाई, नानक एवं तुलसीदास जी द्वारा रचा गया साहित्य ईश्वर के ऐश्वर्य एवं उनकी अपार करुणा का वर्णन करता है। इन संतों के द्वारा रचना गया साहित्य आध्यात्मिक एवं नैतिक जीवन शैली का प्रतिपादन कर सामाजिक जीवन में न्याय एवं संवैधानिक नियमों की पूर्ति भी करता है, लेकिन बीच में ऐसा कालखण्ड आया जिसमें धर्म के नाम पर मानव ने पशु से भी अधिक निकृष्ट व्यवहार किया। मनुष्य, मनुष्य की छाया से भी दूर भागने लगा। दीन, दरिद्र, पतित लोगों को परमात्मा के मंदिर में प्रवेश करने से रोका जाने लगा। इसके बाद प्रारंभ हुआ उत्पीड़न एवं अत्याचारों का विकृत मानसिक रोग, जिसने भारत के सामाजिक ढाँचे को चरमराकर धराशायी कर दिया। जब मानव के द्वारा मानव के प्रति यह उत्पीड़न एवं अत्याचार अपनी चरम सीमा पर थे, पर प्रथम भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन असफल हो गया था तब स्वामी विवेकानंद ने नरेन्द्र के रूप में एक संभ्रांत परिवार में जन्म लिया।

जब नरेन्द्र ने संन्यासी के रूप में विवेकानंद का रूप ग्रहण किया जब उन्होंने भारत भूमि के दर्शन एवं उसमें व्याप्त समस्याओं के अवलोकन हेतु परिव्राजक संन्यासी का रूप ग्रहण कर संपूर्ण भारत की पद यात्रा की। इसी यात्रा के दौरान उन्होंने भारत के उच्च वर्ग, राजा-महाराजाओं एवं जमीदारों तथा ब्राह्मणों द्वारा दीन, दरिद्र एवं पद-दलित लोगों पर होने वाले उत्पीड़न को देखा तथा उनके प्रति उनके मन में गहरी सहानुभूति प्रकट हुई। उन्होंने यह देखा कि हमारी मातृभूमि पराधीन होकर गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई है। उन्होंने यह अनुभव किया कि विकास का प्रथम सोपान स्वतंत्रता है और इसीलिए उन्होंने राष्ट्र के लोगों का आह्वान करते हुए कहा था कि 50 वर्षों के लिए सभी देवी-देवताओं को भूल

जाओ और हमारी एकमात्र आराध्य देवी भारत माता हो। इसी संदर्भ में स्वामी विवेकानंद ने एक गीत की रचना की जिसमें इन भावों को समाहित किया गया है,

तोड़ो जंजीरें जिनसे/जकड़े हैं पैर तुम्हारे/वे सोने की हैं तो क्या/कसने में तुमको हारे?/अनुराग घृणा संघर्षण,/ उत्तम वा अधम विवेचन,/इस द्वन्दभाव को त्यागो/है त्याज्य उभय आलम्बन।।

उक्त पंक्तियों में स्वामी जी ने पराधीनता की जंजीरों को तोड़ने के लिए भारत के जन-समूह को प्रेरित किया और आपस में राग, द्वेष को त्यागकर एक साथ भारतमाता को स्वतंत्र करने के लिए उनका आह्वान किया है। दूसरे पद्य में उन्होंने लिखा है,

आदर गुलाम पाये, या/कोड़ों की मार खाये/वह सदा गुलाम रहेगा/कालिख का तिलक लगाये।

स्वामी विवेकानंद ने तत्कालीन उच्च वर्ग के लोगों के लिए संदेश दिया था, जो अँग्रेजी शासन की चापलूसी कर राय बहादुर और जमींदार की पदवी ग्रहण कर लेते थे। उनके संदर्भ में विवेकानंद ने कहा, 'गुलाम व्यक्ति समाज में आदर पाए या वह कोड़ों की मार सहन करे, दोनों ही परिस्थितियों में वह गुलाम ही कहलाएगा।' गुलाम व्यक्ति के लिए आदर भी कलंक के समान है। विवेकानंद के इन्हीं भावों से प्रेरित होकर भारत में राष्ट्र प्रेम की भावना से भरा साहित्य लिखने का क्रम प्रारंभ हुआ। हिंदी साहित्य के महान कवि निराला जी ने ज्ञान की देवी सरस्वती की वंदना करते हुए लिखा,

वीणा वादिनी वर दे/प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मंत्र नव/भारत में भर दे/वीणा वादिनी वर दे।

निराला जी ने उक्त पद्य में ज्ञान की देवी सरस्वती से ज्ञान की प्रार्थना बाद में की है, पहले उन्होंने भारत के जन समूह में स्वतंत्रता के मंत्र को जगाने की याचना की है। क्योंकि स्वतंत्रता विकास की प्रथम शर्त है। इसी के उपरांत बंगाल के महान लेखक बंकिमचन्द्र चटर्जी ने वंदेमातरम् जैसे महान गीत की रचना की जिसको गाते-गाते भारत के अनेक नर-नारियों ने स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। यह गीत इतना प्रभावी था कि उस समय की अँग्रेजी शासन इस गीत की ध्वनि मात्र से हिल जाता था।

स्वामी विवेकानंद ने भारत माता के प्रति जो प्रेम भारतीय जन-समुदाय में विकसित किया, वह हिंदी साहित्य के कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। हिंदी के महान कवि जयशंकर प्रसाद के राष्ट्र प्रेम को निम्न पंक्तियों में लिपिबद्ध किया है,

हमारे संचय में था दान, अतिथि से सदा हमारे देव/वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव/ वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान/वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य संतान/जिएँ तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष/ निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।

प्रसाद जी ने इस भाव के परिप्रेक्ष्य में एक गीत लिखा, जिसकी पंक्तियाँ आजादी के दीवानों के लिए प्रयाण-गीत बन गईं,

हिमाद्रितुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य आर्य वीर हो, दृढ़ प्रतिज्ञ से चलो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो, बढ़े चलो।।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी मातृभूमि के प्रति अपने प्रेम को निम्न पंक्तियों में अंकित किया है,

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यार,
उससे हे भगवान! कभी हम हों न न्यारे,
लोट-पोट कर वहीं हृदय को शांत करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे,
उस मातृभूमि की धूल में, जब पूरे रम जाएँगे,
होकर भव-बंधन मुक्त हम, आत्म रूप बन जाएँगे।

स्वामी विवेकानंद ने भारतीय जनसमुदाय में राष्ट्र प्रेम के बीज बोये, उसके उपरांत हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के अनेक लेखकों ने राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत पद्य एवं गद्य का सृजन किया।

स्वामी विवेकानंद ने धर्म के नाम पर व्याप्त अनेक

सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। तब उन्होंने कहा था कि इन दरिद्र, दीन, पतित लोगों के लिए कौन सोचता है। उनका जीवन दु:ख और समस्याओं से भरा पड़ा है। स्वामी विवेकानंद के इन भावों का महादेवी वर्मा ने अपने पदों में इस तरह से चित्र खींचा है,

वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास/अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिलती रात/जीवन विरह का जलजात/आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल/ तरल जल-कण से बने धन सा क्षणिक मृदुगात/जीवन विरह का जल जात/अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास/अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात/जीवन विरह का जलजात।

महादेवी वर्मा ने इन पंक्तियों में एक दरिद्र, दीन, हीन एवं विवश जन समुदाय की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। स्वामी विवेकानंद ने भी इसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव अपने हृदय में किया था। पीड़ा का यह प्रवाह हिंदी साहित्य के रचनाकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना तथा समाज में दलित, पद-दलित लोगों के लिए सहानुभूति का भाव विकसित हुआ। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि मुझे ऐसे धर्म की आवश्यकता नहीं है जो विधवाओं के आँसू न पोंछ सके, गरीब पीड़ित लोगों के दु:खों को दूर न कर सके। स्वामी विवेकानंद के इन विचारों ने भी हिंदी साहित्य सेवियों पर अपना प्रभाव डाला है। जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी रचनाओं में इसी पीड़ा को अभिव्यक्त किया है,

ऐसो ब्रह्म लेइ का करिहैं?/जो नहिं करत, सुनत नहिं जो कछु जो जन पीर न हरिहैं/होय जो ऐसो ध्यान तुम्हारो ताहि दिखावौ मुनि को/हमरी मति तो, इन झगड़न को समुझि सकत नहिं तनिको।

हम जानते हैं कि वेदों में लिखा है, आचार्य देवो भव:, मातृ देवा भव:, पितृ देवो भव:। वेदों के इन महान सूत्रों के स्थान पर स्वामी विवेकानंद ने पूरे आत्मविश्वास एवं अनुभूति के आधार पर यह उद्घोष किया। आज से मैं कहता हूँ, दरिद्र देवो भव:, चाण्डाल देवो भव: और शूद्र देवो भव:। ये गरीब, पतित, शूद्र एवं नीच जाति के लोग ही ईश्वर के समान हैं। वे कहा करते थे कि दरिद्र नारायण के रूप में ईश्वर तुम्हें साक्षात बुलाते हैं। जब साक्षात ईश्वर सामने हो तो मंदिर में पूजा करने जाने की क्या आवश्यकता है। स्वामी विवेकानंद के इन विचारों ने हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला है, एक कवि ने लिखा भी है,

मैं ढूँढ़ता तुझे था/जब कुँज और वन में,/तू आह बन किसी की,/मुझको पुकारता था।

एक दूसरे कवि ने भी इन्हीं भावों को बहुत ही सुंदर ढँग से लिपिबद्ध किया है,

फिर जाना काशी/फिर जाना काबा/पहले गरीबों पर,/दया करो बाबा।

ऐसे अनेक पद्य हैं, जो विवेकानंद के विचारों से पूरी तरह से प्रभावित हैं। स्वामी विवेकानंद ने जब भारत का भ्रमण किया था और भारत में बसे जनसमुदाय के कष्टों को देखा तो उनका हृदय उनके प्रति प्रेम से भर गया। उनकी वाणी के प्रत्येक शब्द में पद-दलित और गरीब लोगों के प्रति प्रेम, सहानुभूति है। उन्होंने कहा कि प्रेम के साथ किया हुआ प्रत्येक कर्म आनंददायी होता है। यथार्थ में प्रेम ही वह तत्त्व है जो हमारे आंतरिक और व्यावहारिक जीवन की समस्या का समाधान करता है। संभवत: इसीलिए स्वामी विवेकानंद ने प्रेम को जीवन और घृणा को मृत्यु माना है। स्वामी विवेकानंद ने दूसरों के प्रति प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है,

सुख हेतु न गेह बनाओ/इस घर में समा सकोगे?/ तुम हो महान फिर कैसे/पिंजरे के विहग बनोगे?

स्वामी विवेकानंद ने कहा कि, मैं केवल प्रेम और मात्र प्रेम की ही शिक्षा देता हूँ। प्रेम ही मेरा परमेश्वर है, उठो और प्रेमरूपी ईश्वर की खोज करो, प्रेम एक प्रकार का त्याग है, वह कभी लेता नहीं है, बल्कि सदैव देता है। प्रेम सदैव आनंद की अभिव्यक्ति है, इस पर दु:ख की तनिक भी छाया पड़ना हमेशा स्वार्थपरता का चिह्न है। यथार्थ में प्रेम ही वह तत्त्व है जो हमारी और आपकी

समस्त समस्याओं का और गहन से गहन दु:ख का समाधान हो सकता है। विवेकानंद के इन विचारों का प्रभाव आधुनिक हिंदी साहित्य पर अत्यंत प्रभावी ढँग से स्पष्ट दिखलायी पड़ता है। विवेकानंद के उक्त विचारों के संदर्भ में मैं आधुनिक हिंदी साहित्य के कवि माखनलाल चतुर्वेदी की इन पंक्तियों को उद्धृत किए बिना नहीं रह सकता,

है कौन सा वह तत्त्व, जो सारे भुवन में व्याप्त है/ ब्रह्मांड पूरा भी नहीं जिसके लिए पर्याप्त है/है कौन सी वह शक्ति, क्यों जी! कौन सा वह भेद है/बस, ध्यान ही जिसका मिटाता आपका सब शोक है/बिछुड़े हुओं का हृदय कैसे एक रहता है, अहो/वे कौन से आधार के बल कष्ट सहते हैं, कहो/क्या क्लेश? कैसा दु:ख? सबको धैर्य से वे सह रहे/हैं डूबने का भय न कुछ, आनंद में वे बह रहे। वह प्रेम।

प्रेम की उक्त व्याख्या विवेकानंद के विचारों से मिलती जुलती ही नहीं है बल्कि ऐसा लगता है कि माखनलाल चतुर्वेदी जी ने विवेकानंद के शब्दों को पद्य के माध्यम से अपने शब्दों में डाला है।

आधुनिक युग में मानव के जीवन को निराशा और संघर्ष ने चारों ओर से घेर लिया है। निराशा की स्थिति के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद ने सशक्त शब्दों में कहा कि जीवन का यह संघर्ष एवं असफलताएँ यथार्थ में जीवन का सौंदर्य हैं, यदि तुम हजार बार भी असफल होते हो तो एक बार पुन: सफल होने का प्रयत्न करो। स्वामी विवेकानंद ने इस संदर्भ में एक कविता लिखी है,

नयन पथराये/हृदय हो शून्य अपना/छले मैत्री/प्यार हो विश्वासघाती,/भाग्य भी सौ/आपदाएँ लाद दे सिर/और बीहड़ वन/तुम्हारा रोक ले पथ,/प्रकृति की त्यौरियाँ चढ़ें/ जैसे अभी वह कुचल देंगी/किंतु मेरे आत्मन,/बढ़ो आगे, और आगे,/नहीं दाँये और बाँये तनिक देखो,/दृष्टि हो गन्तव्य पर ही।

स्वामी विवेकानंद द्वारा रचित उक्त कविता में विवेकानंद ने आशा और अटूट विश्वास के साथ गीता के कर्म के सिद्धांत को प्रतिपादित किया है। स्वामी विवेकानंद के इन्हीं विचारों की छाया हिंदी साहित्य के महान कवि श्री रामधारीसिंह दिनकर की निम्न काव्य पंक्तियों में स्पष्ट दिखलाई देती है,

लोहे के पेड़ हरे होंगे, तू गान प्रेम का गाता चल/ नम होगी यह मिट्टी जरूर, आँसू के कण बरसाता चल/ सिसकियों और चीत्कारों से, जितना भी हो आकाश भरा/ कंकालों का ढेर, खप्परों से चाहे हो पटी धरा/आशा के स्वर का भार, पवन को लेकिन, लेना ही होगा/जीवित सपनों के लिए मार्ग, मुर्दों को देना ही होगा/रंगों के सातों घट उड़ेल, यह अँधियारी रंग जाएगी/उषा के सत्य बनाने को जावक नभ पर छितराता चल।

जीवन में लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आशा के साथ हिमालय के समान दृढ़ और अचल विश्वास की आवश्यकता होती है। बाल साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक जगदीश तोमर ने भी स्वामी विवेकानंद के इन भावों को अपनी लेखनी से कुछ इस तरह अंकित किया है,

यत्न बाधा की शिलाएँ तोड़ता है/आपदाओं के बवंडर मोड़ता है/यत्न, गोताखोर को है-/मोतियों का हार देता/यत्न जीवन में सफलता का सुनहरा रंग भरता।

स्वामी विवेकानंद ने आधुनिक हिंदी साहित्य को व्यापक रूप में प्रभावित किया है। यहाँ उसकी एक झलक मात्र प्रस्तुत है। राष्ट्र और सामाजिक जीवन का ऐसा कोई पक्ष शेष नहीं है जिसे विवेकानंद के विचारों ने प्रभावित न किया हो। इनके विचारों ने धर्म, दर्शन, विज्ञान, सामाजिक जीवन शैली आदि सबको प्रभावित किया है, तो उनके विचारों के प्रभाव से हिंदी साहित्य अछूता कैसे रह सकता है।

-साभार (चेतना के स्वर : स्वामी आत्मभोलानन्द)

मुकुल कानिटकर

स्वामी विवेकानंद के विचार और दर्शन का भारतीय साहित्य पर प्रभाव...

स्वामी विवेकानंद ने अपने चमत्कृत व्यक्तित्व से भारत के राष्ट्रीय जीवन को पूर्णत: प्रभावित किया। स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि, कोई भी उनके संपर्क में आता था तो उसका जीवन परिवर्तित हो जाता। इसलिए जहाँ-जहाँ भी उन्होंने अपना स्पर्श किया, वहाँ-वहाँ परिवर्तन की आँधी हमें दिखाई देती है। हम लोग शिकागो में स्वामी विवेकानंद के उन पाँच शब्दों से परिचित हैं जिससे सारे विश्व ने स्वामी विवेकानंद को माना, 'अमेरिका निवासी मेरी प्यारी बहनों और भाईयों'। इन पाँच शब्दों ने अमेरिका को जीत लिया, ये बात हम जानते हैं। उससे पूर्व कितने कष्टों को, कितनी वेदनाओं को स्वामी विवेकानंद ने सहा था इसको कम लोग ही जानते हैं। उस अपमान के शारीरिक, मानसिक कष्ट के विष का घूँट पीकर भी उनके मुँह से बन्धुत्व का अमृत ही निकला इसलिए इसका महत्व था।

जिन लोगों ने उनको दूर किया, जिन लोगों ने उनको कहा कि, यहाँ से निकल जाओ, चले जाओ यू गेटआउट। स्वामीजी के मुँह पर जिन्होंने दरवाजे बंद किये, उन्हीं अमेरिका वासियों को उन्होंने महान बंधुत्व के संदेश से आप्लावित किया। उन्होंने बार-बार कहा, हे कोलंबिया की भूमि तू विश्व के सामने आदर्श के रूप में प्रस्तुत हो रही है, ये बात स्वामी विवेकानंद ने बार-बार कही। हम इसके बाद के स्वामी विवेकानंद को जानते हैं। किन्तु स्वामी विवेकानंद ने भारत को प्रभावित करना, भारत के जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करना, शिकागो पहुँचने से बहुत पहले आरंभ कर दिया था, जब स्वामी विवेकानंद ने भारत परिक्रमा प्रारंभ की। इस लेख का विषय, 'स्वामी विवेकानंद के विचार और दर्शन का भारतीय साहित्य पर प्रभाव' है। इसलिए बात को सिर्फ साहित्य तक रखने का प्रयत्न करेंगे, किन्तु स्वामी विवेकानंद का प्रभाव भारत के राष्ट्र जीवन पर

हर क्षेत्र में पड़ा है। भारत परिक्रमा के लिए स्वामी विवेकानंद जब निकल पड़े थे तब उनको नाम भी विवेकानंद नहीं दिया था, लेकिन जो भी उनके संपर्क में आया उसको उन्होंने प्रेरणा दी।

जब भारतीय साहित्य पर उनका प्रभाव इस बात को देखना प्रारंभ किया- स्वामी विवेकानंद की सार्धशती की जो तैयारियाँ चल रही थीं, उनके लिए कुछ पुस्तकों के प्रकाशन का दायित्व साहित्य सेवा प्रमुख के रूप में मेरे पास था। इसलिए इस विषय का अध्ययन करना मैंने प्रारंभ किया। रायपुर से एक मासिक पत्रिका निकलती है, विवेक ज्योति। उस विवेक ज्योति के 1999 से लेकर कई अंकों में कई विद्वत्तापूर्ण और अनुसंधान किये हुए लेख मुझे मिले। दूसरी एक पत्रिका निकलती है चेन्नई से, वेदान्त केसरी नाम की। वेदान्त केसरी नाम की उस पत्रिका के अनेक लेखों में, अनेक भाषाओं में स्वामी विवेकानंद के साहित्य का असर है जो देखने को मिलता है। इस प्रकार के लेखों की लेखमाला मिली। तीन-चार आयामों में हम भारतीय साहित्य पर स्वामी विवेकानंद के प्रभाव को देख सकते हैं।

सबसे पहला आयाम तो ये है कि, स्वामी विवेकानंद की, मात्र 39 साल और 6 महीने आयु थी और उसमें से भी उनके प्रत्यक्ष प्रकट कार्य का समय नौ-दस वर्ष का ही है। किन्तु नौ-दस वर्ष के कार्यकाल में स्वामी विवेकानंद ने प्रत्यक्ष प्रचुर वाङ्मय को जन्म दिया है। मैं वाङ्मय इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि, उनका लिखित साहित्य कम है, ज्यादातर बोला हुआ है, इसलिए उसे वाङ्मय कहना अधिक उचित होगा। ये संयोग था या दैवीय योजना थी कि स्वामी विवेकानंद को अमेरिका में ही अच्छा लेखनिक मिल गया, जिसको वो प्रेम से 'माय डीअर गुडविन' कहा करते थे। गुडविन स्वामी विवेकानंद के साथ सारी जगह गया और उसने स्वामी विवेकानंद के सारे व्याख्यानों को, आशुलिपि के रूप में, शॉर्टहॅन्ड में लिख लिया। उसी से स्वामी विवेकानंद की पहली पुस्तक अमेरिका में प्रकाशित हुई जब स्वामी विवेकानंद अमेरिका में ही थे। 1893 में जब वे अमेरिका गये थे, 1896 में वापस आए। 1997 के जनवरी में। लेकिन तीन-साड़े तीन वर्ष जब अमेरिका में रहे, तब उनकी चार पुस्तकें अमेरिका से ही प्रकाशित हो चुकी थीं। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग यह अमेरिका में ही प्रकाशित हुई। और आश्चर्य की बात ऐसी है कि, आप लोग सोचेंगे कि, वे तो अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थी, फिर भारतीय साहित्य पर प्रभाव की बात में उसका संदर्भ कहाँ से आया? किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि, कर्मयोग और ज्ञानयोग की पुस्तक जब अमेरिका में प्रकाशित हुई, उस पुस्तक का पहला अनुवाद भारत हुआ, वह स्वामी विवेकानंद के अमेरिका से वापस आने के पूर्व हो चुका था। 1896 के जुलाई में मराठी में इस पुस्तक का अनुवाद, ज्ञानयोग नाम के पुस्तक का अनुवाद एक साप्ताहिक पत्रिका में सीरियल के रूप, लेख माला के रूप में प्रकाशित हुआ था। जब 15 जनवरी 1897 को स्वामीजी ने कोलंबो में पैर रखे तब उस पुस्तक की तृतीय आवृत्ति, (थर्ड एडिशन) चल रही थी। स्वामी विवेकानंद के होते हुए, अमेरिका में रहते हुए, पुस्तक का भारतीय साहित्य पर प्रभाव प्रारंभ हो चुका था। इसलिए कि स्वामी विवेकानंद वाङ्मय, स्वामी विवेकानंद का बोलना ही इतना काव्यमय था। बांग्लादेश के ढाका युनिवर्सिटी की एक महिला ने अंग्रेजी प्रोफेसर ने इस के ऊपर पी-एचडी. प्राप्त की 'पोएटिक व्हॅल्यु ऑफ स्वामी विवेकानंदास् स्पीचेस', स्वामी विवेकानंद के भाषणों का कवित्व, इस विषय में उस प्राध्यापिका ने पी-एचडी. प्राप्त की। बांग्लादेश में रहने वाली वह मुस्लिम प्राध्यापिका है, अंग्रेजी पढ़ाने वाली।

इसलिए स्वामीजी का बोलना है, वो भी कवित्व में है। उन्होंने जो कविताएँ की हैं, वे अद्भुत हैं। कवितावली नाम से रामकृष्ण मिशन ने अनेक भाषाओं में प्रकाशित किया है। उस कवितावली का हिंदी में अनुवाद भारत के अत्यंत मूर्धन्य साहित्यकारों ने किया है। सुमित्रानंदन पंत ने कुछ कविताओं का अनुवाद किया है, सूर्यकांत त्रिपाठी

निराला ने कुछ कविताओं का अनुवाद किया है। 1962 में अद्वैत आश्रम के द्वारा यह समग्र साहित्य हिंदी में प्रकाशित किया जा रहा था, तब पता चला कि, स्वामीजी की सात-आठ कविताओं का अनुवाद किया जाना बाकी है, तो उस अनुवाद का कार्य फनिश्वरनाथ रेणू को दिया गया था। हिंदी के इतने महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों ने स्वामी विवेकानंद के साहित्य का अनुवाद किया है। स्वामी विवेकानंद के वाङ्मय का, अनुवाद लगभग सारी भारतीय भाषाओं में हो चुका है, उसका प्रारंभ स्वामी के समय से ही हो चुका था। जैसे मैंने मराठी का बताया, स्वामीजी के जीवन काल में ही, स्वामीजी की पुस्तक का अनुवाद कन्नड़ में भी प्रारंभ हुआ। गुजराती में भी स्वामीजी की समाधी लगने से पहले, यह अनुवाद प्रारंभ हो चुका था। गुजराती में भी स्वामी विवेकानंद का साहित्य प्रकाशित हुआ।

स्वामी विवेकानंद का भारतीय साहित्य पर प्रभाव का सबसे पहिला और महत्त्वपूर्ण पहलू है, स्वामी विवेकानंद का स्वयं का वाङ्मय। श्री रामकृष्ण मठ और मिशन जो स्वामी विवेकानंद द्वारा ही बनाई हुई संस्था थी, उन्होंने स्वामी विवेकानंद के साहित्य का प्रसार और प्रचार किया है। आज पूरे देशभर में, विभिन्न भाषाओं में रामकृष्ण मिशन द्वारा स्वामी विवेकानंद के साहित्य पर विभिन्न प्रकार की पुस्तकें निकलती हैं, उन पुस्तकों की संख्या चौदह सौ से अधिक है। इसके अलावा, विवेकानंद केंद्र आदि संस्थाओं ने स्वामी विवेकानंद की जो पुस्तकें छापी हैं, उन सबको यदि मिला लिया जाए तो स्वामी विवेकानंद के विचारों पर निर्मित साहित्य भारत की लगभग सभी भाषाओं में, यहाँ तक कि, नेपाली, रशियन और अन्य विदेशी भाषाओं में भी जिनका अनुवाद हो चुका है, स्वामी विवेकानंद के भारत के साहित्य पर प्रभाव का महत्त्वपूर्ण आयाम हैं, स्वामी विवेकानंद द्वारा स्वयं निर्मित साहित्य। उसमें एक जो और महत्त्वपूर्ण बात रखना चाहता हूँ साहित्यकारों के बीच में, स्वामी विवेकानंद के पत्र। स्वामी विवेकानंद के पत्रों में उनका अंतरंग है। स्वामी विवेकानंद के पत्र भी अद्भुत साहित्य का नमूना हैं। स्वामी विवेकानंद के साहित्य का अनुवाद पूरे देश में फैला।

तीसरा जो आयाम है स्वामी विवेकानंद के भारतीय साहित्य पर प्रभाव का यह स्वामी विवेकानंद पर लिखा हुआ साहित्य। स्वामी विवेकानंद की जीवनियाँ। भारत की प्रत्येक भाषा में स्वामी विवेकानंद की, एकाद नहीं, एक दर्जन से अधिक जीवनियाँ हैं। अद्भुत-अद्भुत जीवनियाँ उपलब्ध हैं। स्वामी विवेकानंद की सबसे प्रथम जीवनी जो लिखी गई, वह कन्नड़ भाषा में लिखी गई थी। तेरह पृष्ठों की वह जीवनी कन्नड़ भाषा के एक लेखक ने धार्मिक पुरुषों का एक संकलन प्रकाशित किया था, उस संकलन में 1894 में प्रकाशित हुई। 1893 में स्वामीजी ने शिकागो का भाषण दिया और 1894 में 13 पृष्ठों की स्वामी विवेकानंद की जीवनी प्रकाशित होती है। रामकृष्ण परमहंसदेव का चरित्र गुजराती में इस कन्नड़ स्वामी विवेकानंद के चरित्र से पूर्व में छपा हुआ है। स्वामी विवेकानंद की अंग्रेजी में जो सबसे बृहत जीवनी है, 'बाई इस्टर्न अॅण्ड वेस्टर्न डिसिपल्स', अद्वैत आश्रम द्वारा चार खंडों में प्रकाशित की गई। मराठी और गुजराती में उस पर आधारित जीवनियाँ विस्तारित रूप से लिखी गईं।

मराठी में उसका काम शुरू हुआ, उसके जो दो एडिटर थे, उनमें से एक दिवंगत हो गये और तीसरे ने हाथ में लिया, चार खंडों को इक्कीस खंडों में जीवनी को निकालेंगे ऐसी योजना बनी। वह तेरह खंडों में निकाल पाये, चौदहवें खंड के लिए किसी की शक्ति नहीं बची। वह तेरह खंड जो स्वामी विवेकानंद की जीवनी मराठी में छपी है, 'स्वामी विवेकानंद यांचे जीवन व चरित्र' अभी भी प्रकाशन में है। उस मराठी में लिखी हुई जीवनी को और अन्य सबसे बृहद जीवनी माना जाता है। तेरह खंडों में ढाई हजार से अधिक पृष्ठ उस जीवनी में हैं।

इस बात का एक और पहलू है। स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व जो था वह विचार धाराओं को लाँघ कर के,

सब को भारत केंद्रित विचार करने के लिए प्रेरित करनेवाला व्यक्तित्व है। इसलिए ऐसे अनेक लोग जिनको सामान्यतः पुरोगामी या वामपंथी विचारधारा का माना जाता है, उन्होंने भी स्वामी विवेकानंद के ऊपर अद्भुत लेखन किया है। हंसराज रहबर के द्वारा लिखा हुआ स्वामी विवेकानंद का चरित्र अगर आप पढ़ते हैं, तो कोई विश्वास नहीं करेगा कि, इनकी विचारशैली क्या है। ऐसे ही अनेक लोग पूर्व में अपनी विचारधारा को लाँघ, यहाँ तक कि मुंशी प्रेमचंद ने स्वामी विवेकानंद की जीवनी लिखी है और प्रकाशित हुई है।

चौथा पक्ष है स्वामी विवेकानंद पे लिखा हुआ साहित्य और वह अद्भुत साहित्य है। बांग्ला में, यह आश्चर्य का विषय है कि, बंगाल में होते हुए भी, बांग्ला में स्वामी विवेकानंद के ऊपर साहित्य लेखन, स्वामी विवेकानंद के बारे में लिखा जाना, बहुत बाद में प्रारंभ हुआ। मराठी, गुजराती, कन्नड़ और शायद तेलगु में बांग्ला से पहले जीवनी प्रकाशित हो चुकी थी। बंगाल में जब सन 1901 में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक बेल्लूर मठ में स्वामी विवेकानंद से मिले। स्वामी विवेकानंद भारत परिक्रमा करते हुए लोकमान्य तिलक के घर पर थे, शनिवारवाडा गये थे, यह जानकारी लोगों को है। लेकिन 1901 में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक स्वामी विवेकानंद से मिलने के लिए कलकत्ता गये थे। और वहाँ पर उन दोनों की बैठक हुई। केसरी में लिखे हुए अग्रलेख में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कहते हैं कि, स्वामी विवेकानंद ने मुझे मजाक में बेल्लूर में कहा कि तुम यहाँ आकर के बंगाल में काम करो और मैं वहाँ जाकर महाराष्ट्र में करूँ। लोकमान्य तिलक लिखते हैं कि, स्वामी विवेकानंद को जितना अच्छा प्रतिसाद, प्रत्युत्तर महाराष्ट्र में मिल रहा था उतना बंगाल में भी नहीं मिल रहा था। लोकमान्य तिलक का जो बंगाल में स्वागत हुआ था, उसको देख कर स्वामी विवेकानंद ने यह प्रतिक्रिया दी थी। स्वामी विवेकानंद के भारतीय साहित्य पर प्रभाव का यह सबसे बड़ा आयाम है, स्वामी विवेकानंद पर लिखा हुआ साहित्य।

इन सबसे अधिक प्रभावी बात है सभी भारतीय भाषाओं में छपने वाले साहित्य पर स्वामी विवेकानंद का प्रभाव। कितनी पुस्तकों में स्वामी विवेकानंद का उद्धरण दिया जाता है उसकी गणना ही सम्भव नहीं है। विश्व के प्रत्येक प्रेरक पुस्तक पर स्वामीजी का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी देखा जा सकता है। अप्रत्यक्ष इसलिए क्योंकि हर बार स्वामीजी का नाम उद्धरण में दिया जाय ऐसा आवश्यक नहीं है किंतु संकल्पना स्वामीजी के विचारों से प्रेरित होती है। राष्ट्रीय आंदोलन के समय की कविताओं, लेखों में ये स्पष्ट दिखायी देता है। आज भी ये प्रभाव जारी है। यहाँ तक कि अंग्रेजी में भी ये प्रभाव उतना ही है जितना भारतीय भाषाओं में।

अभी इस विषय पर और अधिक अनुसंधान आवश्यक है। साहित्य में अध्ययन करनेवाले छात्रों को इस दिशा में प्रेरित किया जाना चाहिए।

संपर्क : सह संगठन मंत्री, भारतीय शिक्षण मंडल
मो. 09405774820

यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब कुछ सकारात्मक या भावनात्मक है। नकारात्मक या अभावनात्मक कुछ भी नहीं।

–रवीन्द्रनाथ टैगोर

कैलाशचन्द्र पन्त

छायावादी युग पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

स्वामी विवेकानन्द ने जब शिकागो के धर्म सम्मेलन में भारतीय दर्शन की प्रस्तुति करते हुए भारत के आध्यात्मिक उन्नयन का विश्लेषण किया था तब पूरे विश्व को भारत को समझने की नई दृष्टि मिली थी। स्वामीजी ने उपनिषद के ऋषि की वाणी का उल्लेख किया,

श्रृणवन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थु:।

और कहा,

''हे अमृत के पुत्रगण! हे दिव्यधाम वासी देव गण! सुनो, मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष को पहचान लिया है, जो समस्त अज्ञान-अन्धकार और माया से परे है। केवल उस पुरुष को जानकर ही तुम मृत्यु के चक्कर से छूट सकते हो। दूसरा कोई पथ नहीं है।''

इसी संबोधन से उस धर्मसभा में उपस्थित सभी लोगों का आव्हान करते हुए स्वामी जी ने कहा था,

''अमृत के अधिकारी गण! सचमुच हिन्दू तुम्हें पापी कहना अस्वीकार करता है। तुम तो ईश्वर की सन्तान हो, अमर आनन्द के भागीदार हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। तुम इस मर्त्यभूमि के देवता हो। तुम भला पापी मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, वह मानव स्वभाव पर घोर लांछन है। उठो! आओ! ऐ सिंहो! इस मिथ्या भ्रम को झटक कर दूर फेंक दो कि तुम भेड़ हो। तुम तो जरा-मरण रहित नित्यानन्दमय आत्मा हो! तुम जड़ पदार्थ नहीं हो। तुम शरीर नहीं हो। जड़ पदार्थ तो तुम्हारा गुलाम है, तुम उसके गुलाम नहीं।''

उपनिषदों की वाणी को जिस तार्किक ढंग से स्वामी विवेकानान्द ने विश्व के समक्ष उनकी भाषा में रखा था उससे चमत्कृत होना स्वाभाविक था। तब तक वे अपने को 'पाप' की परिणति मानते चले आ रहे थे।

इस वैचारिक क्रान्ति की उद्घोषणा सितंबर 1893 में भारत से बाहर पश्चिम की उस भूमि पर हुई थी, जहाँ के लोग इस भ्रम का शिकार थे कि भारत एक असभ्य और पिछड़ा हुआ राष्ट्र है। स्वामी जी की तार्किक वाणी ने उसकी बुनियाद पर

तीखा आक्रमण किया था। यह अलग बात थी। उन्हीं दिनों भारत का शिक्षित वर्ग भी इस भ्रम का शिकार होने लगा था। वह अंग्रेजों के आगमन को ईश्वरीय वरदान मानने लगा था।

स्वामी जी की वाणी से भारत कैसे अप्रभावित रह सकता था? यही समय था जब खड़ी बोली का विकास हिन्दी भाषा के रूप में तेजी से हो रहा था। भारतेन्दु मंडली के लेखक गद्य और पद्य में हिन्दी के नये प्रयोग सामने ला रहे थे। उस मण्डली को अंग्रेजी शासन का शूल चुभ रहा था। लेकिन उनका मूल मंत्र भाषा से जुड़ा था। भारतेन्दु जी हिन्दी के प्रचार के लिये जहाँ भी जाते इस पद को जरूर सुनाते थे,

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हियको सूल।।

पं. प्रताप नारायण मिश्र भी 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानी' का राग छेड़े हुए थे। इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि स्वामी विवेकानन्द के पूर्व भी हिन्दी के साहित्यकारों में जातीय स्मृति का भाव उमड़ चला था। लेकिन जब स्वामी जी ने उस जातीय स्मृति के आधार तत्व की तार्किक व्याख्या कर दी तो हिन्दी के कवियों-लेखकों ने मानसिक हीनता से उबरने की चुनौती को जैसे स्वीकार कर लिया। 1905 में मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' के माध्यम से पुकार लगाई थी,

हम कौन थे? क्या हो गए? क्या होंगे अभी।
आओ! विचारें, आज मिलकर यह समस्याएँ सभी।।

बीसवीं सदी का प्रारंभिक स्वर आत्महीनता से मुक्त होने के लिये उठा, जो अंग्रेजी शासन और उसकी शिक्षा पद्धति से भारत को ग्रस्त कर रही थी। फिर भगिनी निवेदिता ने स्वामी जी के चिन्तन पर जो टिप्पणी दी थी उसका भारत के विद्वानों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। निवेदिता ने इंग्लैंड में स्वामी जी के प्रवचनों पर टिप्पणी करते हुए लिखा था, ''इस देश में स्वामी विवेकानन्द के उपदेश हममें से बहुतों को, प्यासे को शीतल जल के समान तृप्तिदायक लगे हैं। चर्चा के क्षेत्र में, पिछले पचास वर्ष से लगातार बढ़ती हुई अनिश्चितता और निराशा का भाव यूरोप के मानसिक जीवन को त्रस्त कर रहा है। पिछले कुछ समय से हममें से बहुत से लोग इस विषय में जागरूक हुए हैं। ईसाई धर्म के कट्टरतापूर्ण सिद्धांतों में विश्वास करना अब हमारे लिये कठिन हो रहा है। पर हमारे पास ऐसा कोई उपकरण नहीं था, जिसके द्वारा मतवाद के छिलकों से उसके भीतर निहित धर्म के गूदे को अलग करना संभव हो। अब हमें वह उपकरण प्राप्त हो गया है। वेदान्त ने हमारे धर्म के विश्वासों और आवेगों को एक दार्शनिक आधार प्रदान किया है।''

भगिनी निवेदिता उन्नीसवीं सदी में जिस सत्य को समझ चुकी थीं उसे हमारे देश के तथाकथित बुद्धिजीवी आज तक समझने में असमर्थ हैं। वे आज भी धर्म को मतवाद, रिलीजन या मजहब का पर्यायवाची मानते हैं। उन्होंने शायद राबर्ट इलियट्स की हिन्दू धर्म की व्याख्या भी नहीं पढ़ी जो 1922 में अपने ग्रंथ 'बुद्धिज्म एंड हिन्दुइज्म' में प्रस्तुत की थी। उस अंग्रेज लेखक ने एक वाक्य में हिन्दू धर्म को परिभाषित करते हुए कहा था, 'Hinduism is national expression of ethics' हिन्दुत्व नैतिकता की राष्ट्रीयता अभिव्यक्ति है।

इस सारे वैचारिक ऊहापोह के बीच जब छायावाद का युग आया तब हमें उस त्रयी के साहित्य का गंभीरतापूर्वक स्मरण कर लेना चाहिये जिसने अपनी जातीय स्मृति को संरक्षित रखने की प्रेरणा स्वामी विवेकानन्द के विचारों से ग्रहण की थी। इस त्रयी में पन्त, प्रसाद और निराला का समावेश है। जयशंकर प्रसाद के साहित्य में प्रत्यक्ष प्रभाव तो नहीं है, लेकिन उनके नाटकों में जातीय स्मृति अपनी सम्पूर्ण गरिमा के साथ उपस्थित है। उन्हें अपने देश की गौरवमयी संस्कृति पर गर्व है।

अपने नाटक में ही तो उन्होंने 'अरुण! यह मधुमय देश हमारा' की रचना करते हुए लिखा था 'जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा'। इतना ही नहीं

कामायनी में साफतौर पर वे भौतिक संस्कृति को सावधान करते हैं,

सब कुछ अपने में भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना ही नाश करेगा।

ध्यान देने की बात है कि प्रसाद जी ने 'व्यक्ति' की बात की है। संकेत साफ है। व्यष्टि से समष्टि की यात्रा भारतीय अध्यात्म का मूल मंत्र है। इस चिंतन की ही अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है,

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
जग को सुखी बनाओ।

प्रसाद जी पर उपनिषदों का प्रभाव कितना गहरा था यह समझने के लिये 'कामायनी' के प्रारंभ में कही गई पंक्तियों को स्मरण कर लेना उचित होगा,

ऊपर जल था नीचे हिम था
एक तरल था एक सघन
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

इस एक तत्व का विस्तार ही तो सृष्टि है। यही अद्वैत दर्शन है, 'एकोऽहं बहु स्याम'। 'कामायनी' में तो भारतीय दर्शन का निरूपण ही है। इसमें स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव को रेखांकित किया जा सकता है।

इस कवि त्रयी में पहला नाम सुमित्रानन्दन पन्त का आता है। वे प्रकृति के कवि माने गये हैं। पर उनकी वैचारिक यात्रा पर ध्यान देने की आवश्यकता है। स्वयं कवि का आत्म कथ्य साक्ष्य देता है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में पन्त जी ने लिखा,

''स्वामी विवेकानन्द और राम तीर्थ के अध्ययन से, प्रकृति-प्रेम के साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में भी अभिवृद्धि हुई। 'परिवर्तन' में इस विचारधारा का काफी प्रभाव है। अब मैं सोचता हूँ कि प्राकृतिक दर्शन, जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है, और एक प्रकार से प्रकृति को सर्व शक्तिमयी मान कर उसके प्रति आत्मसमर्पण सिखलाता है, वह सामाजिक जीवन के लिये स्वास्थ्यकर नहीं है।''

कवि के मन में सूक्ष्म निरीक्षण से इस पंक्तियों की रचना हुई,

एक सौ वर्ष नगर उपवन
एक सौ वर्ष विजन-वन!
यही तो है असार-संसार,
सृजन-सिंचन-संहार!

ये भावनाएँ मनुष्य को अपने केन्द्र से च्युत करने के बाद, किसी सामूहिक प्रयोग के लिए अग्रसर नहीं करतीं, बल्कि उसे जीवन की क्षण भंगुरता का उपदेश भर देकर रह जाती हैं।

पन्त जी आगे लिखते हैं, ''दर्शन शास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे राग तत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी।'' कवि के जीवन-क्रम में आगे इस परिवर्तन की अभिव्यक्ति इन शब्दों में होती है,

जीवन के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय निर्झर
बरसो लघु लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन।

आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की यह इच्छा ही वेदान्त का और स्वामी विवेकानंद की अवधारणा का मूल स्वर है,

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रलय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अधिकार।

सत्य, शिव और सुन्दर की कैसी मनोरम अभिव्यक्ति है। आगे जब वे कहते हैं,

आज वृहत संस्कृति समस्त जग के निकट उपस्थित

खंड मनुजता को युग युग की होना है नव
निर्मिता

स्वामी विवेकानन्द की छवि पन्त जी के बाल-मन पर ही अंकित हो चुकी थी। 'बाल प्रश्न' कविता में वे उदात्र भाव से उन आशंकाओं को निर्मूल कर देते हैं जो मानव के शंकालु मन में उठ खड़ी होती हैं,

माँ! अल्मोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानन्द
तब मग में मखमल बिछ्वाया
दीपावली की विपुल अमन्द,
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि! न्हीं चल सकते हैं?
दीपावली क्यों की? क्या रे मा!
मन्द दृष्टि कुछ रखते हैं?

इसी कविता में समाधान भी देते हैं,

कृष्णे! स्वामी जी तो दुर्गम
मग में चलते हैं निर्भय
दिव्य दृष्टि हैं, कितने ही पथ
पार कर चुके कण्टकमय
यह मखमल तो भक्तिभाव थे
फैले जनता के मन के
स्वामी जी तो प्रभावान हैं
वे प्रदीप थे पूजन के।

पन्त जी की अनेक कविताओं में स्वामी विवेकानंद के प्रभाव का देखा जा सकता है। वेदान्त की ओर तो उन्हीं के व्याख्यानों से प्रभावित होकर आकर्षित हुए थे। वे लिखते हैं,

है यह वैदिकवाद
विश्व का सुख-दुखमय उन्माद!

यहीं नहीं रुकते। अपनी कविता में कहते हैं,

यह साँझ-उषा का आँगन
आलिंगन विरह-मिलन का।
चिर हास-अश्रुमय आनन
रे! इस मानव जीवन का।।

वेदान्त इसी मानवतावाद का पुजारी है।

छायावादी युग के तीसरे महत्वपूर्ण कवि हैं, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला। निराला जी को बचपन से ही बंगाल में रहने और अध्ययन करने का अवसर मिला। स्वाभाविक था कि उन्हें अपने युग के अत्यन्त तेजस्वी और आध्यात्मिक शक्तियों के पुंज स्वामी रामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द के साहित्य को पढ़ने का पर्याप्त अवसर मिला। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उनका सम्पूर्ण काव्य ही वेदान्त पर आधारित है। वे लिखते हैं,

तुम तुंग हिमालय श्रृंग,
और मैं चंचल गति सुर-सरिता
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कांत कामिनी कविता
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।

क्या दोनों में भेद है? नहीं। यह अभेद का निरूपण है जिसे दर्शन की शब्दावली में 'अद्वैतवाद' कहा गया। वेदांत की जो आत्मा है और जिसे लेकर आज राजनीति में भी 'एकात्म मानववाद' जैसा विचार सुनाई देने लगा है। इस अद्वैत का निरूपण अपने निबंध 'भारत में रामकृष्णावतार' में करते हुए निराला जी दार्शनिक विषय को किस रमणीयता से विश्लेषित करते हैं यह देखना निराला साहित्य के शोधार्थियों के लिये लाभप्रद होगा। ऐसा करते हुए वे इस सत्य से भी साक्षात कर सकेंगे कि हिन्दी के वामपंथी आलोचकों ने निराला को मार्क्सवाद से प्रभावित होने की जो बात लिखी थी (स्वतंत्रता के पूर्व अपने उद्भव काल में) वह सत्य के कितने विपरीत थी। उपर्युक्त निबंध में निराला जी ने लिखा,

"पूर्णता या मुक्ति ही धर्म का सच्चा स्वरूप है।... पूर्वोक्त ब्रह्म या पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित, होना ही मनुष्य का धर्म है। पूर्णता को प्राप्त करते ही मनुष्य का पहले का स्वरूप बदल जाता है। वह अपने को ब्रह्म से

अभिन्न देखता है। उसमें फिर अभाव का लवलेश भी नहीं रह जाता। अभावों को दूर कर पूर्ण हो जाने के लिए ही मनुष्य की सृष्टि हुई है।''

इसी निबंध में आगे निराला जी ने लिखा,

''भारत के प्राकृतिक नियमों की जाँच करने से उसके धर्म-जीवन का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है। षड्ऋतुओं का धीर तथा समावर्तन भारत की स्वभाव-शांत प्रकृति पर कोई अस्वाभाविक क्रिया नहीं उत्पन्न करता। हिमालय जैसे गंभीर व सात्विक प्रकृति के लीला क्षेत्र पर दृष्टि पड़ते ही दर्शकों का मन स्वभावत: अन्तर्मुखी होकर कवित्वमय भाव राज्य की यात्रा करता है। भारत में उपजाऊ भूमि पेट के प्रश्न की मीमांसा कर देती-जीविकोपार्जन के लिये अन्यत्र अशांति की आग सुलगाने से निवृत्त करके उसे शान्ति का पाठ पढ़ाती है।... प्रकृति की कुल चेष्टाएँ मानो भारत के धर्मधाम की रक्षा करने के लिए ही कर्म-तत्पर हो रही हैं। इधर भारत अपने शब्दार्थ से भी अपनी धर्म प्राणता सूचित कर देता है। पूर्वोक्त कारणों से ही भारत ने पूर्ण सुख के न जाने कितने अधिकारी पैदा किये।''

निराला जी ने इसके अतिरिक्त भोगवादी पश्चिमी संस्कृति और उसके परिणाम स्वरूप होने वाले संघर्ष तथा ऐसी स्थिति में अवतार की धारणा का औचित्य आदि पर विमर्श प्रस्तुत किया है। इनको पढ़कर पता चल जाता है कि भारत के सनातन चिन्तन और ज्ञान पर निराला जी को कितनी गहरी आस्था थी और उन पर स्वामी विवेकानन्द का कितना गहरा प्रभाव था।

स्वामी विवेकानन्द तो भारत के प्रज्ञा-पुरुष थे। उनकी बौद्धिकता ने विश्व की दृष्टि को परिवर्तित कर दिया था। उस संन्यासी ने अपने आध्यात्मिक और बौद्धिक प्रभाव से पश्चिम से आने वाली भौतिक आँधी को थाम लिया। भारत के सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र के साथ ही साहित्य पर भी उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। हिन्दी साहित्य के लिये यह प्रभाव ज्यादा लाभप्रद सिद्ध हुआ। जो वैचारिक प्रवाह हिन्दी में पूर्व से विद्यमान था उसकी गति तीव्र हुई। हिन्दी के साहित्यकारों की एक सशक्त पीढ़ी तैयार हुई जिसने आयातित सभी विचार धाराओं-मार्क्स, फ्रायड था जॉन स्टुअर्ट मिल का प्रतिरोध किया। जो कुछ धुँध शेष है वह भी वैचारिकता के सनातन प्रवाह में समाप्त होने के कगार पर है।

संपर्क : मंत्री-संचालक, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिंदी भवन, भोपाल

जब मैं अपने छात्र जीवन की ओर पीछे लौटकर देखता हूँ, तो मुझे स्पष्ट स्मरण आता है कि इस महान संन्यासी (स्वामी विवेकानंद) की कुछ रचनाओं का पठन मुझमें कैसे बिजली तड़का देता था, क्योंकि मैंने उनमें एक ऐसे संत का दर्शन किया, जिसने धर्म का अपना कोई संकीर्ण खेमा नहीं बनाया।

-डॉ. ज़ाकिर हुसैन

डॉ. डी.एन.प्रसाद

विवेकानंद के विचार का साहित्य पर प्रभाव

''न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु, प्राप्पतस्य योगाग्निमयं शरीरम्''

अर्थात् जो योगाग्निमय देह प्राप्त कर लेता है, उसको रोग, बुढ़ापा और मृत्यु नहीं व्यापते। स्वामी विवेकानंद इसके पर्याय थे और युगों से स्वामी विवेकानंद भारतीय राष्ट्रीय संदर्भों में युवकों के प्रेरणा स्त्रोत के रूप में प्रासंगिक रहे हैं। विवेकानंद का नाम भारत के गौरवपूर्ण धार्मिक-अध्यात्म को विश्वस्तर पर प्रशस्त करने के अर्थ में स्थापित हो चुका है परंतु इस तथ्य की चर्चा बहुत कम हुई है कि यह नामकरण, 'विवेकानंद' उनके 1893 के शिकागो (अमेरिका) में विश्व धर्म परिषद में भाग लेने के परिप्रेक्ष्य में उद्भूत हुआ। विद्वान भौतिकवादी पिता और अत्यंत धर्म परायण माँ की संतान नरेंद्रनाथ दत्त ने भारत को नये वैज्ञानिक अर्थ और ऊँचाइयाँ दीं। वे वेदांत के पुरोधा के रूप में वैदिक संस्कृति के नये और प्रगतिशील मानदंडों के उद्गाता बने। इसीलिए अमेरिका की भूमि पर बिल्कुल नवीन और ऊर्जस्वित कण्ठ से उन्होंने विश्वबंधुत्व का नारा दिया, तथापि हिन्दुत्व की भावभूमि पर बने रहकर उन्होंने अपने प्रथम परिचयात्मक उद्बोधन में कहा, ''मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सभी धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मान कर स्वीकार करते हैं। मुझे ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया।'' भारतीय गौरव के प्रति आत्माभिमान से संतृप्त यह युवा 25 वर्ष की आयु में ही संन्यासी हो गया। भारत को संपूर्ण रूपेण जानने की दृष्टि से उसने पैदल ही पूरे भारतवर्ष की यात्रा की।

भारत भ्रमण के दौरान उन्होंने जो पहला चित्र देखा उससे चिंताक्रांत बन गए। भूखे, प्यासे, कपड़े विहीन, घर विहीन भारत की महादरिद्रता देखी। इस गरीब भारत के दर्शन ने उन्हें द्रवित कर दिया। सारे विश्व को खिलाने वाला भारत आज दरिद्र दयनीय क्यों?

दूसरा चित्र - एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को घर में नहीं आने देता अर्थात् अस्पृश्यता। 'आत्मवत सर्व भूतेषु' वाले भारत के अंदर यह कैसा पागलखाना? क्या हो गया मेरे

भारत को? तीसरा चित्र- एक ओर पढ़े-लिखे अहंकारी लोग, अपने मजे में रहनेवाले लोग। दूसरी ओर निरक्षरता। पहला चित्र, जिससे विवेकानंद चिंताक्रांत हुए उस स्थिति को जीने का अर्थात् भोगने का अवसर मठ के प्रारम्भिक दिनों में मिल गया था जिसका कथात्मक उल्लेख राजेन्द्र मोहन भटनागर के जीवनी परक उपन्यास विवेकानंद में अविकल मिलता है, ''कभी-कभी भिक्षा में इतना नहीं मिलता कि उन सबको एक वक्त का भोजन मिल सके। कन्दरु का पत्ता उबाला हुआ, भात-नमक से ही महिनों निकाले परन्तु किसी को यह आभास नहीं था कि इतनी जल्दी उनको ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा कि भिक्षा भी नहीं मिलेगी। घुइयाँ के पत्ते पर उबला हुआ कन्दरु का पत्ता और सीमित भात मिलेगा। भात भी नहीं तो लौकी के पत्तों से काम निकालना पड़ेगा।

पहनने के लिए कौपीन और एक गेरुआ वस्त्र। बाहर जाने के लिए एक सफेद धोती और एक सफेद चादर खूँटी पर टँगी रहती थी। सब काम स्वयं करने पड़ते... झाड़ू लगाना, रसोई तैयार करना,पाखाना साफ करना, पानी लाना, बरतन साफ करना आदि।'' अर्थात् स्वच्छता और स्वावलम्बन के व्यावहारिक दर्शन की विचार परम्परा का पल्लवन! इससे युगचेता साहित्य संवेदन की यथार्थ राह पकड़ेगा ही।

निरक्षरता, अस्पृश्यता, गरीबी, शोषण के दृश्यों ने उन्हें रुदन करा दिया। नरेंद्र से सच्चिदानंद फिर विविधानंद बना यह युवा संन्यासी कष्ट, दीनता से समरस हो, केवल रोया नहीं, उसने संकल्प लिया कि विश्व नत-मस्तक हो, ऐसा भारत खड़ा करना है। यह चिंतन विवेकानंद के लिए विवेक का आनंद बना!

भारत की दशा और दिशा का निर्धारण सदा सत्ता के सबल हाथों में रहा है। संभवत: यही सोचकर उन्होंने भारत के तत्कालीन राजाओं से संपर्क किया और अपना उद्देश्य बताया। जो भी उनके संपर्क में आया, उनका हो गया। यही नहीं उन्होंने उनके अभियान को आगे बढ़ाने के लिए आर्थिक सहायता भी उपलब्ध कराई। मैसूर के महाराज रामनाड के अतिरिक्त खेतड़ी के महाराज भी उनकी सहायता में आगे आए। खेतड़ी के महाराज के ही प्रस्ताव पर उनका अमेरिका के विश्व धर्म सम्मेलन में ज्ञान प्रकाश हेतु जाना निश्चित हुआ। यात्रा के लिए आर्थिक अधोरचना की गई और उद्भूत हुआ उनका नया नाम-स्वामी विवेकानंद। सभी जानते हैं कि सम्मेलन में अपनी पहली छाप युवा स्वामी विवेकानंद ने कैसी छोड़ी और कैसे भारतीय जीवनदर्शन विश्व में पुन: अग्रणी हुआ।

परन्तु यह सफलता केवल पलक झपकते, किसी चमत्कार के रूप में नहीं मिली। उनकी संघर्ष गाथा कुछ यों है, मुम्बई से जलमार्ग द्वारा पूर्णत: अपरिचित देश अमेरीका पहुँचे इस संन्यासी ने क्या कुछ नहीं सहा? जाकर मालूम हुआ कि सम्मलेन की तिथि दो महीने आगे बढ़ गई है। अनजान स्थान पर जहाँ भारत की तरह माँग कर भी नहीं खाया जा सकता था, कैसे वे रहे होंगे, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। कोई गाली देता तो कोई थूकता। निंदा करते इन लोगों के व्यवहार को 'विवेकी' होने के कारण सहन करते रहे। इस अपरिचित देश को अपना बनाने आये थे, इसलिए कोई प्रतिरोध नहीं। ऐसे में एक व्यक्ति मिला। उसने पूछा, 'किसको ढूँढ़ते हो'? इन्होंने उत्तर दिया, 'आपको ही।' विस्मय से उसने पूछा, 'कोई मित्र है?' 'हाँ है न, आप हैं!' आश्चर्य और आनंद से अभिभूत वह व्यक्ति इन्हें अपने घर ले गया। वह अनजान व्यक्ति अमेरिकन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राईट थे। उन्होंने ही परिचय-पत्र देकर विवेकानंद जी को सर्वधर्म सम्मलेन में भेजा। विश्वकोष में इस अद्भुत् घटना के बारे में सिर्फ यह कहा जाता है कि एक अमेरिकन प्रोफेसर के प्रयास से उन्हें थोड़ा समय मिला, किन्तु उनके विचार सुनकर सभी विद्वान चकित हो गये।

साहित्य पर प्रभाव- इसमें संदेह नहीं है कि विवेकानंद का संघर्ष, उनका लक्ष्य के प्रति समर्पण,

उनकी संगठन-क्षमता, उनकी अद्वितीय [illegible] आदि भी भारतीय युवकों के लिए प्रेरक है। इसका कारण यह है कि अत्यंत निष्पक्षता पूर्वक विवेकानंद ने भारतीय समस्याओं का विश्लेषण किया। धर्म, संस्कृति, समाज, जाति एवं वर्ण-व्यवस्था, आर्थिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में भारत की दुर्दशा का उन्होंने विस्तार से अध्ययन किया और उसके निर्मम निष्कर्ष भी दिए। निर्मम इस अर्थ में कि केवल वे भारतीय धर्म जिसे, आजकल 'हिन्दुत्व' कहकर उछाला जा रहा है, वे केवल उसका यशोगान ही नहीं करते रहे, वरन उन्होंने बहुत कटु शब्दों में स्वार्थी तत्वों द्वारा फैलाई गई कुरीतियों और अंधविश्वासों पर भी प्रहार किये। उन्होंने देशवासियों का आह्वान करते हुए कहा था, ''नया भारत निकल पड़े भड़भूँजे के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से, निकल पड़े झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।'' और जनता ने स्वामीजी की पुकार का उत्तर दिया। वह गर्व के साथ निकल पड़ी। यही कारण है कि तत्कालीन राजनीति और साहित्य पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। आज हम जिस गीत को भारत के राष्ट्रीय गीत के रूप में गाने लगे हैं, वह एक ऐसे उपन्यास से लिया गया है जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम में संन्यासियों की संगठित संघर्ष की कहानी कहता है। यह उपन्यास 'आनंद मठ' बंकिमचंद्र की वह कालजयी रचना है जिसमें 'वंदे मातरम्' का समवेत गान कर संन्यासियों ने अपना राष्ट्रप्रेम उद्घाटित ही नहीं किया वरन् संपूर्ण जन जागरण का कार्य भी किया। क्या इस उपन्यास को प्रखर युवा-संन्यासी स्वामी विवेकानंद को किया गया समर्पण नहीं कहा जा सकता? ऐसी कितनी ही साहित्यिक कृतियाँ हैं जिसमें भारत के धर्म, भारत की सहिष्णुता, भारत का विश्वबंधुत्व और भारत का सबको अपना बना लेने की संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष दिखाई देता है। अपनी खोई हुई पहचान को जानने, अपने आत्म-साक्षात्कार के लिए उद्वेलित करती कितनी ही कालजयी रचनाएँ हिन्दी में भी रची गईं। प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' के नायक [illegible] जो युद्ध कौशल और नायिका द्वारा जो जन जागरण किया गया वह उसी धर्म और संस्कृति को दर्शाता है जो अंत में राष्ट्रहित में व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर त्याग और संन्यास के शिखर तक पहुँचाने के दृश्य के साथ समाप्त होता है। महादेवी वर्मा का जागरण गीत 'जाग तुझको दूर जाना' और निराला की रचनाएँ 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति पूजा', 'वेदांत केसरी स्वामी विवेकानंद' आदि में भारतीय धर्म और दर्शन के अंत:दर्शन होते हैं। कौन नहीं जानता कि अपनी व्यग्रता के काल में महाप्राण निराला, स्वामी विवेकानंद द्वारा स्थापित 'श्रीरामकृष्ण मिशन' के गेरुआ संन्यासी हो गए थे। प्रसिद्ध भारतीय साहित्य के प्रथम नॉवलिस्ट गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगौर भी विवेकानंद से प्रभावित थे। उन्होंने कहा था, ''यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानंद को पढ़िए। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पाएँगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।''

भारत को विदेशों में प्रतिष्ठा दिलाने में विवेकानंद प्रथम थे। उनसे प्रभावित पश्चिमी लेखक रोमां रोलां का यह कथन रोमांचित करता है, ''उनके द्वितीय होने की कल्पना करना भी असंभव है। वे जहाँ भी गए, सर्वप्रथम हुए। हर कोई उनमें अपने नेता का दिग्दर्शन करता। वे ईश्वर के प्रतिनिधि थे और सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेना ही उनकी विशिष्टता थी। हिमालय प्रदेश में एक बार एक अनजान यात्री उन्हें देखकर ठिठककर रुक गया और आश्चर्यपूर्वक चिल्ला उठा, 'शिव!' यह ऐसा हुआ मानो उस व्यक्ति के आराध्य देव ने अपना नाम उनके माथे पर लिख दिया हो।'' या यह कह सकते हैं कि उस व्यक्ति ने विवेकानंद को शिव-रूप में देखा। भारतीय धर्म में 'शिव' महादेव के रूप में परिगणित हैं। उपर्युक्त दृष्टांत से विवेकानंद को शिव रूप में स्थापित किया गया है। एक बार विवेकानंद ने कहा था, ''आनेवाला समय शूद्रों का होगा।'' हिन्दुत्ववादियों का शूद्रों के प्रति क्या दृष्टिकोण है इसे सभी जानते हैं। वे संस्कृति और धर्म के नाम चार वर्णों का रूप यथावत् रखना

चाहते हैं। छुआछूत के आरंभिक संस्कार विवेकानंद में भी थे। चातुर्वर्ण व्यवस्था में प्रत्येक जाति और वर्ण का व्यक्ति दूसरी जाति और वर्ण के व्यक्ति से अस्पृश्यता का भाव रखता है। ऊँच-नीच का दृष्टिकोण प्रत्येक जाति में दूसरी जाति के प्रति है, भले ही वह स्वयं उस कृत्रिम व्यवस्था से पीड़ित ही क्यों न हो। ब्राह्मण ब्राह्मण से, क्षत्रिय क्षत्रिय से, वैश्य वैश्य से, शूद्र शूद्र से आपस में ही इस दुराचरण में लिप्त थे। इसे देखकर स्वामी विवेकानंद भारत भ्रमण के दौरान क्षुब्ध हुए थे। वे स्वयं कायस्थ थे। अभी पिछले दिनों संस्कृतिवादी राजनीतिक दल के अध्यक्ष द्वारा विवेकानंद और दाउद की तुलनात्मक टिप्पणी पर जमकर हंगामा हुआ। इस पर एक लेखक एक्सकैलिबर स्टीवेंस ने अपने लेख 'शूद्र विवेकानंद पर चित्पावन ब्राह्मण गडकरी का आक्षेप' में लिखा है, ''बंगाल में विवेकानंद के नाम पर वोट नहीं मिलते। वर्ण-व्यवस्था के मुताबिक कायस्थ शूद्र होते हैं। इस हिसाब से विवेकानंद, नेताजी सुभाष चंद्र बोस और ज्योति बसु तीनों शूद्र हैं। तीनों की भारतीय राजनीति ने क्या गत की है, इतिहास इसका मूक गवाह है।

इस मिथक को अपने संन्सासी-जीवन में भ्रमण के दौरान स्वामी विवेकानंद ने स्वयं तोड़ा। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा स्वामी विवेकानंद की एक सौ पचासवीं जयंती के अवसर पर वितरित एक पुस्तिका में यह दृष्टांत भी प्रमुखता से प्रकाशित किया गया है कि भ्रमण के दौरान एक स्थान पर बैठकर चिलम पी रहे एक व्यक्ति के साथ बैठकर चर्चा करने की इच्छा स्वामीजी को हुई। ये उसके पास गए तो 'परंपरानुसार' वह इनसे दूर खिसक गया और 'स्वामी' से अस्पृश्यता की रीति को निभाने लगा। स्वामीजी ने संवाद स्थापित करने की दृष्टि से उससे चिलम पिलाने का आग्रह किया। उस व्यक्ति ने कहा 'मैं भंगी हूँ महाराज!' कायस्थ संन्यासी संस्कारवश उसके पास से उठकर आगे बढ़ गए। किन्तु उनके विचारों ने कुछ ही देर में उनको मंथन के आधार पर लौटने का भान दिया। उन्होंने सोचा, ''यह मैंने क्या किया? मैं पूरे भारत को छुआछूत जैसी कुरीतियों से दूर कर उसे एक बनाने निकला हूँ और मैं स्वयं..?'' फिर वे लौटे और आग्रहपूर्वक उस भंगी के साथ बैठकर उन्होंने चिलम पी। इसके बाद ही उन्होंने भारतीय जाति व्यवस्था और संस्कृति पर अपनी क्रांतिकारी पुस्तकें लिखीं। इन्हीं पुस्तकों के आधार पर भारत के क्रांतिकारी दल में उनके विचारों का भरपूर स्वागत किया गया। भारत के उदारतावादी जानते हैं कि ईश्वरों में शिव, राम, कृष्ण, हनुमान, ऋषि मुनियों में नारद, अगस्त, वेदव्यास, शंकराचार्य आदि 'संस्कारित होकर' ब्राह्मण हुए हैं। अन्यथा मनुस्मृति के आधार पर तो सभी देहधारी जन्मना शूद्र ही हैं। ('जन्मना जायतो शूद्र:, संस्कारात द्विज उच्चते'-मनुस्मृति।)

भारतीय मनीषी और साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में ही अस्पृश्यता के विरुद्ध 'चंडालिनी' नृत्यनाटिका की रचना की, जिसका देश-विदेश में व्यापक पैमाने पर मंचन होता रहा। प्रसिद्ध उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने किसानों और दलितों को केन्द्र में रखकर अपनी कहानियाँ और उपन्यास लिखे जो हिन्दी साहित्य की धरोहर बने।

आज अस्पृश्यता और शूद्र-समस्या पर साहित्य-विविधा की साहित्यिक कृतियों की लगभग सभी भाषा-भाषी साहित्य में भरमार है। यह विवेकानंद की विचार चिंतन की चिंगारी ही है जो साहित्य की सामाजिकी में पल्लवित हो रही है। समकालीन संदर्भों में विवेकानंद आज भी इस अर्थ में प्रासंगिक हैं। साहित्य के माध्यम से प्रेमचंद, निराला, प्रसाद, महादेवी, अमृतलाल नागर, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सियारामशरण गुप्त आदि के अस्पृश्यता या छुआछूत पर प्रभावशाली साहित्य लिखने के बावजूद अपनी अस्मिता और वर्चस्व को बनाए रखने के लिए साहित्य जगत् में ही जातिवाद और जातीय वैमनस्य यथावत बना हुआ है। दलित लेखन के दो विभाग मिलते हैं। ब्राह्मण एवं अन्य लेखकों द्वारा

दलित विमर्श पर सहानुभूति पूर्वक लिखा 'जागृति साहित्य' और शूद्रों या दलित लेखकों द्वारा लिखा गया 'भोगा हुआ दलित साहित्य।' हालाँकि ऐसे भी लेखक हैं जो दलित लेखन को अन्य लेखन से विलगाकर नहीं देखते। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा पाठकमंच को हाल ही में उपलब्ध करायी गई देवेन्द्र दीपक की पुस्तक 'संत रविदास की रामकहानी' अनेक अर्थों में प्रासंगिक है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विवेकानंद ने केवल जातिवाद की बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। विवेकानंद चाहते तो किसी राजनैतिक संगठन में शामिल होकर ज्वलंत मुद्दों को उछालकर जनता के विग्रह का आनंद लेते रहते। किन्तु उनका सपना तो भारत के खोए हुए आत्मस्वाभिमान और औदात्य का पुनर्जागरण था। इसके लिए भारत के मूल एकात्मिक संस्रोतों का मार्ग पकड़ा। धर्म और संस्कृति का पथ ग्रहण किया। अच्छाइयाँ इसी मार्ग से आती हैं और अवसरवादी मानसिकता अपने स्वार्थपूर्ति के ईंधन भी इसी में खँगालते हैं। विवेकानंद ने अध्यात्म का मार्ग क्यों पकड़ा और कैसे महात्मा गाँधी के उद्देश्यों को उनके चिंतन का रचनात्मक सहयोग मिला। इसका उल्लेख पूर्व केन्द्रीय मंत्री जगमोहन जी ने अपने लेख 'समाज सेवा, धर्म और राजनीति के संदर्भ में गाँधीजी के विचारों में विवेकानंद का प्रभाव' में किया है। वे लिखते हैं, ''1901 में गाँधीजी ने कांग्रेस सम्मेलन में भाग लेने के लिए कोलकाता का दौरा किया। वह इस दौरान विवेकानंद से मिलने गए, जो उस समय वस्तुत: मृत्युशैया पर थे। दोनों के बीच क्या बातचीत हुई, इसका कोई रिकार्ड नहीं है, लेकिन यह आसानी से समझा जा सकता है कि दोनों के बीच अस्पृश्यता के मुद्दे पर अवश्य चर्चा हुई होगी। हाल में जोसेफ लेलील्ड की 'ग्रेट सोल' शीर्षक से गाँधीजी पर जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें लिखा गया है, ''कोलकाता में हुई मुलाकात के बाद गाँधीजी ने अपने भाषणों में जब भी विवेकानंद का जिक्र किया तो अस्पृश्यता की बीमारी का उल्लेख अवश्य हुआ। विवेकानंद और गाँधीजी, दोनों के पास शक्तिशाली और मौलिक मस्तिष्क था। दोनों को भारतीय संस्कृति की आत्मिक शक्ति पर अटूट विश्वास था। दोनों व्यावहारिक वेदांत पर भरोसा करते थे और उन्होंने हिंदुत्व को सेवा आधारित जीवन दर्शन के रूप में देखा, जिसमें उच्चतम स्तर की नैतिकता और आदर्श हैं। दोनों ने यह सोचा कि आधुनिक व्यक्ति अपने चित्त की वृत्तियों पर बाहरी माध्यमों से जीत हासिल करने की आशा नहीं कर सकता। गाँधीजी और विवेकानंद, दोनों का तर्क था कि महान सामाजिक और नैतिक व्यवस्था केवल महान व्यक्तित्वों के कंधों पर ही तैयार की जा सकती है। अगर आपके दिल में शुद्धता, निष्पक्षता और न्याय नहीं होगा तो ये गुण आपके घर में नहीं आ सकते।''

एक समय था जब राजनीति को धर्म से अलग रखा जाता था। लेकिन आज दोनों के बीच का यह अंतर समाप्त हो चुका है। दोनों इस तरह एक-दूसरे में मिल गए हैं कि दोनों को अलग करना संभव नहीं है, पहचानना असंभव है कि कहाँ से धर्म शुरू होता है और कहाँ से राजनीति। आज हिन्दुत्व के अर्थ में स्वामी विवेकानंद अत्यधिक प्रासंगिक हो चले हैं। इस संदर्भ में एक लेख के ये अंश बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, ''देश में वह हिंदुओं से अधिक घुलते-मिलते नहीं थे। जब उनके आश्रम में एक अनुयायी ने उनसे पूछा कि व्यावहारिक सेवा के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना का उनका प्रस्ताव संन्यासी परंपरा का निर्वहन कैसे कर पाएगा? तो उन्होंने जवाब दिया, आपकी भक्ति और मुक्ति की कौन परवाह करता है? धार्मिक ग्रंथों में लिखे की किसे चिंता है? अगर मैं अपने देशवासियों को उनके पैरों पर खड़ा कर सका और उन्हें कर्मयोग के लिए प्रेरित कर सका तो मैं हजार नर्क भी भोगने के लिए तैयार हूँ। मैं मात्र रामकृष्ण परमहंस या किसी अन्य का अनुयायी नहीं हूँ। मैं तो उनका अनुयायी हूँ जो भक्ति और मुक्ति की परवाह किए बिना अनवरत

दूसरों की सेवा और सहायता में जुटे रहते हैं।''

इसका अर्थ यह है कि स्वामी विवेकानंद ने भारत की दिशाहीनता का भरपूर अध्ययन किया था और वे जानते थे कि भारत में सिद्धांतों की तरफ़ किसी का मोह नहीं है। सभी तात्कालिक लाभ का प्रयास करते हैं। इसीलिए सामाजिक उत्थान पर उन्होंने धार्मिक उत्थान से अधिक जोर दिया। उन्होंने भारत के लोगों के आचरण पर क्षुब्ध होकर कहा था, ''मुझे मनुष्य चाहिए। करोड़ों जनसंख्या के जन को देखकर मनुष्य नहीं लग रहा। निरक्षर को देखकर उसे सुशिक्षित करने की जिसमें चाह हो, गरीबी को देखकर अपनी संपत्ति बाँटने की इच्छा हो, भूखे को घर बुलाकर खाना खिलाने का भाव हो, तो ही देशभक्त भारत का पुनरुत्थान ऐसे ही मनुष्यों के माध्यम से संभव है।''

इन शब्दों में विवेकानंद का वास्तविक स्वरूप छुपा हुआ है। एक अन्य संदर्भ में बुद्धिविहीन कर्मकाण्ड और ढोंग में उलझे अपने एक गुरुभाई को फटकारते हुए उन्होंने कहा था कि मूर्तिपूजा से तुम्हारे आराध्य को शांति नहीं मिलेगी। वास्तविकता तो यह है कि ''गरीब को संपन्न, मूर्ख को बुद्धिमान, चांडाल को अपने जैसा बनाना ही भगवान की पूजा है। इससे ही राष्ट्र निर्माण, भारत पुनरुत्थान होगा।'' वेदांत के अन्य प्रवक्ता श्री अरबिंदो ने विवेकानंद के प्रभाव पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए भी यही भाव प्रस्तुत किया, ''भारत को अपने भीतर से समूचे विश्व के लिए भविष्य के पंथ का निर्माण करना है। एक शाश्वत पंथ जिसमें तमाम पंथों, विज्ञान, दर्शन आदि का समावेश होगा और जो मानवता को एक आत्मा में बाँधने का काम करेगा। स्पष्ट तौर पर 'मात्र एक भाषण ने' ऐसी ज्योति प्रज्ज्वलित की, जिसने पाश्चात्य मानस के अंतर्मन को प्रकाश से आलोकित कर दिया और ऊष्मा से भर दिया।''

लेकिन ऐसे प्रखर भारतीयता के पक्षधर स्वामी विवेकानंद के तमाम प्रयासों का क्या हुआ? भारत में जो हिन्दुत्व के लिए काम कर रहे हैं या उसकी पुनर्स्थापना का काम कर रहे हैं और उसमें विवेकानंद को प्रमुखता के साथ जोड़ रहे हैं, उन्हें इस बात का ध्यान रखना होगा कि वे उनके सपनों को साकार करने के लिए क्या कर रहे हैं? उन्हें समीक्षा करनी होगी कि आज इतने वर्षों बाद भी हमारी मानसिकता कितनी बदली?

भारतीय समकालीन साहित्य के संदर्भ पर ही बात करते हुए एक और लेख की चर्चा करना समीचीन होगा। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्राध्यापक डॉ. अमित कुमार शर्मा का हाल ही में प्रकाशित एक लेख ''हिन्दुत्व का अर्थ''। इस लेख में हिन्दुत्व के सीमित अर्थ पर चिंता प्रकट करते हुए वे लिखते हैं, ''हिन्दुत्व की अवधारणा में दयानंद, विवेकानंद, तिलक, श्री अरविंद और सावरकर के बाद एक भी नया शब्द किसी ने नहीं जोड़ा है।...वैचारिक शून्यता को विचारधारा कहकर कब तक उधार की गाड़ी चलाई जाएगी? उदार हिन्दुत्व, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद, मुस्लिम अविद्वेष, पंथ निरपेक्षता आदि कोरे कामचलाउ शब्द हैं जिनका अर्थ बीसवीं सदी के सामाजिक संदर्भों पर निर्भर था। इक्कीसवीं सदी के आधुनिक भारत को परिभाषित करने में ये शब्द समर्थ नहीं हैं। किसी सफल राजनीतिक दल के पीछे कोई लौह आबद्ध विचारधारा हो यह आवश्यक नहीं है। खासकर लोकतांत्रिक व्यवस्था में। गुलाम भारत और विभाजन के तरफ बढ़ते भारत में तो कई विचारधाराएँ जरूरी थीं, लेकिन अब समय और परिस्थिति बदल चुकी हैं। अब युगानुकूल विचारधारा चाहिए।''

हिन्दू धर्म के विषय में उनका अपना मत है, ''हिन्दू धर्म सृष्टि के साथ तादात्म्य पर बल देने वाला धर्म है।'' इसके पक्ष में वे आगे लिखते हैं, ''हिन्दू जीवन दर्शन विशेष रूप से किसी सीधी राह की बात नहीं सोचता, वह जीवन की जटिलताओं को अच्छी तरह ध्यान में रखते हुए ही लम्बी और घुमावदार राह की परिकल्पना करता है। हिन्दू धर्म में गुरु की कल्पना

परित्राता के रूप में नहीं है, नेत्र उन्मीलक के रूप में है। वह राह चलना नहीं सिखाता, राह पहचानना सिखाता है। चलना तो आदमी को स्वयं होता है। रामकृष्ण परमहंस और आनंद कुमार स्वामी इसी किस्म के हिन्दू धर्म गुरु हैं जिनकी सिखावन आज भी प्रासंगिक है।'' विवेकानंद का नाम उन्होंने स्पष्टत: नहीं लिया है लेकिन रामकृष्ण परमहंस कहकर वे यह इंगित अवश्य करते हैं कि संदर्भ विवेकानंद ही हैं। इसीलिए निष्कर्ष में वे विवेकानंद की तरह ही चिंतित स्वरों में कहते हैं, ''हिन्दू जीवनदर्शन के व्यवहार और सिद्धांत में बहुत अंतर आ गया है। इसी से हिन्दू समाज के अंग्रेजीदां लोग कोरे काम चलाउ शब्दों से अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को परिभाषित करने लगे हैं। इससे किसी का कल्याण नहीं हो सकता। हिन्दुत्व में जिनकी अब भी आस्था है, उन्हें उपरोक्त मुद्दों पर विचार करना चाहिए।'' कुल मिलाकर गेंद ले देकर हिन्दुत्ववादियों के घेरे में ही डाली जा रही है। इसमें कोई संदेह है भी नहीं कि आज जब हम स्वामी विवेकानंद के जीवन दर्शन और उनके विचारों से आंदोलित साहित्य की बात करते हैं तो हमारे हिस्से में यह सिद्ध करने का उत्तरदायित्व स्वमेव आ जाता है कि हम व्यावहारिक दृष्टि से किन धारणाओं का सामाजिकीकरण करें? किन ऐसे सिद्धांतों पर ज़ोर डाले जिससे विवेकानंद के सपनों का भारत मूर्त रूप ले सके। इस बात पर भी गौर करें कि विवेकानंद ने क्यों कहा था कि ''उठो, जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो और तब तक रुको नहीं जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।'' सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण उनका यह कथन है जो उन्होंने जीवन के अंतिम दिन शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या करते समय कहा ''एक और विवेकानंद चाहिए, यह समझने के लिए कि इस विवेकानंद ने अब तक क्या किया है।''

आधुनिक भारत में युवा पुरुष के रूप में जिनका उल्लेख किया जाता है, वे स्वामी विवेकानन्द वेदांत और पाश्चात्य शिक्षा दोनों को साथ रखकर शिक्षा को आगे की ओर लाना चाहते थे। शिक्षा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही उनका लक्ष्य था। स्वामी विवेकानन्द का लक्ष्य समाज सेवा, जनशिक्षा, धार्मिक पुनरुत्थान और शिक्षा के द्वारा जागरूकता लाना, मानव की सेवा आदि था। विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर का कहना था, ''भारत को समझना है तो उसे स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन समझना होगा।'' अपने शैक्षिक चिंतन के आधार पर भारतीय संस्कृति की ख्याति यूरोप और अमेरिका में फैलाने में वे सफल हुए थे। स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों में उत्तम कोटि की बौद्धिकता और विजय की गहनता यत्र-तत्र अमूल्य हीरों की तरह उपलब्ध है।

अपनी ओजपूर्ण आवाज से लोगों के दिल को छू लेने वाले स्वामी विवेकानन्द नि:संदेह विश्व गुरु थे जिनके सुलझे हुए विचारों के उजाले ने धर्म की डगर से भटक रही दुनिया को सही राह दिखाई। निर्विवाद रूप से विश्व में हिन्दुत्व के ध्वजवाहक रहे विवेकानन्द का बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्ति से भरा व्यक्तित्व और कृतित्व विशेषकर युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। विवेकानन्द ने अपनी अल्प आयु में ही दुनिया को बहुत कुछ दिया। उन्होंने विश्व को वेदान्त के मर्म से रूबरू कराया। विवेकानन्द ने राष्ट्र निर्माण में युवाओं की भूमिका को बहुत महत्वपूर्ण माना। वह चाहते थे कि नौजवान पीढ़ी रूढ़िवाद से अछूती रहकर अपनी ऊर्जा का इस्तेमाल देश की तरक्की के लिए करें। युवाओं के आदर्श विवेकानन्द के जन्मदिन को युवा दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। विवेकानन्द के जीवन में विचारों की क्रांति भरने वाले उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक बार कहा था कि विवेकानन्द एक दिन दुनिया को शिक्षा देंगे और बहुत जल्द अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों से विश्व पर गहरी छाप छोड़ेंगे। कनक तिवारी की पुस्तक 'छत्तीसगढ़ के विवेकानंद' से उनकी बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्तियों

के स्त्रोत-उद्गम का आभास मिलता है, ''उनकी ओजस्वी चेतना के जो स्फुलिंग 11 सितंबर 1893 को शिकागो में विस्फोटक ढंग से दुनिया के सामने आए, उनके कुछ बीज निश्चय ही किशोरावस्था के उन ढाई वर्षों में भी पड़े होंगे जब उन्नीसवीं सदी के छतीसगढ़ के अभावों का साक्षात्कार उनके आकार लेते मानस में हुआ होगा। यह आश्चर्यजनक है और दुर्भाग्यपूर्ण भी कि विवेकानंद के अधिकतर जीवनीकारों ने उनके इस छत्तीसगढ़ प्रवास को अनदेखा किया है! इसलिए ऐसे तथ्य भी सामने नहीं आ सके जिनसे उनके जीवन में 1875 से 1877 के इस कालखंड के महत्व को रेखांकित किया जा सके! लेकिन क्या यह सच नहीं है कि व्यक्ति के जीवन में किशोरावस्था के अनुभवों की भूमिका निर्णायक होती है! ज्ञात हो कि विवेकानंद उस समय 12 वर्ष के थे, जब उनके पिता उन्हें रायपुर लेकर आये और दो वर्ष से ज्यादा वे यहाँ पर रहे! लोक विश्वास है कि जबलपुर से रायपुर आते हुए ही उन्हें माँ की गोद में लेटे हुए दिव्य ज्योति के दर्शन हुए थे! यह भी माना जा सकता है कि इसी दौरान उनका परिचय हिंदी और छत्तीसगढ़ी से हुआ और यहाँ पर उन्हें भारत की गुरबत की वह झलक भी मिली जो उनके व्याकुल चिंतन की आधारशिला बनी!''

कलकत्ता के शिमला पल्ली में 12 जनवरी 1863 में एक सम्भ्रान्त परिवार में जन्मे विवेकानन्द का बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था। शुरुआती शिक्षा घर में प्राप्त करने के बाद उन्होंने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर संस्थान तथा स्काटिश चर्च कॉलेज में तालीम हासिल की। शिक्षार्जन के दौरान नरेन्द्रनाथ ने विशेष रूप से दर्शन और इतिहास का गहराई से अध्ययन किया। अध्यात्म के प्रति उनका झुकाव बचपन से ही था और छात्र जीवन में उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी देशों की धर्म तथा दर्शन से जुड़ी पद्धतियों का गहराई से अध्ययन किया। विवेकानन्द ने नए परिप्रेक्ष्य में धार्मिक विचारों के व्यापक प्रचार के लिए वर्ष 1897 में कलकत्ता में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। यह शैक्षिक तथा सांस्कृतिक कार्यों के जरिए सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन की शुरुआत थी। रामकृष्ण मिशन आदर्श कर्मयोग पर आधारित है। दिल्ली स्थित रामकृष्ण आश्रम के प्रमुख स्वामी शांतमानंद के अनुसार विवेकानंद चाहते थे कि देश के युवा रूढ़िवाद से प्रभावित हुए बगैर राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका को श्रद्धा के साथ निभाएँ। उन्होंने कहा कि महज 39 वर्षों की जिंदगी में विवेकानंद ने आधुनिकता की दौड़ में धर्म की राह से भटक रही दुनिया को अपने विचारों की ऊर्जा से सही रास्ता दिखाया। विवेकानंद ने साबित किया कि देश के युवा चाहें तो दुनिया में सुविचारों की क्रांति लाकर अपनी पीढ़ियों को एक सम्पन्न विरासत दे सकते हैं।

विवेकानंद के भक्त स्वामी अदीश्वरानंद के एक लेख में विवेकानंद के व्यक्तित्व और विचारों का शिकागो में हुई धर्म संसद पर प्रभाव का जिक्र मिलता है। अदीश्वरानंद ने लिखा है कि विवेकानंद ने अपने विचारों से अमेरिकी लोगों के दिल को छुआ। उन्होंने अपनी जादुई भाषण शैली, रूहानी आवाज और क्रांतिकारी विचारों से अमेरिका के आध्यात्मिक विकास पर गहरी छाप छोड़ी। विवेकानंद ने अमेरिका और इंग्लैंड जैसी महाशक्तियों को अध्यात्म का पाठ पढ़ाकर विश्व गुरु के रूप में अपनी पहचान बनाई और अपने गुरु परमहंस की भविष्यवाणी को सही साबित किया। अदीश्वरानंद के मुताबिक विवेकानंद भारत के प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका जाने वाले पहले हिन्दू भिक्षु थे। उनका संदेश वेदान्त का पैगाम था। उनका मानना था कि वेदांत ही भविष्य में मानवता का धर्म होगा। धार्मिक सौहार्द्र वेदान्त का सार है। उन्होंने लिखा है कि विवेकानंद ने सभी लोगों को अपने-अपने धर्म की डोर को मजबूती से थामने की शिक्षा दी।

विवेकानंद जिस समय शिकागो गए थे उस वक्त अमेरिका गृहयुद्ध जैसी स्थिति से जूझ रहा था और तथाकथित वैज्ञानिक प्रगति ने धार्मिक मान्यताओं की

जड़ों को हिला दिया था। ऐसे में अमेरिकी लोग एक ऐसे दर्शन की प्रतीक्षा में थे जो उन्हें इस संकट से मुक्ति दिलाए। विवेकानंद ने अपने विचारों से उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए आशा की किरण दिखाई। विवेकानंद ने अपने जीवन के आखिरी दिन बेलूरू स्थित रामकृष्ण मठ में बिताए। लगातार यात्राओं से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वह शारीरिक रूप से दिन-ब-दिन कमजोर होते गए। बताया जाता है कि उन्होंने अपने निर्वाण से पहले यह कह दिया था कि वह 40 वर्ष की उम्र तक जिंदा नहीं रह पाएँगे। उनकी भविष्यवाणी सच साबित हुई और इस आध्यात्मिक गुरु ने अपने विचारों से विश्व को जाज्वल्यमान् करने के बाद 04 जुलाई 1902 को दुनिया को अलविदा कह दिया। 39 वर्ष के छोटे से जीवनकाल में स्वामी विवेकानंद जो काम कर गये, आनेवाली शताब्दियों तक वे मानव पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहेंगे। साहित्य की समकालीनता भी इससे न अछूती है, न रहेगी। उपन्यास की शैली में लिखी जीवनी कहें या जीवनी की शैली में लिखा उपन्यास... नरेन्द्र कोहली की औपन्यासिक लेखनी से उत्सर्जित पुस्तक 'स्वामी विवेकानंद' का निम्न प्रसंग शाश्वत समकालीनता का आप्त विचार साहित्य की प्रभाविता का बिंब बनता है— पद्मासन लगाए गंगा के बीच तैरते बजरे पर ध्यानमग्न महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के सम्मुख अँधेरी रात में गंगा में तैर कर पहुँचा नरेन्द्र को देखकर विचलित महर्षि के मुख से निकला, ''नरेंद्रनाथ दत्त! तुम इस समय यहाँ? ''इसके बाद विविध जीवन- प्रश्न! मनुष्य के जीवन का लक्ष्य क्या है? संसार का लक्ष्य है, इंद्रियभोग! धन संपत्ति आदि-आदि। भोग से मुक्ति ही जीवन का लक्ष्य है। ''पुत्र नरेंद्र, तुम्हारे नेत्र, एक योगी के नेत्र हैं। तुम ध्यान किया करो। मैं तुममें एक महान योगी का भविष्य देख रहा हूँ।'' नरेंद्र की आँखें कठोरता के भाव से सघन हो गयीं। वापस जाने को मुड़ा। महर्षि इस अँधेरीरात में गंगा में कूदने से मना कर रहे हैं। नरेंद्र कहते हुए कूद जाता है, ''कूदकर ही खोजना होगा। खोजकर कौन कूदता है?'' ऐसे शाश्वत विचार ही जीवन-साहित्य के लिए अमरकोष के आप्त वाक्य बनते हैं। सत् हित के लिए उपजित साहित्य समकालीन चिंतन की चिंगारी से शाश्वत प्रभाविता का जीवन-साहित्य देता है, ऐसे में स्वामी विवेकानंद के विचार साहित्यिक कृतियों में जाने-अनजाने पल्लवित होते रहते हैं। विचार और साहित्य के सत् का श्रेयस भी यही है।

संपर्क : प्राध्यापक, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
गाँधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो.09420063304

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को बचाया और इस प्रकार भारत की रक्षा की। वे न होते तो हम अपना धर्म गवाँ बैठते और स्वाधीन भी नहीं हो पाते। अतएव सभी बातों के लिए हम स्वामी विवेकानन्द के ऋणी हैं। मेरी कामना है कि उनका विश्वास, साहस तथा विवेक हमें सदा सर्वदा प्रेरित करता रहे, ताकि उनसे मिली सम्पदा को हम सुरक्षित रख सकें।

-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, स्वाधीन भारत के प्रथम गवर्नर जनरल

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

विवेकानंद के विचार दर्शन पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव

स्वामी विवेकानंद के समग्र विचार दर्शन संस्कृत पुण्य में निहित उसकी गंध की तरह है जिस प्रकार पुष्प और उसकी गंध में अपृथक तादात्म्य संबंध होता है उसी प्रकार से विवेकानंद और संस्कृत में है। उन्होंने 25 दिसंबर 1894 में न्यूयार्क से अपने गुरुभाइयों को जो पत्र लिखे थे उसमें उन्होंने संस्कृत की चिंता की है। एक पत्र में उन्होंने लिखा है, ''जगह-जगह संस्कृत पाठशालाएँ खोलने का प्रयत्न करना।'' इससे उनके संस्कृत के प्रति गौरव भाव को समझा जा सकता है। उनका एक भी ऐसा पत्र नहीं मिलता जो संस्कृत के किसी न किसी उद्धहरण से रहित हो। यहाँ केवल पत्रावली तीन में उद्धृत संस्कृत वाक्यों का उल्लेख कर रहा हूँ,

1. सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति:, मृत्यु- जब अवश्यम्भावी है तब सत्कार्य के लिए प्राण त्याग करना ही श्रेय है।

2. श्रेयांसि बहुविघ्नानि:- महान कार्यों में कितने ही विघ्न आते हैं।

3. सत्यमेव जयते नातृतं, सत्येनैव पन्था विततो देवयान:-सत्य की विजय होती है, मिथ्या की नहीं सत्य से ही देवयान मार्ग को गति मिलती है।

4. न लिगं धर्मकारणं, समता सर्वभूतेषू एतन्युमुक्तस्य लक्षणम्। अस्ति: अस्ति: सोऽहं सोऽहं, चिदानन्दरूप: शिवोऽहम् शिवोऽहम् निर्गच्छति जगज्जालात्, पिज्जारादिव कैसरी- बाहरी चिह्न धर्म के कारण नहीं है। सर्वभूतों में समता रखना ही पुरुषों का लक्षण है। (कहो) अस्ति, मैं ही हूँ, वह मैं ही हूँ, मैं चिदानंदस्वरूप शिव हूँ। जिस तरह सिंह पिंजरे से निकलता है, उसी तरह जगज्जाल से वे भी निकल पड़ते हैं।

5. नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:- दुर्बल मनुष्य इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

6. उद्धरे दात्मनात्मानम्- अपने ही सहारे अपना उद्धार करना

पड़ेगा।

7. वीर्यमसि वीर्यं, बलमसि बलम्, ओजोऽसि ओजो, सहसोऽसि सहो महि देहि- तुम वीर्यस्वरूप मनुष्य हो, मुझे वीर्य दो, तुम बलस्वरूप हो मुझे बल दो, तुम ओजस्वरूप हो मुझे ओज दो, तुम सहिष्णुतास्वरूप हो मुझे सहिष्णुता दो।

8. अद्य वाब्दशतान्तेवा- आज या आज से साल बाद सबके साथ सहानुभूति रखकर कार्य करना होगा।

9. आत्मानं अच्छिद्रं भावयेत- आत्मा को अछिद्र होना चाहिए अर्थात् कहो हमारे भीतर सब कुछ है, हमारी इच्छा होने पर ही प्रकाशित होगा।

10. न हि कल्याणकृत कश्चित् दुर्गतिं तात् गच्छति (गीता)- हे वत्स भला करने वालों की कभी दुर्गति नहीं होती।

11. आशा हि परमं दु:खं नैराश्यं परमंसुखम्- आशा से ही सबसे बड़ा दुख है और आशामुक्त होने में ही सबसे बड़ा आनंद अंतर्निहित है।

उनके यथासमय लिखे ये पत्रों के अंश भारतीय शास्त्रों के सारतत्व हैं। उन्होंने यथा प्रसंग इनका प्रयोग कर उनकी शक्ति को व्यक्त किया है। लेखन के समय उनके मस्तिष्क में आने वाले ये उद्धरण उनके संस्कृत ज्ञान और उनके भाषा के प्रति पूर्ण निष्ठा का परिचायक है। भाषा के प्रति उनकी एक स्पष्ट दृष्टि थी। संस्कृत भाषा गद्य सौष्ठव के विषय में उनके विचार थे, ''संस्कृत में सर्वोत्कृष्ठ पतंजलि का महाभाष्य है। उसकी भाषा जीवनप्रद है। हितोपदेश की भाषा भी बुरी नहीं है, पर कादंबरी की भाषा ह्रास का उदाहरण है।''

वे बोलचाल की संप्रेषणीय भाषा के पक्षधर थे। उनका एक उद्धरण है, ''भाषा का रहस्य है सरलता। भाषा संबंधी मेरा आदर्श मेरे गुरुदेव की भाषा है, जो थी नितांत बोलचाल की भाषा, साथ ही महत्तम अभिव्यंजक भाषा भी। भाषा को अभीष्ट विचार को संप्रेषित करने में समर्थ होना चाहिए। यही नहीं वे संस्कृत को भाषाओं की स्रोत भाषा मानते थे और संस्कृत कोश से पारिभाषिक शब्दों के संग्रह के आग्रही थे। इसी संदर्भ में उनका अभिमत है, ''बंगला भाषा का आदर्श संस्कृत न होकर पालि होना चाहिए क्योंकि पालि बंगला से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, पर बंगला में नए शब्दों को बनाने एवं उनका अनुवाद करने में संस्कृत शब्दों का व्यवहार करना उचित है। नए शब्दों के गढ़ने का भी प्रयत्न होना चाहिए। इसके लिए यदि संस्कृत के शब्दकोश से पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया जाए, तो उससे बंगला भाषा के निर्माण में बड़ी सफलता मिलेगी।

स्वामीजी संस्कृत के शुद्ध उच्चारण के पक्षधर थे। इसका एक संदर्भ इस प्रकार है, ''एक दिन स्वामीजी ने ब्रह्मसूत्र लाने के लिए कहने लगे ब्रह्मसूत्र को बिना पढ़े इस समय स्वतंत्र रूप से तुम सब लोग सूत्रों का अर्थ समझने की चेष्टा करो। प्रथम अध्याय के प्रथम पद के सूत्रों का पढ़ना आरंभ हुआ। स्वामी जी शुद्ध रूप से संस्कृत के उच्चारण की शिक्षा देने लगे, कहने लगे, संस्कृत भाषा का उच्चारण हम लोग ठीक-ठीक नहीं करते। इसका उच्चारण तो इतना सरल है कि थोड़ी चेष्टा करने से ही सब लोग संस्कृत का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। सब लोग बचपन से ही दूसरे प्रकार का उच्चारण करने के आदी हो गए हैं, इसलिए इस प्रकार का उच्चारण अभी हम लोगों को इतना नया और कठिन मालूम होता है। हम लोग 'आत्मा' शब्द का उच्चारण 'आत्मा' न करके 'आत्माँ' क्यों करते हैं? महर्षि पतंजलि अपने महाभाष्य में कहते हैं, ''अपशब्द उच्चारण करने वाला म्लेच्छ है।'' अत: उनके मत से हम सब तो म्लेच्छ ही है। तब नवीन ब्रह्मचारी और संन्यासीगण एक-एक करके, जहाँ तक बन सका ठीक-ठीक उच्चारण करके ब्रह्मसूत्र पढ़ने लगे।''

यहाँ बात केवल शुद्ध उच्चारण करने की थी। स्वामीजी ने उसके प्रतिपादित अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा, ''कौन कहता है कि ये सूत्र केवल अद्वैत मत के परिपोषक है? शंकर अद्वैतवादी थे इसलिए उन्होंने सभी सूत्रों की केवल अद्वैत मतपरक व्याख्या करने की चेष्टा

की है, किन्तु तुम लोग अक्षरार्थ मानने की चेष्टा करना। व्यास का यथार्थ अभिप्राय क्या है, यह समझने की चेष्टा करना। उदाहरण के रूप में देखो, ''अस्मिन्नस्य च तद्योगं शस्तिं।'' मेरे मतानुसार इस सूत्र की ठीक व्याख्या यह है कि अद्वैत और विशिष्टद्वैत, दोनों ही वाद भगवान वेदव्यास द्वारा इंगित हुए हैं।

संस्कृत भाषा के विषय में उनके महत्वपूर्ण विचार मिलते हैं,

1. एक जातीय भाषा अत्यंत वांछनीय है, पर इस पर भी वही आलोचना लागू होती है विविध विद्यमान, भाषाओं की जीवनी शक्ति का विनाश।

2. केवल एक ही हल संभव था एक ऐसी महान और पवित्र भाषा को खोजना, शेष सभी भाषाओं को, जिसकी विविध अभिव्यक्तियाँ मानी जा सकें और वह भाषा संस्कृत में उपलब्ध हुई है।

3. द्रविड़ भाषाएँ मूलतः संस्कृत की रही हो, या नहीं रही हो पर आज समस्त व्यवहारिक दृष्टियों से वे संस्कृतपरक है और प्रतिदिन ये अपनी पृथक् जीवंत विशिष्टताओं को रखते हुए भी, संस्कृत के आदर्श के समीप ही आ रही है।

4. जैसे भाषा संबंधी समस्या का हल बनी, ठीक वैसे ही जाति संबंधी समस्या का हल बनी संस्कृत आर्य जाति और जैसे ही विभिन्न स्तर की उन्नति और संस्कृति तथा सभी सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का हल निकला, ब्रह्मणत्व।

संस्कृत के छह आदर्श वाक्य-यह वाक्य स्वामी जी की पुस्तक 'विवेकानंद इन अमेरीकाः न्यू डिस्कवरीज'(अमेरीका में स्वामी विवेकानंदः नवीन खोजें) नामक ग्रंथ से उद्धृत है। ये आदर्श वाक्य और इनके अंग्रेजी अनुवाद स्वामी जी ने अपने छह चित्रों पर लिखे हैं,

1. अजरामवरवत् प्राज्ञः विद्याम्
अर्थं च चिन्तयेत्।
ग्रहीत इव केशेषु मृत्युना
धर्म आचरेत्।।

विद्या और वैभव की खोज में अपने को जरामरण से मुक्त समझकर आचरण करो और धर्माचरण में अपनी शिखा, काल के हाथों में समझकर तत्पर रहो।

2. एक एव सुहृद्धर्य
निधनेप्यनुयातियः

धर्म ही एक मात्र सखा है जो, मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। शेष सब मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है।

3. एक अवनत परम पावन प्रभु
गिरा-ज्ञान-गो-गुणातीत प्रभु
तुको मरो नमस्कार

4. समता सर्वभूतेषू
एतन्मुकास्य लक्षणम्।

जीव मात्र में समभाव- यही मुक्तात्मा का लक्षण है।

5. स्वमेकं शरण्यम् त्वमेकं वरण्यम्

इस विश्व की एकमात्र निधि तुम ही हो।

6. त्वमेव माता च पिता त्वमेव...

तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं माता हो, तुम्हीं स्वामी हो, तुम्हीं पति और तुम्हीं प्रियसी हो।

उपर्युक्त संस्कृत एवं हिंदी का एक वाक्य उनके आदर्श वाक्य थे। ये उनके लिए मात्र वाक्य नहीं अपितु आचरण थे।

मुक्त अनुवाद (भावानुवाद)- स्वामी जी ने अमेरीका में रहते हुए नारद-भक्ति-सूत्र का मुक्तानुवाद किया। संस्कृत से लिए हुए अनुवाद के कुछ चिंत्य सूत्रों को यहाँ देना चाहूँगा,

1. भक्ति ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग है।

2. भक्ति कर्म से ऊँचा है, योग (राजयोग) से ऊँची है, क्योंकि भक्ति स्वयं अपना फल है।

3. संन्यास उपासना के लौकिक और शास्त्रीय रूपों का परित्याग है।

4. भक्ति उपासना का सरलतम मार्ग है।

5. जब कोई मनुष्य ईश्वर को इतना प्रेम करता है

तो उसके पितर हर्ष मनाते हैं, देवता नृत्य करते हैं और पृथ्वी को एक गुरु प्राप्त होता है।

भाष्यकार- स्वामी विवेकानंद ने दार्शनिक ग्रंथों का भाष्य भी किया है। उनका भाष्य सहज, स्वानुभूतिक और जागरिक व्यवहार से युक्त है। पतंजलि योगसूत्र की व्याख्या उनके संस्कृत ज्ञान की साक्षी है। इसकी भूमिका अनेक व्यवहारिक दृष्टांतों की प्रयोजना की गई है। इसकी उपक्रमणिका (भूमिका) के कुछ अंश अत्यंत प्रेरणादायी हैं-

1. यह संसार ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है और इस संसार की ही कुछ उच्च अवस्था को, जहाँ उसके सारे अशुभ निकल जाते हैं और केवल शुभ ही शुभ बचा रहता है, स्वर्ग कहते हैं। (पृ. 109)

2. ऐसा कभी नहीं हो सकता कि शुभ है, पर अशुभ नहीं, अथवा अशुभ है पर शुभ नहीं। जहाँ कुछ भी अशुभ नहीं सब शुभ ही शुभ है, ऐसे संसार में वास करने की कल्पना भारतीय नैयायिकों के अनुसार दिवास्वप्न देखना है। (पृ. 109)

3. मनुष्य पहले भगवान से आता है, मध्य में वह मनुष्य के रूप में रहता है और अंत में पुन: भगवान के पास वापस चला जाता है। यह हुई द्वैतवाद की भाषा। अद्वैत की भाषा में यह भाव व्यक्त करने के लिए यह कहना पड़ेगा कि मनुष्य भगवान है और घूमकर फिर उन्हीं में लौट जाता है।

4. त्वंहि न पिता-योस्ऽमाकमविद्याया: परं पार तारयासि- तुम हमारे पिता हो तुम हमें अज्ञान से पार ले जाओगे।

(प्रश्नोपनिषद)

यह धर्म विज्ञान है और कुछ नहीं।

योगसूत्र की अत्यंत सहज और प्रमाणिक व्याख्या के बाद परिशिष्ट में अन्यान्य षास्त्रों के मतों का उल्लेख भी किया है। यहाँ उनके कुछ उदाहरण देना चाहूँगा,

1. समे शुचौ शर्कराबहिबालुकाविवर्जिते शब्द जलाश्रयदिभि:,

मनोनुकुले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत।

(श्वेतारोतर उपनिषद 2/पृ.219)

जो समतल हो, शुचि हो, पत्थर, बालू और आग से रहित हो, मनुष्य द्वारा किए गए या किसी जलप्रपात से उत्पन्न मन को चंचल कर देने वाले शब्दों से वर्जित हो तथा मन के अनुकूल तथा आँखों को सुखकर हो, ऐसे पर्वत, गुहा आदि निर्जन स्थान में बैठकर योग का अभ्यास करना चाहिए। (वही. 220)

रागोपहतिर्ध्यानम्।। 30।।

अनाशक्ति के नाश को ध्यान कहते हैं।

-स्थिर सुखमासनम् ।।84।।

जिससे स्थिर और सुखकर रूप में बैठा जा सके, उसका नाम आसन है। (वही पृ. 223)

आसीन: सम्भाषात ।।7।।

उपासना बैठकर ही संभव है, अत: बैठकर ही उपासना करना चाहिए। (वही पृ. 226)

अचलखं चापेस्य।।9।।

क्योंकि ध्यानी पुरुषों की तुलना निश्चल पृथ्वी से की गई है। (वही पृ. 226)

इन संदर्भों से स्पष्ट है कि स्वामी विवेकानंद ने संस्कृत साहित्य का प्रभाव तो ही, वे स्वयं संस्कृतज्ञ भी थे। उनका विचार दर्शन इतना व्यापक एवं बहुआयामी रहा है कि आज उनके समग्र साहित्य को कुल दस खंडों में समेटा जा सका है। यही कारण है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य में उन पर केन्द्रित अनेक ग्रंथ लगभग सभी विधाओं में लिखे जा चुके हैं।

संपर्क : आचार्य एवं अध्यक्ष
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, (पूर्व निदेशक-साहित्य अकादमी, भोपाल)
जबलपुर (म.प्र.), मो. 9425044685

डॉ. विद्या बिन्दु सिंह

एक नवीन भारत के स्वप्नद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द

जब-जब मानवता संकट में पड़ती है, राष्ट्र की अस्मिता पर आँच आने लगती है, संस्कृति को जड़ता की ओर ले जाने का दु:साहस होने लगता है, तब-तब महान आत्माएँ धरती पर अवतरित होती हैं और अपने विचारों से, तप से, संकल्प से अपसंस्कृति को हावी होने से बचाती है। सत्य की प्रतिष्ठा करके हारे थके निराश समाज को साहस और धैर्य का संकल्प देती हैं।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म भी तब हुआ जब राष्ट्र की अस्मिता पर संकट था। उन्होंने अपने विवेक से न केवल अपने देश को जगाया बल्कि पूरे विश्व में अध्यात्म चिंतन की लहर जगायी। उनके दृढ़ संकल्प और भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा ने लोकमन को आस्था की ज्योति थमा दी। विश्व ऐसे महामना का चिर ऋणी है। उनका स्मरण स्वयं को और अपने आसपास के परिवेश को पवित्र करना है।

लिखित साहित्य के साथ-साथ लोक मन में भी स्वामी जी के प्रति जो श्रद्धा और विश्वास पाने का अनुभव मुझे हुआ उसे बाँटने के लिए कुछ कहने का लोभ संवरण नहीं कर सकी। स्वामीजी के प्रति लोकमन की श्रद्धा असीम है।

लोकमानस की अनंत, अभेद मनोभूमि की थाह तब मिलती है जब हम लोकसाहित्य से रूबरू होते हैं। फरवार (खलिहान) लीपती स्त्रियों के मुख से एक लोकगीत सुना था जिसकी दो पंक्तियाँ मात्र याद हैं और मेरे बालमन पर स्वामी विवेकानन्द जी का वह रूप एक अमिट प्रभाव छोड़ गया। लोकभाषा अवधी में स्वामी विवेकानन्द के बारे में गाये गये उस गीत की पंक्तियाँ हैं,

''राजा दसरथ अँगनइयाँ, विवेकानन्द चलैं पइयाँ-पइयाँ''
सिर सोहै केसरिया पगड़ी, पीताम्बर सोहै देहियाँ।
विवेकानन्द चलैं पइयाँ-पइयाँ।

कहाँ अयोध्या के राजा दशरथ का आँगन, कहाँ बंगाल का संन्यासी बालक, सुनकर लगा कि गायिकाओं ने अज्ञानतावश नाम गलत जोड़ दिया है।

उसी दिन दूसरा एक देवी गीत उन्होंने गाया था जिसकी पहली पंक्ति थी,

''सुमिरौं मैं कम्मर की माई काँ।''

कम्मर की माई कौन सी देवी हैं, यह भी समझ में नहीं आया था, तब मेरे पिताजी ने मेरी जिज्ञासा शान्त की थी कि कम्मर की देवी के नाम से कामरूप की देवी कामाख्या का स्मरण है। कामरूप का कम्मर के रूप में परिवर्तित हो जाना तो समझ में आ गया

पर विवेकानन्द राम के किस नाम का परिवर्तित रूप है यह उस समय मैं समझ नहीं सकी थी। जब समझ में आया तो लोकमन का आलोक मेरे चतुर्दिक पसर गया और मैं अनुभव करने लगी कि भारत का लोकमानस ईश्वर और भक्त में अन्तर नहीं मानता। वह अवतारों में विश्वास करता है पर उनमें भी भेद नहीं मानता। राम के जन्म पर गोकुल में नन्द यशोदा के घर बधाई बजती है, श्रीकृष्ण माता कौसल्या की गोद में किलकारी मारते हैं और राजा दशरथ उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं। श्रीकृष्ण की बुआ सुभद्रा राम की आँखों में काजल लगाती हैं। स्थान और युग कालबोध भावावेग में तिरोहित हो जाते हैं।

इसलिए विवेकानन्द जैसा सुन्दर सलोना बंगाल का बालक केसरिया पाग और पीली झँगुलिया पहने अवध के आँगन में पाँव-पाँव चल रहा है तो क्या आश्चर्य है?

स्वामी जी ने स्वयं अपने बारे में कहा है, ''कन्याकुमारी की शिला पर ध्यानस्थ बैठने के बाद मैं स्वयं ही एक कन्डेंस्ड भारत बन गया था।''

उनका यह घनीभूत भारत हो जाने का अनुभव ही उनकी प्रेरणा का स्रोत बना। भारत के दीन-दुखियों की चिंता करने वाला वह तपस्वी साधक राम की भाँति आजीवन लोक हित में भ्रमण करता रहा। भारत का प्रतिनिधित्व करके राम की संस्कृति को विश्व में प्रसारित करने वाले स्वामी विवेकानन्द केवल बंगाल के एक आँगन के अपने नहीं, हर घर में अपने विचारों से उपस्थित रहने वाले सबके शुभचिन्तक हैं।

युगद्रष्टा, सत्यद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द का जीवन और संदेश पूरे विश्व के लिए प्रेरक बन गया। वे भारत भूमि पर अवतरित हुए, यहाँ साधना की, किन्तु उनके संदेशों ने विश्वव्यापी प्रसार पाया।

स्वामी जी के संदेश उस युग के लिए तो प्रासंगिक थे ही आज भी हैं और सदैव रहेंगे। वे विशाल वट वृक्ष के समान अपनी सुखद छाँह से सबको शीतल कर रहे हैं और वट वृक्ष की शाखाओं के समान उनके शिष्य अपने गुरु की गुरुभक्ति, सदाचरण तथा संदेशों का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के संदेशों को तथा उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए जो सद्प्रयास किया इसके लिए भारतीय लोकमानस में एक चेतना का उदय हुआ और भारतीय भाषाओं, बोलियों में उनकी यश: गाथा लोककंठ से फूट पड़ी।

लोकमानस ईश्वर और संत को एक मानता है। संतों के प्रति असीम श्रद्धा का भाव लोक साहित्य में स्थल-स्थल पर व्यक्त हुआ है। संतों ने सदैव जनमानस को प्रेरित किया, सत्य के प्रति जागरूक किया और मार्ग दिखाया।

स्वामी विवेकानन्द को योद्धा संन्यासी के रूप में जाना जाता है। मेरे मन में प्रश्न उठता था कि जो योद्धा है वह संत कैसे हो सकता है? संत तो बहुत ही शांत चित्त वाले और अंहिसा के पुजारी होते हैं।

मेरे पिता श्री देवनारायण सिंह जी एक कलाकार, साहित्यकार और आस्थावान अध्यापक थे। स्वामी विवेकानन्द के प्रति वे असीम श्रद्धा रखते थे। मैंने अपने पिता से पूछा कि स्वामी विवेकानन्द को योद्धा संन्यासी क्यों कहा जाता है?

पिताजी ने मुझे समझाया था कि वे असत्य, अन्याय और गुलामी के प्रति सदैव प्रतिरोध का भाव लोगों के मन में जगाते रहे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के पक्ष में विरोधियों के प्रश्नों का उत्तर इतने तर्कपूर्ण ढंग से दिया कि विरोधी परास्त हो गये। वे आँख मूँद कर किसी के विचारों पर विश्वास नहीं करते थे, यहाँ तक कि अपने गुरु के विचारों को भी प्रारम्भ में अपनी तर्क बुद्धि से कसकर, उसे सच पाकर ही उसके प्रति आस्था रख पाते थे। इसीलिए उन्हें योद्धा संन्यासी कहा जाता है। धर्मयोद्धा स्वामी विवेकानन्द का लोकमानस में गूँजता जयघोष सदियों तक लोक को ऊर्जा प्रदान करता रहेगा।

पिताजी ने स्वामी विवेकानन्द जी की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर मुझे मेरे जन्मदिन पर भेंट की थी। मेरे मन में बचपन से ही स्वामी विवेकानन्द की उस सौम्य छवि का प्रभाव रहा।

जब मैं बड़ी हुई और कविताएँ लिखना शुरू किया तो पिता जी ने कहा कि तुम अवधी में स्वामी जी पर लोकगीत रचो। मैंने एक सोहर लोकगीत में उनके जन्म का और एक अन्य लोक गीत में उनके सन्देश के प्रभाव का वर्णन किया। स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती पर ये गीत मेरे पिताजी गाँव वालों के सामने मुझसे गवाते थे। ये दोनों ही अवधी गीत प्रस्तुत कर रही हूँ। स्वामी विवेकानन्द के जन्म का सोहर,

ऊँच नगर कलकत्ता बसैं विस्वनाथ दत्त हो/रामा! उनकै धना भुवनेसरी देवी, सिउजी कै भगतिन हो।/नहाइ धोइ आवैं मंदिर सिउ जी के पूजैं हो,/सिउ जी! एक बालक कै साधि तौ, जौ मन पुरवउ हो।/सपने म आये सिउसंकर माई कोखि उतरे हो,/रामा! जनमे हैं सुन्दर लाल त सिउ अन्हुवारि लागै।/आवहु सखिया सहेलरि मंगल गावहु हो,/रामा! दत्त घर बजइ बधैया, उठन लागे सोहर हो।/सखियाँ! सिउ बाबा भये हैं दयाल त मोरी कोखि जनमें हो।/जागे हैं कुल कै भागि त घर उजियार भये,/सखियाँ! दुइ दुइ बहिनियन के भाई, त ललना जनम लिहे हो।/आवो न नगर कै धगरिन, लालन नार छीनहु हो,/धगरिन! जौन मँगन कर साधि, साधि हम पुरउब हो।/हम तौ लेबै रेसम सारी त बरहो अभूखन हो,/रानी। हम लेबै सोरहो सिंगार, ललन नार छिनबै हो।/आवौ न नगर कै नाउनि, ललन नहवावहु हो,/नाउनि! जौन मँगन कर साधि, साधि हम पुरउब हो।/हम लेबै पाँच जोड़ कपड़ा, आखत मा मुनरिया हो,/रानी! नउवा की खातिर लेबै घोड़ा, ललन जीयैं जुग जुग हो।/आवहु नगर के पंडित, पोथिया बिचारौ हो,/पंडित! ललना क नाव धरावौं, त भागि विचारहु हो।/भली ही घरी जनमें लालन, कुल कै नाव बढ़इहैं हो,/रानी! भागि म लिखा तपसी भेस, जगत जस गइहैं हो।/मानुष रूप धरि सिव आये, होइहैं नर इन्दर हो,/नर लीला करत अनंद पाइ, बनिहैं विवेकानन्द हो।/यतनी बचन सुनी मइया त जियरा बियाकुल हो,/सिउ जी! नोहरे कै पायों ललनवाँ, सरन तुहीं राखउ हो।

(कलकत्ता नामक ऊँचा (महान) नगर है जहाँ श्री विश्वनाथ दत्त का वास है। उनकी धन्या (पत्नी) भुवनेश्वरी देवी शिव जी की परम भक्त हैं। नहा-धोकर मंदिर आती हैं और शिव जी की पूजा करके प्रार्थना करती हैं- हे शिवजी! एक बालक की साध(कामना) है यदि आप मेरी मनोकामना पूरी करें तो आपकी बड़ी कृपा होगी। स्वप्न में शिवजी आये और माता की कोख में अवतरित हुए। माता भुवनेश्वरी की कोख से सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ, जिसका रूप शिव के समान था। श्री दत्त के घर बधाइयाँ बजने लगीं, सोहर गाये जाने लगे। हे सखियाँ! शिव बाबा दयाल हुए हैं और उन्होंने मेरी कोख से जन्म लिया है। हे सखियाँ! सहेलियाँ! आइये और मंगल गाइये। सखियाँ दो-दो बहनों के भाई के रूप में पुत्र ने जन्म लिया है। हे नगर की धगरिन! (दाई) आइये और मेरे लाल का नाल काटिये। दाई! जिस वस्तु की इच्छा हो आज माँग लीजिए मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगी। रानी! मैं तो रेशम की साड़ी लूँगी, बारहों प्रकार के आभूषण लूँगी और सोलह श्रृंगार की सामग्री लूँगी तब लाल का नाल काटूँगी। हे नगर की नाउनि! आइये और मेरे लाल को नहलाइये। नाउनि! जिस वस्तु की इच्छा हो आज माँग लो मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगी। रानी! मैं तो पाँच जोड़ा कपड़ा लूँगी, आखत(अक्षत) में मुंदरी आभूषण लूँगी और नाऊ के लिए घोड़ा लूँगी तब लाल को नहलाऊँगी। लाल युग-युग तक जीयें। आइये नगर के पंडित जी! आइये पोथी बिचारिये, पंडित जी मेरे लाल का नामकरण कीजिए और उसके भाग्य का विचार करिये। रानी! शुभ घड़ी में पुत्र का जन्म हुआ है कुल का नाम बढ़ायेंगे, किन्तु भाग्य में तपस्वी वेश लिखा है इनका यश पूरा संसार गायेगा। मनुष्य रूप धारण करके आये हैं मनुष्यों में इन्द्र होंगे नरेन्द्र नाम होगा। नर लीला करके आनन्द पायेंगे और तब विवेकानन्द हो जायेंगे। इतनी बात माँ ने सुनी तो मन व्याकुल हो उठा। शिवजी आपकी कृपा से दुर्लभ पुत्र मिला आप अपनी शरण में रखियेगा (रक्षा करते रहियेगा)।)

दूसरा गीत है,

जगावै आये स्वामी विवेकानन्द/जागा जागा हो भारत के जवान,/जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।/गुरु रामकृष्ण कै लइके सनेस, पसारै आये स्वामी विवेकानन्द।/ परमहंस गुरु ज्ञान ज्योति लै/जगावै आये अलख विवेकानन्द।/जागा जागा हो भारत के जवान, जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।/उठो-उठो वीर भारत के जवान,/जाय पावै न भारत कै सान,/गुरु रामकृष्ण कै लइके जोश,/ जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।/जागा जागा हो भारत के जवान,/जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।/संन्यासी कै चोला धारे,/देस विदेस म ज्ञान पसारे,/जागा जागा हो भारत के जवान,/जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।/गुरु रामकृष्ण और माता सारदा,/जीवन पुनीत रहा निस्छल सादा।/वनकै भक्ति ज्ञान भण्डार,/लुटावे आये स्वामी विवेकानन्द।/जागा जागा हो भारत के जवान,/जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।/ सत्य ज्ञान तपसी ब्रह्मचारी,/स्वाभिमान की लिहे चिन्हारी,/ देस भारत कै गौरव गान,/सुनावै आये स्वामी विवेकानन्द।/ जागा जागा हो भारत के जवान,/जगावै आये स्वामी विवेकानन्द।

(हे भारत के जवानो! जगो-जगो, जगाने आये स्वामी विवेकानन्द। अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस के संदेश का प्रसार करने आये स्वामी विवेकानन्द। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के ज्ञान की ज्योति लेकर अलख जगाने आये स्वामी विवेकानन्द। उठो-उठो भारत के जवान! न जाने पाये भारत की शान जगाने आये स्वामी विवेकानन्द। संन्यासी का चोला धारण कर देश-विदेश में ज्ञान का प्रसार कर, स्थान-स्थान पर गुरु धाम बनाने आये स्वामी विवेकानन्द। गुरु रामकृष्ण और माता सारदा जिनका जीवन पुनीत निश्छल और सादा था उनकी भक्ति और ज्ञान का भण्डार लुटाने आये स्वामी विवेकानन्द। सत्य ज्ञान से युक्त तपस्वी, ब्रह्मचारी, स्वाभिमान की पहचान लेकर देश-भक्ति भाव से भरे भारत के गौरव का गान करने आये स्वामी विवेकानन्द।)

इस सोहर गीत को कुछ ग्रामीण माताओं ने याद किया और पुत्र जन्म के अवसर पर गाया गया। दूसरा लोकगीत विद्यार्थियों ने याद किया और अन्त्याक्षरी आदि में इन पंक्तियों को प्रयोग करते हुए मैंने सुना।

स्वामी जी का महान चरित्र भारत के जन-जन के मन में श्रद्धा और भक्ति के साथ ही देशभक्ति और विवेक जागृत रखने का भाव जगाता है। आज देश को स्वामी विवेकानन्द जैसे तपस्वी ऋषियों और समय के अनुरूप संस्कृति तथा धर्म की व्याख्या करने वालों की आवश्यकता है। यह कार्य लोकसाहित्य के माध्यम से यदि किया जाय तो अधिक सहजता से ग्राह्य होगा।

आज जब समाज अनास्था और हताशा की स्थिति से गुजर रहा है तब स्वामी जी के अनमोल वचन हमें मार्ग दिखाते हैं। आज जब भारतीय संस्कृति की गुरु शिष्य परम्परा का लोप वैचारिक और भावानात्मक दृष्टि से होता जा रहा है तब उनका सदगुरु के प्रति यह कथन प्रकाश स्तम्भ बन गया है,

''सदगुरु! वह मेरा प्राण, वह मेरी आत्मा, गुरु है तो वह मालिक है, तो हृदयस्थ प्राणी भी वही और मेरे जन्म को सार्थक बनाने वाला भी वही। मैं ऊपर से तो ज्ञानी पर भीतर से भक्त हूँ, वह बाहर से भक्त और अन्दर से श्रेष्ठ ज्ञानी हैं।''

मेरे पतिदेव भी श्री रामकृष्ण परमहंस, माँ शारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द के प्रति असीम श्रद्धालु रहे। हम दोनों ने श्री रामकृष्ण मठ से दीक्षा ली हमारे दीक्षा गुरु स्वामी श्री आत्मास्थानन्द जी हैं।

स्वामी जी का अपने गुरु के प्रति श्रद्धा भाव और उनके विचारों को लोकहित में निरन्तर स्मरणीय बनाये रखने का कार्य हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ है। उनका जीवन आदर्श, उनकी साधना और उनका संदेश हमारे मन में बराबर अपनी संस्कृति, धर्म के प्रति निष्ठा का भाव जगाता रहता है।

किसी विदेशी ने कहा था कि भारत के हिन्दुओं ने अब तक किया ही क्या है? वे आज तक किसी अन्य देश पर विजय नहीं पा सके। उसका उत्तर स्वामी जी ने अत्यन्त शांत भाव से दिया था, ''भारत ने अकारण कभी किसी

दूसरे देश को कष्ट देने के लिए आक्रमण नहीं किया और न विजय की कामना की। यही भारत का गौरव है।''

उनका विचार है कि अच्छे आदमी विधि विधानों से ऊपर उठ जाते हैं और अपने आस-पास के लोगों को भी ऊपर उठाने में सहयोग करते हैं।

भारत का लोकमानस उनके इस विचार को अपने जीवन व्यवहार में जीता है। इसीलिए लोक ने भारत के मनीषियों के विचारों को अपनी आस्था और विश्वास में सँजो रखा है। लोक की यह आस्था उसकी विविध कलाओं के माध्यम से निरन्तर सहज रूप में अभिव्यक्ति पाती रही है।

लोकमानस अपने आराध्य को मिथक या इतिहास नहीं बनने देता उन्हें निरन्तर अपने बीच उपस्थित करता रहता है। इसीलिए विवेकानन्द भारत के हर आँगन में चरैवेति-चरैवेति का संदेश लेकर सतत् चल रहे हैं। उनका यह चलना निरन्तर बना रहे तो हमारी संस्कृति जड़ होने से बच जायेगी और स्वामी जी का संदेश भी मात्र पुस्तकीय ज्ञान न रहकर जीवन व्यवहार का अंग बनता रहेगा।

एक प्रेरक प्रसंग पढ़ा है,

ठाकुर जी ने नरेंद्र को निर्देश दिया था, ''मेरे नाम का कोई नया संप्रदाय स्थापित मत करना। पहले से ही यहाँ असंख्य धर्म-पंथ-संप्रदायों का मेला लगा हुआ है। उसमें एक और जोड़ने की जरूरत नहीं है। मुझे चाहिए, संप्रदायविहीनता। ईश्वर के नाम पर कट्टर धर्ममतों की, पत्थर की दीवारें खड़ी की गई हैं। मानव से मानव को दूर कर उनमें कट्टर वैर भाव पैदा किया गया है। वे दीवारें हमें गिरानी हैं। इसलिए मेरे नाम का एक नया संप्रदाय स्थापित कर तुम एक नई दीवार खड़ी मत करना।''

विवेकानंद गुरुदेव की उस चेतावनी को कभी नहीं भूले। इसलिए रामकृष्ण एक सर्वश्रेष्ठ अवतार थे, ऐसा उन्होंने कभी एक भी व्याख्यान में नहीं कहा। वे अपने शब्दों के जादू से ठाकुरजी को अवतार सहज सिद्ध कर सकते थे, पर एक बार अवतार की संकल्पना आते ही पूजा, संप्रदाय आदि प्रारंभ होना निश्चित था, इसे वे जानते थे। जो भक्त उन्हें पहले ही अवतार मानने लगे थे, उनका क्या? इस विषय में पत्र में स्वामीजी ने बड़े ही संतुलित विचार व्यक्त किए हैं,

''श्रीरामकृष्ण जी का अवतारत्व लोगों के सामने अट्टहासपूर्वक सिद्ध करने की कोशिश मत कीजिए। यहाँ परदेश में तो यह अ्टटहास जरा भी नहीं चलेगा। ठाकुरजी के चरित्र-लेखकों को ऐसी बातें लोगों के गले उतारने की आदत है, पर इसके कारण अपनी विचारधारा को संकुचित संप्रदाय का स्वरूप प्राप्त होगा। ऐसे प्रयत्न से आप लोग, जो उनके शिष्य हैं, अलिप्त रहिए। इसके साथ ही यदि श्रीरामकृष्ण जी को ईश्वर मानकर कोई उनकी पूजा-अर्चना कर रहा हो तो ध्यान रखिए, इससे कोई नुकसान नहीं होता। ऐसी प्रवृत्ति को न प्रोत्साहित करिए, न हतोत्साहित। साधारण लोग व्यक्तिपूजक होते हैं, पर उच्च श्रेणी के लोगों को तत्त्वों की जरूरत होती है। हम लोगों को दोनों चाहिए, फिर भी तत्त्व सार्वजनिक होते हैं, पर व्यक्ति नहीं। इसलिए रामकृष्णजी द्वारा बताए गए तत्त्वों के साथ जुड़े रहिए।''

(यह पत्र स्वामीजी ने न्यूयार्क से 14 अप्रैल 1896 को अपने गुरुबंधु त्रिगुणातीत जी को लिखा था)

(योद्धा संन्यासी विवेकानंद-वसंत पोद्दार, पृ. 224-225 से साभार)

स्वामी मुक्तिनाथानन्द जी ने लिखा है,

''श्रीरामकृष्ण परमहंस कलकत्ते के काशीपुर उद्यान में रह रहे थे। उनके गले की बीमारी में युवा भक्तों ने तो इस बीमारी को भी अपने लिए एक अवसर ही माना-सेवा का। इन्हीं युवा भक्तों में से एक थे-नरेन्द्र, जो कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इन्ही दिनों नरेन्द्रनाथ के मन में निर्विकल्प समाधि की आकांक्षा बड़ी तीव्र हो उठी। अपने हृदय का यह आवेग गोपनीय रख पाने में असमर्थ हो एक दिन उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव के समक्ष इसे निवेदित किया। ठाकुर ने उन्हें आश्वासन दिया कि उनका स्वास्थ्य सुधर जाने पर उसकी व्यवस्था हो जाएगी, परन्तु नरेन्द्र के लिए इतना

विलम्ब असह्य था। अन्त में ठाकुर ने कहा, ''तू क्या चाहता है, बोल ?'' नरेन्द्र ने कहा, ''मेरी इच्छा होती है कि शुकदेव के समान पाँच-छह दिन तक निरन्तर समाधि में डूबा रहूँ, बीच-बीच में देह की रक्षा के लिए थोड़ा सा नीचे उतर कर फिर समाधि में लीन हो जाया करूँ।''

यह सुनकर ठाकुर ने तीव्र तिरस्कार करते हुए कहा, ''छी:! छी:! तू इतना बड़ा आधार है और तेरे मुख से ऐसी बात! मैंने तो सोचा था कि तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा-तेरी छाया में हजारों लोग आश्रय पाएँगे-पर ऐसा न कर तू केवल अपनी ही मुक्ति चाहता है!''

झिड़की पाकर नरेन्द्र के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली-वे समझ गये कि श्रीरामकृष्ण का हृदय कितना विशाल है। परन्तु उनकी आकांक्षा अपूर्ण न रही।

कुछ ही दिन बाद एक दिन सन्ध्या के बाद उनका मन निर्विकल्प भूमि में आरूढ़ हुआ, शरीर स्थिर और स्तब्ध पड़ा रहा। गोपाल दादा (अद्वैतानन्द) इस जड़वत् अवस्था को देखकर घबरा गये तथा उन्होंने जल्दी जाकर ठाकुर को यह समाचार दिया, 'नरेन्द्र मर गया।'

चारों ओर हलचल मच गयी। परन्तु सर्वज्ञ ठाकुर ने कहा, ''अच्छा हुआ-उसे थोड़ी देर वैसे ही रहने दो। इसी के लिए तो वह मुझे तंग कर रहा था।''

रात का एक प्रहर बीत जाने पर नरेन्द्र सहजावस्था को प्राप्त हुए और ठाकुर के पास आए। ठाकुर ने कहा, ''क्यों? माँ ने तो आज तुझे सब कुछ दिखा दिया। परन्तु चाभी मेरे हाथ रही। अभी तुझे बहुत कार्य करना होगा। जब मेरा कार्य पूरा हो जाएगा, तो फिर ताला खोल दूँगा।''

श्रीगुरुदेव की यह वाणी स्वामी विवेकानन्द के जीवन में चमत्कार बनकर फलवती हुई। त्याग और सेवा का जो बीज उन्होंने अपने भीतर बोया, वह उनके जीवन-काल में ही वट-वृक्ष बनकर लोगों को शान्ति एवं शीतलता प्रदान करने लगा।

स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य में वेदान्त सोसायटी एवं भारत में रामकृष्ण मठ/रामकृष्ण मिशन की स्थापना के रूप में अपने विचार को जो आकार प्रदान किया है, वह निरन्तर गतिशील है। यह कोई स्थैतिक-जड़ विचार नहीं है। बल्कि यह लोगों की जड़ता-तन्द्रा को भगाने वाला भास्वर शक्ति-पुंज है।''

-युवा मानस के प्रणेता स्वामी विवेकानन्द: अभिनव चिन्तन (स्मारिका 2013) से।

आज जब पूरा विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है, नैतिक मूल्यों का महत्त्व कोई नहीं समझ रहा है चारों तरफ मार-काट मची है, तब स्वामी विवेकानन्द का स्मरण आशा की किरण बन सकता है। स्वामीजी का स्त्री जाति के प्रति आदर भाव स्मरण करके देश आज की असुरक्षित नारी के सम्मान की रक्षा का संकल्प ले सकता है। धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि जो राष्ट्र स्त्रियों का सम्मान नहीं करता वह कभी महान नहीं हो सकता। आज भारत महान कहा जाने वाला देश नारी के सम्मान की रक्षा के लिए चिन्ता तो करता है किन्तु रक्षा कर नहीं पा रहा है। जिस देश की नारी स्वयं को असुरक्षित अनुभव कर रही हो वह निर्भय होकर विवेकानन्द जैसी संतान का पालन-पोषण कैसे कर सकती है।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने उद्बोधन में कहा था, ''दुनिया के सबसे बहादुर और श्रेष्ठ लोगों को विशाल मानव समुदाय के कल्याण के लिए अपना बलिदान करना होगा। शाश्वत प्रेम और दया से सम्पन्न सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है। दुनिया के धर्म निष्प्राण गोरखधन्धे बन गये हैं। अत: आज दुनिया को आवश्यकता है चरित्र की, आज दुनिया को उन लोगों की आवश्यकता है जिनका जीवन नि:स्वार्थ प्रेम से परिपूर्ण हो।''

राष्ट्रीय नवजागरण का उद्घोष करने वाले, युवा शक्ति को उसकी शक्ति का बोध कराने वाले युग द्रष्टा स्वामी विवेकानन्द पर हमें गौरव है कि हम उनकी संतान हैं। उन्हें हमारा शत्-शत् नमन।

संपर्क : 'श्रीवत्स' 45 गोखले विहार मार्ग लखनऊ

दूरभाष : 09451329402, 0522-2206454

बृजेश सिंह

राष्ट्रीय साहित्य पर राष्ट्र संत विवेकानंद का प्रभाव

(भारत भारती व आहुति महाकाव्य के विशेष संदर्भ में)

युग चेतना के संवाहक के रूप में राष्ट्र-संत स्वामी विवेकानंद को जाना जाता है। स्वामी विवेकानंद की धमनियों में राष्ट्रीय भावधारा का प्रवाह इतना तीव्र था कि समूचे भारतवर्ष को आप्लावित किया। इस राष्ट्र-संत के रोम-रोम में राष्ट्र प्रेम उमड़ता दिखता था। भारतीय जनमानस को वैचारिक रूप से आप्लावित करने वाले प्रमुख प्रज्ञा पुरुषों गौतम बुद्ध, आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) आद्य गुरु शंकराचार्य, स्वामी दयानंद सरस्वती के सदृश स्वामी विवेकानंद ने वैचारिक क्रांति की अलख जगाकर सुसुप्त भारतीय चेतना को झकझोर दिया। उन्होंने न केवल सनातन धर्म को नये सदंर्भ में परिभाषित किया अपितु सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार कर प्रखर समाज-सुधारक का भी दायित्व निर्वहित किया। राष्ट्र-धर्म के उद्घोषक के रूप में स्वामी जी का अप्रतिम स्थान है। विवेकानंद जी की दृष्टि में उनका राष्ट्रधर्म जहाँ धर्मतंत्र में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना था वहीं अम्ब भारती की परतंत्रता की बेड़ियों को काटने, निद्रित भारतवासियों को जगाना था। 1857 की क्रांति की असफलता ने जनमानस को हताश कर दिया था। ऐसी स्थिति में आत्मस्वाभिमान जागरण हेतु वैचारिक क्रांति की परम आवश्यकता थी और उस दायित्व का निर्वहन राष्ट्रसंत विवेकानंद ने किया। स्वामी विवेकानंद एक ओर जहाँ प्रखर तत्त्ववेत्ता संन्यासी थे वहीं दूसरी ओर प्रखर स्वातंत्र्यचेता स्वतंत्रता संग्राम सेनानी का भी दायित्व निर्वहित किया। महर्षि दयानंद सदृश वे केवल संन्यासी ही नहीं अपितु राष्ट्रधर्म परिभाषित करने वाले प्रखर राष्ट्र-संत थे जिन्होंने युगचेतना के संवाहक का कर्त्तव्य निभाया। स्वामी जी ने सबसे अधिक साहित्य जगत को राष्ट्रीय चेतना प्रसार हेतु अनुप्राणित किया।

जिस समय भारतीय समाज की राष्ट्रीय चेतना संज्ञा शून्य हो दिशाहीन हो चली थी तथा परतंत्रता को नियति के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। आत्महीनता ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति पैदा कर दी थी, जिससे स्वामी विवेकानंद ने उबारा। आचार्य चाणक्य के समान राष्ट्रीय चेतना पर जमे गर्द को हटाया।

राष्ट्र-संत स्वामी विवेकानंद के विषय में अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि वे अध्यात्म तत्ववेता के साथ इतिहासवेता व समाजवेता के रूप में भी उतने ही प्रखर थे। उनका इतिहास ज्ञान चमत्कृत कर देता है, हर तरफ पैनी दृष्टि। प्रखर समाज सुधारक के रूप में उन्होंने दलितों के उद्धार का आव्हान किया। स्वामी जी का मानना था कि जब तक कमजोर वर्ग ऊपर नहीं उठेगा, तब तक भारत का कल्याण असंभव है। दलित विमर्श के लिए काम करने वाले प्राध्यापकों, साहित्यकारों को विवेकानंद को अवश्य याद करना चाहिए। आधुनिक मनीषियों में राष्ट्रसंत विवेकानंद के विचारों का भारतीय साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव दिखता है, वो चाहे आध्यात्मिक प्रक्षेत्र हो, सामाजिक या राष्ट्रीय भावधारा का प्रक्षेत्र हो, चहुँ ओर व्याप्त है। माँ भारती के प्रति स्वामी जी का तीव्रानुराग साहित्यकारों के लिए अभिप्रेरणा का विषय रहा है, इसी राष्ट्रीय भावना से अभिप्रेरित हो भारत भारती तथा वर्तमान में आहुति महाकाव्य का प्रणयन किया गया। प्रबुद्ध समीक्षकों ने भारत भारती व आहुति महाकाव्य को राष्ट्रीयता का जीवंत दस्तावेज निरूपित किया है। उनके अनुसार दोनों प्रबंध काव्यों में भारतवर्ष का पंच सहस्र वर्ष का आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक इतिहास समाहित है।

सन् 1893 में अमेरिका में आयोजित शिकागो विश्वधर्मपरिषद् में सनातन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में स्वामी विवेकानंद ने अपने व्याख्यान से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। वे भारतीय-दर्शन के एक ऐसे प्रवक्ता के रूप में उभरे जिन्होंने हिन्दू धर्म विषयक, विश्व समुदाय की अनेक भ्रांतियों का न केवल निराकरण किया अपितु 'वसुधैव कुटुम्बकम' सिद्धान्त-अनुपालक धर्म निरूपित किया। भगिनी निवेदिता (मार्गरेट नोबल) निर्दिष्ट करती हैं इस परिषद् की श्रेष्ठ आयोजना का ही यह फल था कि वह हिन्दुधर्म के सर्व संग्राहक विचारों की घोषणा करने के लिए एक अत्यंत उपयुक्त स्थल बन सकी थी। वहाँ पर संसार के अत्यन्त अनुदार तथा संकीर्ण धर्म-मतों का सम्मेलन, समानता तथा पारस्परिक श्रद्धा एवं स्नेह के आधार पर हुआ था। इन सब धर्म-मतों का भविष्य में फिर से इसी प्रकार इसी उद्देश्य से सम्मिलित होना सरल नहीं प्रतीत होता। संभव है कि शिकागो-धर्मपरिषद् बहुत समय तक इतिहास में अद्वितीय रहे। खैर, यही वातावरण तथा दृश्य था, जिसमें हिन्दूधर्म ने पाश्चात्य देशों को अपना सर्वप्रथम परिचय दिया।' (शिकागो वक्तृता पृष्ठ 5)

इस सत्य को स्वीकारना होगा कि शिकागो विश्वधर्म परिषद् के पश्चात् आज पर्यंत इस तरह का गरिमामय आयोजन नहीं हो सका। आज जेहाद के नाम पर जो मानवता को शर्मसार किया जा रहा है ऐसी परिस्थिति में स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता और भी प्रासंगिक व सामयिक हो जाती है। भगिनी निवेदिता का यह अभिमत आज भी उद्वेलित करता है।

शिकागो विश्व धर्मपरिषद् में स्वामी जी का 19 सितम्बर 1893 का दिया यह वक्तव्य विश्व का धरोहर बन चुका है जिसमें वे निर्दिष्ट करते हैं कि भारतीय दर्शन सबके उद्धार की बात करता है इस मायने में यह सबके लिए कल्याणकारी है। स्वामी विवेकानंद के वक्तव्य का अंश द्रष्टव्य है, ''जहाँ भी तुम्हें मानवसृष्टि को उन्नत बनाने वाली और पावन करने वाली अतिशय पवित्रता और असाधारण शक्ति दिखाई दे, तो जान लो कि वह मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुआ है।'' मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। (गीता,7/7) और इस शिक्षा का परिणाम क्या हुआ है? सारे संसार को मेरी यह चुनौती है कि वह समग्र संस्कृत दर्शनशास्त्र में मुझे एक ऐसी उक्ति तो दिखा दे, जिसमें यह बताया गया हो कि केवल हिन्दुओं का ही उद्धार होगा और दूसरों का नहीं! भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास का वचन है, ''हमारी जाति और सम्प्रदाय की सीमा के बाहर भी पूर्णत्व को पहुँचे हुए मनुष्य हैं'' अंतरा चापि तु तद्दृष्टेः (वेदान्त सूत्र, 3/4/36) (शिकागो वक्तृता पृष्ठ 26-27)

अर्वाचीन युग में सनातन धर्म की उदारता सार्वभौमिकता विषयक पहली बार अंतर्राष्ट्रीय मंच पर सप्रमाण उद्घोष करने वाले महामनीषी स्वामी विवेकानंद

भारतीय दर्शन की आत्मा के प्रतीक रूप में उभरे। विवेकानंद जी के विचारों का साहित्य पर अत्यंत गहन प्रभाव पड़ा तथा भारतीय दर्शन के ओझल अनेक विषयों का प्राक्कट्य साहित्य की विषयवस्तु बना।

स्वामी जी ने विश्वधर्म के रूप में जिस मत की परिकल्पना की थी, वह सबको हितकारी हो तथा मतभिन्नता के लिए अत्याचार की कोई जगह न हो। विश्व की समस्त संस्कृतियों को एकता-सूत्र में पिरोने की भावना हो। गायत्री परिवार के संस्थापक आचार्य श्रीराम शर्मा के साहित्य पर स्वामीजी का गहन प्रभाव परिलक्षित होता है। आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने विश्वधर्म का जो संविधान रेखांकित किया है निश्चित ही वह स्वामी विवेकानंद से अनुप्राणित है। शिकागो वक्तव्य में राष्ट्रसंत विवेकानंद का विश्वधर्म विषयक यह अभिकथन उल्लेखनीय है, ''वह विश्वधर्म ऐसा होगा कि उसमें अविश्वासियों पर अत्याचार करने या उनके प्रति असहिष्णुता प्रकट करने की नीति नहीं रहेगी; वह धर्म प्रत्येक स्त्री और पुरुष के ईश्वरीय स्वरूप को स्वीकार करेगा और उसका सम्पूर्ण बल मनुष्य-मात्र को अपनी सच्ची, ईश्वरीय प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केन्द्रित रहेगा।'' (शिकागो वक्तृता पृष्ठ 28)

सम्पूर्ण विश्व में मजहब के नाम पर जिस प्रकार कत्लेआम हो रहा है, ऐसी विकट अंधकार की परिस्थिति में स्वामी जी द्वारा परिभाषित विश्वधर्म ही आशा की किरण है। धर्मक्षेत्र की अहिष्णुता पर स्वामी विवेकानंद ने प्रहार करते हुए कहा है कि समन्वय के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। दूसरों के विनष्ट होने में अपने कल्याण की कामना करने वालों को निराशा ही हस्तगत होना है।

विश्व धर्मपरिषद के अंतिम दिवस निष्कर्ष व्याख्यान में स्वामी जी ने सारी दुनिया को बंधुत्व, समत्व का अमृत संदेश प्रदान किया। स्वामी जी का यह निष्कर्ष द्रष्टव्य है, ''अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएँगे और केवल उसका धर्म ही अपनी सर्वश्रेष्ठता के कारण जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्थल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाए देता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है, जब उस-जैसे लोगों के अड़ंगों के बावजूद भी प्रत्येक धर्म की पताका पर यह स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा, ''सहयोग न कि विरोध''; ''पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश''; ''समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह''। (शिकागो वक्तृता पृष्ठ 34)

स्वामी विवेकानंद का इस धरा धाम पर अवतरण मानव कल्याण हेतु ही हुआ। उनके साहित्य में मानवतावाद सारे वादों से ऊपर उठकर विश्व कल्याण के भाव हेतु अभिव्यंजित हुआ है।

शिकागो विश्व धर्मपरिषद् में सम्मिलित होने के पश्चात् स्वामी जी का प्रलंब काल तक अमेरिका में प्रवास रहा। उन्होंने अमेरिका प्रवास में वहाँ की सामाजिक स्थिति व भौतिक प्रगति का गहन अध्ययन किया एवं विकास के कारणों की तह में जाने का प्रयास किया। अमेरिका प्रवास के दौरान ईसाई मिशनरीज का भारत के प्रति दुष्प्रचार का कुचक्र भी देखा तथा निदान विषयक उपाय भी कालांतर में सुझाया।

भारतीय राष्ट्रीय-भावधारा साहित्य विवेकानंद पर केन्द्रित है, यह कथन अत्युक्ति नहीं होगी। विवेकानंद साहित्य जहाँ राष्ट्र चेतना को प्रसारित करता है वहीं मानवतावाद अर्थात् समन्वय स्थापित करने में सक्षम है। मैथिलीशरण गुप्त ने बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में राष्ट्रीय भाव से ओत-प्रोत भारत भारती प्रबंध काव्य की रचना की। भारत भारती के वर्तमान, अतीत, भविष्य खण्ड में जो विचार प्रकट हुए हैं निश्चित रूप से स्वामी विवेकानंद ने अनुप्राणित हैं। स्वामी विवेकानंद सदृश राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भारत को आर्यों का आदि देश मानकर लिखते हैं,

यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध इसके निवासी आर्य हैं।
विद्या कला-कौशल्य सबके प्रथम आचार्य हैं।।

-(भारत-भारती अतीत खण्ड-15 पृष्ठ 10)

स्वामी विवेकानंद ने आर्यों के विषय में निर्दिष्ट किया कि सारे भारत के मनुष्य आर्य हैं तथा विभेद के पाश्चात्य षडयंत्र से सजग रहने का संदेश दिया।

(विवेकानंद साहित्य संचयन पृष्ठ 127)

हिन्दू धर्म की आभ्यांतरिक शक्ति के विषय में स्वामी जी ने कहा है, ऐतिहासिक युग के पूर्व के केवल तीन ही धर्म आज संसार में विद्यमान हैं, हिन्दू-धर्म, पारसी-धर्म और यहुदी-धर्म। ये तीन धर्म अनेकानेक प्रचण्ड आघातों के पश्चात् भी लुप्त न होकर आज भी जीवित है, यह उनकी आन्तरिक शक्ति का प्रमाण है। (शिकागो वक्तृता पृष्ठ 11) लेकिन यहूदी और पारसी धर्म समय के थपेड़े नहीं सह सके फलस्वरूप सिमट कर रह गये। केवल हिन्दू धर्म ही है जो तमाम आघात सहकर भी गर्वोन्नत खड़ा है। बस कुछ कुरीतियों को दूर करने की महत आवश्यकता है।

अंग्रेजों की मैकाले पद्धति आर्यों को विदेशी बताती है जिसकी आज हमारे विद्यार्थियों को घुट्टी पढ़ाई जा रही है। भारत का इतिहास आक्रांताओं के दृष्टिकोण पर लिखा गया जिसका देश खामियाजा भुगत रहा है। स्वामी विवेकानंद व महर्षि दयानंद से अनुप्राणित होकर मैंने अपने आहुति महाकाव्य में इस संदर्भ को इन शब्दों में रेखांकित किया है,

एशिया खण्ड का अधिक भाग,
शुचि आर्यावर्त कहाता था।
तब यूरोपीय अनेक भाग,
इसके अंतर्गत आता था।।
पारस यूनान अरब देशों,
में भारत-ध्वज फहराता था।
पूरब से पश्चिम सागर तक,
संस्कृति परचम लहराता था।।

(आहुति महाकाव्य द्वितीय सर्ग स्वर्ण विहंग पृष्ठ 153)

आचार्य श्रीराम शर्मा, डॉ. अंबेडकर सहित अनेक मनीषियों ने भारत को आर्यों का आदि देश निर्दिष्ट किया है।

राष्ट्रसंत विवेकानंद के साहित्य या संदेश में मानवतावाद का सर्वत्र दिग्दर्शन होता है। उसी से प्रेरणा लेकर राष्ट्रकवि गुप्त लिखते हैं,

अहा वही उदार है परोपकार जो करे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

(मैथिलीशरण गुप्त -मंगलघट स्वर्गीय संगीत-3)

आहुति महाकाव्य में स्वामी विवेकानंद के मानवतावाद, समन्वयवाद का गहरा प्रभाव है,

अकाल में सहेजना सुबन्धु! सद्विचार को।
रचो चरित्र जो करे सुतीक्ष्ण बुद्धि-धार को।।
सदैव व्यष्टि में भरा समष्टि दिव्य भाव हो।
मनुष्य का मनुष्य से कुटुम्ब-सा लगाव हो।।
स्वराष्ट्र के सुभोपयोग लेखनी सुधार को।
रचो चरित्र जो करे सुतीक्ष्ण बुद्धि-धार को।।
कभी न भूलना महान वंश की परम्परा
स्वराष्ट्र के लिए समग्र ज्ञान की ऋतम्भरा।
कुबुद्धि पन्थ त्याग दो ग्रहो सुबुद्धि-सार को।
रचो चरित्र जो करे सुतीक्ष्ण बुद्धि-धार को।।

(आहुति महाकाव्य दशम सर्ग आह्वान पंच चामर छंद पृष्ठ 251)

राष्ट्रसंत विवेकानंद ने भारत को विश्वगुरु निर्दिष्ट किया है, जिसने युगों-युगों तक विश्व को ज्ञानामृत से तृप्त किया है। भारत भारती में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण भारत के प्राचीन गौरव इन शब्दों में याद करते हैं,

हम कौन थे क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु है न उनमें शिष्य की भी योग्यता।

(भारत भारती भविष्यत् खण्ड-4 पृष्ठ 159)

आहुति महाकाव्य के पदे-पदे भारत वर्ष की गौरव गरिमा का आख्यान है,

भारतीय सभ्यता की गौरवी कथा सुरम्य,
विश्व-रंगमंच पर अद्वितीय शान है।
आत्म-परमात्म तत्व गूढ़ एकमेव हुए,
दर्शन रहस्य का अनूठा संविधान है।

कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग संग-संग,
जग में न कोई ज्ञान गीता के समान है।
धारण विभूतियों को किया जो अनन्य बन,
उस नरश्रेष्ठ का न कोई उपमान है।।

(आहुति महाकाव्य प्रथम सर्ग चिन्तनालोक घनाक्षरी छंद-8 पृष्ठ 130)

मेरे ग्रंथ राष्ट्रीय विमर्श का एक दोहा प्रस्तुत है,

अभिगुंजित हो विश्व में, यह संदेश बृजेश।
रहा युगों तक विश्वगुरु, जय-जय भारतदेश।।

भारतवर्ष के अतीत-गौरव का वर्णन स्वामी विवेकानंद ने प्रशस्त रूप से किया है। परतंत्रता की बेड़ी में जकड़े इस देश के लिए इससे एक नूतन आशा का संचार हुआ। वैचारिक चिन्तन का यह प्रवाह न मात्र भारत अपितु संपूर्ण विश्व को आप्लावित किया। भारत के प्राचीन गौरव को रेखांकित करती भारत भारती की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं,

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ?
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

(भारत भारती अतीत् खण्ड पृष्ठ 10)

स्वामी विवेकानंद ने राष्ट्रभूमि को सर्वश्रेष्ठ माना है। अनेक मनीषियों ने उत्तर हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक के भू-भाग को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ निरूपित किया है। आहुति महाकाव्य में भी यही स्वर मुखरित होता है,

मंजुल हिमाद्रि का मुकुट शीर्ष राज रहा,
पद में कमल-सा खिला प्रसन्न लंका है।
शस्य सुषमावली सुअंक दिव्य शाटी लसी,
विन्ध्य-मेकलाद्रि बजा नाहद का डंका है।
स्वर्ग से भी श्रेष्ठ राष्ट्र-भूमि और राष्ट्र-वाणी,
इसमें बृजेश नहीं रंचमात्र शंका है।
भारतीय गौरव के साधक प्रताप रहे,
आहुति प्रबंध का हरेक छन्द टंका है।।

(आहुति महाकाव्य प्रथम सर्ग चिन्तनालोक घनाक्षरी छंद -1 पृष्ठ 129)

स्वामी विवेकानंद ने भारतीयों को अपने महान पूर्वजों के सदृश आचरण का आह्वान किया है, वही भाव भारत भारती में भी उद्यात रूप में प्रकट हुआ है,

सबकी नसों में पूर्वजों का पुण्य रक्त-प्रवाह हो,
गुणशील साहस बल तथा सबमें भरा उत्साह हो।
सबके हृदय में सर्वदा समवेदना की दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो, हमको तुम्हारी चाह हो।

(भारत भारती भविष्यत् खण्ड-4 पृष्ठ 159)

आहुति महाकाव्य में निष्कर्ष के रूप में जवान, किसान, पर्यावरण, नेतृत्व-चरित्र के संग स्वामी रामकृष्ण के शिष्य विवेकानंद का विवेक सबके हृदय में विद्यमान रहे, इसकी मंगल कामना की गई है,

'आहुति से प्रेरणा ले सीमा पे जवान डटें,
देश के विकास में किसान योगदान हो।
भूमि-नभ-जल-वायु-अग्नि अनुपात रहे,
कल-कारखाने में प्रशंसित विज्ञान हो।
नेता हों सुभाष की परम्परा के देशभक्त,
स्वामी रामकृष्ण का विवेक विद्यमान हो,
धर्मनिष्ठ धर्मप्राण जो सदैव था 'बृजेश',
एकमात्र स्वप्न है अखण्ड हिन्दुस्तान हो।।
रत्नगर्भा भूमि यह भारत की दिव्य अति,
यहाँ कभी वीरों का न होता अवसान है।
राष्ट्रभारती को शीश-पुष्प को चढ़ाने हेतु,
नैक वीर पुरुषों ने दिया बलिदान है।
राणा-शिवा छत्रसाल का अखण्ड योगदान,
राजपूती शान से ही भारतीय मान है।
पानीदार बानी की जवानी का निशान लिये,
तुलसी कबीर वाला यही हिन्दुस्तान है।।

(आहुति महाकाव्य सर्ग-12, निष्कर्ष घनाक्षरी छंद पृष्ठ 312)

राष्ट्र-संत स्वामी विवेकानंद व आचार्य श्रीराम शर्मा का मेरे चार दर्जन से अधिक ग्रंथों पर गहन प्रभाव

है, इस तथ्य को मैं सच्चे हृदय से स्वीकार करता हूँ। राष्ट्रीय भावधारा साहित्य अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी विवेकानंद का राष्ट्रीय साहित्य पर युगांतकारी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचित होता है।

स्वामी विवेकानंद से प्रेरणा लेकर मेरी साहित्य साधना आगे बढ़ी है। सन् 2003 में प्रकाशित मेरा काव्य संग्रह 'खिल खिल जाता मन का उजास' का अंश द्रष्टव्य है,

हमें विवेक नरेन्द्र सरिस दो,
विनयी विद्यावान बनाओ।
परमहंस चैतन्य पूर्ण हों,
अंतर विमल भाव सरसाओ।।
हे जगजननी ! मातु शारदे !!
मन क्रम वाणी में बस जाओ।।

(खिल खिल जाता मन का उजास काव्य संग्रह से छंद संख्या 16)

स्वामी विवेकानंद के विचारों से अनुप्राणित होकर मैंने एक नये रस राष्ट्ररस की कल्पना की है जो आहुति महाकाव्य के लेखन के दौरान 2010 में सामने आई। आमतौर पर साहित्य में वीररस को राष्ट्रीयता का बोधक माना जाता है परन्तु इस संदर्भ में मेरा अभिमत है कि वीरता या बहादुरी, देश का दुश्मन या राष्ट्रद्रोही भी दिखा सकता है, तो क्या उसकी वीरता राष्ट्रीयता का प्रतीक बन सकती है? राष्ट्रहित में किया गया बलिदान या समर्पित शौर्य अथवा पुरुषार्थ में ही राष्ट्ररस तत्व का अवगाहन किया जा सकता है।

पेयो राष्ट्ररसोनित्यं धेयः श्री परमेश्वरः।
श्रेयः सर्वस्य लोकस्य विद्धातु गणाधिपः।।
आहुतिर्नाम में भूयात सर्वसुखप्रदम्।
प्रीयतां राष्ट्रदेवश्च सपर्ययान याकृतः।।

(आहुति महाकाव्य मंगलाचरण से अनुष्टुप छंद पृष्ठ 125-126)

निश्चित रूप से मेरी राष्ट्ररस की परिकल्पना में स्वामी जी ही प्रेरणास्रोत हैं। भारतीय राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, वंशीधर शुक्ल, रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, श्रीकृष्ण सरल, रामचंद्र नारायण द्विवेदी (कवि प्रदीप) डॉ. जी.एस. शिवरुद्रप्पा सहित सभी राष्ट्रकवियों एवं अन्य साहित्यकारों पर स्वामी विवेकानंद के राष्ट्रीय विचारों का गहन प्रभाव पड़ा है।

भारत की गौरव-गरिमा का जो आख्यान विवेकानंद जी ने किया है उसका राष्ट्रकवि दिनकर पर भी गहन प्रभाव पड़ा है। अतीत का वैभव याद कराने वाली उनकी एक रचना द्रष्टव्य है,

पूछे सिकता-कण से हिमपति।
तेरा वह राजस्थान कहाँ?
वन-वन स्वतंत्रता-दीप लिए,
फिरने वाला बलवान कहाँ?
पूछ अवध से राम कहाँ?
वृन्दा! बोलो घनश्याम कहाँ?
ओ मगध कहाँ मेरा अशोक,
वह चंद्रगुप्त बलधाम कहाँ ?

मुझे यह लिखने में जरा भी संकोच नहीं है कि विवेकानंद जी के परवर्ती प्रत्येक प्रतिभावान भारतीय साहित्यकार पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा है। यदि कोई कहता है कि उस पर स्वामी जी का कोई प्रभाव नहीं है तो यह उसका खोखलापन ही प्रदर्शित करता है। राष्ट्रसंत विवेकानंद के साहित्य ने साहित्यकारों को राष्ट्रचिन्तन की धारा से जोड़ने का मार्गप्रशस्त किया है। शृंगार का आनंद तभी है जब देश में अमन, चैन, खुशहाली हो। देश पर जब संकट के बादल मँडरा रहें हों तो क्रांति गीत-गान ही राष्ट्रीय धर्म है।

आचार्य श्रीराम शर्मा के बृहद साहित्य पर स्वामी विवेकानंद का स्पष्ट प्रभाव है। आचार्य जी का साहित्य भी राष्ट्रसंत विवेकानंद की तरह अनेकता में एकता का उद्घोषक है। अनेकता में एकता प्रकृति का विधान है। स्वामी जी की तरह आचार्य जी का भी साहित्य सनातन धर्म की श्रेष्ठता तो स्वीकार करता है पर किसी की

अवमानना की कीमत पर नहीं। दोनों मनीषी वेदान्त के उद्घोषक हैं तदानुसार जीव को ईश्वर का अंश स्वीकार करते हैं। राष्ट्रसंत स्वामी विवेकानंद के कार्य को आचार्य श्रीराम शर्मा ने न केवल आगे बढ़ाया है अपितु उसे चरम तक पहुँचाया है। गायत्री परिवार देश-विदेश में भारतीय संस्कृति का परचम लहराने का युगांतरकारी कार्य संपादित किया है।

स्वामी विवेकानंद की तरह आचार्य श्रीराम शर्मा भी कुरीतियों पर प्रहार के साथ राष्ट्रधर्म के उद्घोषक के रूप में महामनीषी का दायित्व निर्वहित किया है। धर्मतंत्र के पाखण्ड पर दोनों युगपुरुषों द्वारा प्रचंड प्रहार किया गया है। राष्ट्रसंत विवेकानंद व आचार्य श्रीराम शर्मा भारतीय दर्शन के विश्व-प्रवक्ता के रूप में अपना नाम दर्ज कराया है। राष्ट्रसंत स्वामी विवेकानंद के साथ-साथ महर्षि दयानंद, महर्षि अरविन्द व आचार्य श्रीराम शर्मा का भारतीय साहित्य पर गहन प्रभाव पड़ा है।

स्वामी विवेकानंद का सबसे बड़ा योगदान है कि वे परतंत्र भारत की मानसिक बेड़ियों को काटने में सफल रहे तथा स्वातंत्र्य समर के वैचारिक महायोद्धा का दायित्व निर्वहित किया। स्वामी जी का गाँधी दर्शन और क्रांतिकारी धारा दोनों पर ही समान प्रभाव पड़ा। महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, विपिन चंद्रपाल, लाला लाजपत राय, चंद्रशेखर आजाद, बिस्मिल इत्यादि सभी धारा के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सुनिश्चित ही स्वामी विवेकानंद से अनुप्राणित रहे।

निष्कर्षत: राष्ट्रसंत स्वामी विवेकानंद का आध्यात्मिक चिंतन पर ही नहीं अपितु राष्ट्रीय-भावधारा-साहित्य एवं स्वतंत्रता संग्राम पर भी युगान्तरकारी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचित होता है।

संपर्क : एल-3, विद्यानगर, बिलासपुर (छ.ग.) 495001
मो. 919300 310578

उनके (स्वामी विवेकानंद) शब्द महान संगीत हैं, बीथोवन शैली के टुकड़े हैं, हैंडल के समवेत गान के छन्द प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत स्पर्श के से आघात की सिहरन का अनुभव किए बिना मैं उनके इन वचनों का स्पर्श नहीं कर सकता, जो तीस वर्ष की दूरी पर पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं। और जब वे नायक के मुख से ज्वलन्त शब्दों में निकले होंगे तब तो न जाने कैसे आघात एवं आवेश पैदा हुए होंगे।

-रोमाँ रोलाँ

डॉ.के.एल.जैन

विवेकानंद जी के विचारों की प्रासंगिकता

आज के इस विज्ञान और टेक्नोलॉजी के युग में, सूचना क्रांति के सर्वव्यापी और सर्वग्रासी प्रवाह में बहे जा रहे समाज में उथल-पुथल है। दिग्भ्रमित और आत्मकेन्द्रित होते जा रहे तथा भौतिकता की चमक-दमक में खोते जा रहे युवाओं के हृदय में अशांति है। आज भी देश में तमाम सकारात्क प्रयासों के बावजूद अनेक समस्याएँ मौजूद हैं। अमीरी के स्वर्ग और गरीबी के नर्क दोनों भारत वर्ष में मौजूद हैं। ऐसे समय में जब हम इन समस्याओं का निदान ढूँढ़ना चाहते हैं तो हमारी दृष्टि जाती है, स्वामी विवेकानंद जी के चिंतन और उनके साहित्य पर।

स्वामी विवेकानंद जी के चिंतन में, हमारे भौतिक जीवन की समस्याओं और आध्यात्मिक जीवन के प्रश्नों का हल बहुत वैज्ञानिक और तार्किक रूप में सहज-सरल भाषा में उपलब्ध है। स्वामी विवेकानंद ने वेदों के गूढ़ और गंभीर चिंतन को व्यावहारिक जीवन से जोड़ा हमारे ऋषि-मुनियों ने जो ज्ञान वर्षों की कठिन साधना और तप से प्राप्त किया था उसे उन्होंने व्यावहारिक जीवन से जोड़कर ऋजुता प्रदान की। मद्रास में अपने अंतिम व्याख्यान में एक विशाल सभामंडप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख स्वामी जी ने कहा था कि 'यह वही भूमि है, जहाँ दूसरे देशों के बहुत पहले तत्वज्ञान ने आकर अपनी निवास भूमि बनाई थी। यहीं सबसे पहले मनुष्य, प्रकृति तथा अन्तर्जगत के रहस्योद्घाटन के अंकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगप्रपंच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले-पहले उद्भव यहीं हुआ था। इस देश के दार्शनिक तत्वों की धारा ने समग्र संसार को बार-बार प्लावित किया था। विवेकानंद ने अपने इसी भाषण में कहा था, ''तुम्हें पूर्व गौरव स्मरण कराने का उद्देश्य यही है कि अपने वर्तमान को भी तुम अतीत के समान गौरवशाली बनाओ। विवेकानंद ने यह भी उल्लेख किया कि मुझसे लोग कहते हैं कि अतीत की ओर दृष्टि डालने से विफल मन की अवनति ही होती है और इसका फल नहीं मिलता, अत: हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिये। किन्तु इसके ठीक विपरीत मैं कहता हूँ कि अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है अत: जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो। पीछे जो ज्ञान का चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकर उसका जल पीओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्जवलतर महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान थे यह हमें याद रखना होगा।'' (स्वामी विवेकानंद भारतीय व्याख्यान: अनुवादक सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, रामकृष्णमठ नागपुर पृ.222)

स्वामी विवेकानंद के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वे हमारे गौरवशाली अतीत का स्मरण हमें बार-

बार कराते हैं और ऐसा इसलिये करते हैं क्योंकि अतीत ही वर्तमान का दिग्दर्शक होता है और भविष्य का दिशा निर्देशक होता है। अब प्रश्न यह भी उठ सकता है कि अतीत के मध्यकाल पर हम दृष्टिपात करें तो बहुत से लोग कह सकते हैं कि यह तो हमारी अवनति और दुर्दशा का युग था। स्वामी जी ने अपने इसी व्याख्यान में आगे इस प्रश्न का उत्तर एक सरल उदाहरण से देते हुये कहा कि ऐसे युगों का होना हमारे सीखने के लिये आवश्यक था। किसी विशाल वृक्ष से एक सुंदर पका हुआ फल पैदा हुआ, फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सड़ा। इस विनाश से जो अंकुर उगा, संभव है वह पहले वृक्ष से अधिक विशालकाय और फलदार वृक्ष हो जाये। अर्थात स्वामी विवेकानंद का कहना है कि हमारे वैदिक कालीन सनातन मूल्यों पर हमें गौरव करना हैं, उन्हें आचरण में ढालना है और मध्यकालीन इतिहास से सीख लेकर उन भूलों की पुनरावृत्ति नहीं करनी है जिन्होंने हमें पराधीन बनाकर पददलित किया, यह कालखंड आज हमारे सीखने का काल है। अतीत गौरव और मध्यकाल की सीखों को आत्मसात कर हमें अपने वर्तमान को उज्ज्वल और भविष्य को स्वर्णिम बनाना है ताकि हमारी आने वाली पीढ़ी को हम एक सशक्त और सांस्कृतिक तत्वों से भरपूर विरासत सौंप सकें।

आज हम जाति, वर्ग, धर्म, शिक्षा, रंग और अर्थ के आधार पर बँटे हुए हैं। ये विभेद हमारे सभी प्रकार के उन्नयन में बाधक हैं। स्वामी विवेकानंद ने इस विभेदीकरण का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने अथर्ववेद की संहिता का उल्लेख करते हुए कहा कि,

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संज्ञानाना उपासते।(6/64/1)

अर्थात् तुम सब एक हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योंकि प्राचीनकाल में एक मन होने के कारण ही देवताओं ने सम्मान और पूजा पाई है। यही एकता और एक मन हो जाना समाज गठन का रहस्य है। यदि हम पारस्परिक विरोधाभास को बढ़ाएँगे तो उस शक्ति-संग्रह से दूर हटते जाएँगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। आज भी हमें एक मन होने की आवश्यकता है ताकि भारत की अखंडता बनी रहे।

स्वामी विवेकानंद ने तत्कालीन भारत की सामाजिक स्थिति का भी गहन अध्ययन किया था। विदेशों में रहकर भी वे सदैव अपने देशवासियों की दुर्दशा से चिंतित रहते थे और उनके उत्थान के लिये प्रयत्नशील रहते थे। 23 जून 1894 को मैसूर के महाराजा को शिकागो से लिखे पत्र में स्वामी विवेकानंद ने लिखा था, ''भारत वर्ष में सभी अनर्थों की जड़ है, गरीबी। पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे पशु हैं, उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीबों को ऊँचा उठाना अपेक्षाकृत अधिक सरल है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के प्रति हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है, उनको शिक्षा देना, उन्हें दिखाना कि इस संसार में तुम भी मनुष्य हो, तुम लोग भी प्रयत्न करने पर अपनी उन्नति कर सकते हो। अभी वे लोग यह भाव खो बैठे हैं। हमारा कर्तव्य है, उनमें भावों का संचार कर देना बाकी वे स्वयं कर लेंगे। भारत में मैं इसे कार्यरूप में परिणत न कर सका। विवेकानंद का मानना था कि निःशुल्क पाठशाला खुलवा देने से भी गरीब शिक्षा प्राप्त नहीं करेंगे क्योंकि बच्चे अपने माता-पिता के साथ खेतों में काम करेंगे और रोजी रोटी कमाने का प्रयत्न करेंगे। ऐसी स्थिति में हमें उनके पास जाकर शिक्षा देनी होगी। इस संबंध में स्वामी विवेकानंद ने मैसूर महाराजा को बड़ा व्यावहारिक परामर्श दिया था। उन्होंने यह जिम्मा हमारे देश के हजारों एकनिष्ठ त्यागी साधुओं को सौंपा था। वे लिखते हैं, ''एकनिष्ठ और त्यागी साधु जो गाँव-गाँव धर्म की शिक्षा देते हैं यदि उनमें से कुछ लोगों को ऐहिक विषयों में प्रशिक्षित कर दिया जाये, तो गाँव-गाँव, दरवाजे दरवाजे जाकर केवल धर्म शिक्षा ही नहीं देंगे बल्कि ऐहिक शिक्षा भी देंगे। कल्पना कीजिए कि इनमें से एक दो शाम को एक मैजिक लैन्टर्न, एक ग्लोब और कुछ नक्शे आदि लेकर अनपढ़ लोगों को बहुत कुछ गणित ज्योतिष और भूगोल सिखा सकते हैं। कहानियों के माध्यम से वे गरीबों को विभिन्न राष्ट्रों के समाचार दे सकते हैं। इस प्रकार बातचीत से वे बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।'' स्वामी विवेकानंद उस किताबी ज्ञान को व्यर्थ मानते थे जो व्यक्ति को परिष्कृत और संस्कारित न कर सके। स्वामी जी वेदांत दर्शन के अनुसार

मनुष्य को जन्म से ही पूर्ण मानते थे और इस पूर्णता की अभिव्यक्ति को ही शिक्षा कहते थे। स्वामी जी मानते थे कि ज्ञान कोई बाहर की वस्तु नहीं है, ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है। मनुष्य इस ज्ञान को अनावृत या प्रकट करता है। लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ज्ञान मनुष्य के मन में है। स्वामी विवेकानंद ऐसी शिक्षा चाहते थे जिससे स्वयं का विकास हो। स्वामी विवेकानंद बौद्धिक विकास के साथ आत्मिक विकास के पक्षपाती थे। बौद्धिक विकास आवश्यक है लेकिन जब कभी मस्तिश्क और हृदय में द्वन्द उत्पन्न हो तो हमें हृदय का अनुसरण करना चाहिये। हृदय ही हमें उस उच्चतम राज्य तक ले जाता है, जहाँ बुद्धि कभी नहीं पहुँच सकती। वह बुद्धि के परे उस क्षेत्र में जा पहुँचता है जिसे अन्त:प्रेरणा कहते हैं। अतएव सदैव हृदय का ही संस्कार करो। हृदय से ही ईश्वर बोला करता है।'' स्वामी विवेकानंद के इन विचारों की वर्तमान में बहुत आवश्यकता है क्योंकि आज बुद्धि ने हमारे हृदय पक्ष के ऊपर अपना अधिकार जमा लिया है। हमारी संवेदनाएँ शुष्क हो रही हैं और हम आत्मकेन्द्रित होते जा रहे हैं। कामायनी में जयशंकर प्रसाद ने भी मनु को शाप देते काम के मुख से यही कहलाया है,

वह प्रेम न रह जाये पुनीत/अपने स्वार्थों से आवृत हो मंगल-रहस्य सकुचे सभीत।

हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता, पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता-पड़ता।

स्वामी जी ने भी हृदय की जड़ता खत्म करने का संदेश दिया था। वे भावनाओं से आपूरित संवेदनशील हृदय के पक्षपाती थे क्योंकि संवेदनशील मनुष्य ही मानवता का कल्याण कर सकता है।

स्वामीजी बौद्धिक विकास के लिये मौलिक चिंतन को प्रोत्साहन देते थे। मौलिक चिंतन के अभाव को वे भारत की तत्कालीन समस्याओं का मूल कारण मानते थे। आज हमारी शिक्षा व्यवस्था में भी मौलिक चिंतन का अभाव देखा जा रहा है। यही कारण है कि मौलिक और चिंतन परक पुस्तकें कम ही प्रकाशित हो रही हैं। अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को हमें अपने विवेकपूर्ण चिंतन से और समृद्ध कर भावनाओं के रसायन से सिक्त कर जनकल्याण और समाज कल्याण में लगाना होगा तभी शिक्षा की सार्थकता होगी। स्वामी विवेकानंद शिक्षा के लिये एकाग्रता, ब्रह्मचर्य का पालन, धर्म में आस्था, आध्यात्मिक विकास, चरित्र निर्माण, आत्मविश्वास और अनुशासन अनिवार्य तत्व मानते थे। गुरु शिष्य के संबंधों पर विचार करते हुए उन्होंने गुरु को ज्ञान पिपासु की आँखे खोलने वाला कहा है। सच्चा गुरु वह है जो समय-समय पर आध्यात्मिक शक्ति के भंडार के रूप में अवतीर्ण होता है और गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा उस शक्ति को पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित करता है। शिष्य, अनुशासित, विनयी, अध्ययनशील, परिश्रमी, मन और वाणी से पवित्र तथा गुरु के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाला होना चाहिए।

स्वामी विवेकानंद प्रखर राष्ट्रवादी थे लेकिन उनका राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं था। उनका राष्ट्रवाद ऐसा था जो दूसरे राष्ट्रों को भी प्रेरणा दे सके। वे स्वाधीनता को विकास की पहली शर्त मानते थे। जाति-पाँति के विरोधी थे। स्वामी विवेकानंद कहते थे कि सभी उन्नतिशील राष्ट्रों ने स्त्रियों को समुचित सम्मान देकर ही महानता प्राप्त की है। जो राष्ट्र स्त्रियों का आदर नहीं करते वे कभी बड़े नहीं हो सकते।

निष्कर्षत: स्वामी विवेकानंद के विचार वर्तमान समय में बहुत प्रासंगिक हैं। उन्होंने भारतीय जीवन मूल्यों को विश्व में पहुँचाने का प्रयास किया। भारतीय वेदांत और आध्यात्मिकता को सरलीकृत कर जन-जन तक पहुँचाया। हमारी संस्कृति और सनातन परंपरा को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। स्वामी विवेकानंद आधुनिक भारत के निर्माता थे। उनके चिंतन में संपूर्ण मानव कल्याण के और विश्व निर्माण और सामरस्य के बीज छिपे हैं। स्वामी विवेकानंद की ज्ञान आलोकित मनीषा में हम वर्तमान समय की अनेक समस्याओं के हल खोज सकते हैं।

संपर्क : अतिरिक्त संचालक, उच्च शिक्षा विभाग, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. बीना बुदकी

विवेकानन्द का कृतित्व एवं प्रासंगिकता

स्वामी विवेकानन्द वैदिक धर्म एवं संस्कृति के समस्त स्वरूपों के उज्ज्वल प्रतीक थे, यह उन्हीं की प्रतिभा थी जिससे वेदान्त का प्रतिपादन इस रूप में हुआ कि वह वर्तमान युग के मनुष्य द्वारा हृदयंगम किया जा सके। केवल भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व स्वामी जी के स्फूर्तिदायी एवं नियामक विचारों द्वारा प्रचुर मात्रा में लाभान्वित हुआ है। स्वामी जी की वे विचारधाराएँ मानव के समस्त कार्यक्षेत्रों में यथार्थत: सहायक हैं, आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य के सम्मुख अनेकानेक समस्याएँ उपस्थित हुई हैं, स्वामी जी इन सभी समस्याओं से परिचित थे और उन्हें यथार्थ रूप से समझ भी सके थे, फलत: उन सब के लिए उन्होंने उपाय तथा मार्ग भी प्रर्दशित किये हैं और ये सारे मार्ग उन चिरन्तन सत्यों पर आधारित हैं जो वेदान्त तथा विश्व के अन्य महान् धर्मों में निहित हैं यथार्थ धर्म की शिक्षा देने के अतिरिक्त उन्होंने समग्र विश्व को जनताजनार्दन की सेवा, पूजा के भाव से करने का भी पाठ पढ़ाया है, स्वामी जी ने हमें मानव निर्माणकारी धर्म एवं मानव निर्माण कारी दर्शन की शिक्षा दी जो हमारे राष्ट्र निर्माण के लिए अनुपम देन है, इन सब दृष्टिकोणों से स्वामी विवेकानन्द का केवल भारत ही नहीं वरन् विश्व के धार्मिक एवं सांस्कृतिक साहित्य इतिहास में बहुत उच्च स्थान है।

विवेकानन्द में प्रचलित दर्शन का नया विन्यास देखा जाता है और उसे नव्यवेदांत कहकर सम्बोधित किया जाता है, कृष्ण भक्ति काव्य में भगवत प्रेम के संदर्भ में गोपी भाव की चर्चा है जिसे प्रपत्रि दर्शन अथवा सम्पूर्ण समर्पण भाव भी कहा गया, विवेकानन्द की मौलिक व्याख्या है, 'जिस साहित्यकार ने गोपियों के इस अद्‌भुत प्रेम का वर्णन किया है वह आजन्म, पवित्र, नित्य, शुद्ध न्यासपुत्र शुकदेव है, जब तक हृदय में स्वार्थपरता रहेगी तब तक भगवत प्रेम असंभव है।' वे भारतीय इतिहास के शोकजनक अध्याय का उल्लेख करते हैं जब कई प्रकार के सम्प्रदाय निर्मित्त हुए और

सत्यान्वेषण की। शिथिल हो गई, तब उन्होंने भारतीय साहित्य सांस्कृतिक परम्परा को बताते हुए कहा कि ''यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत-शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है, यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढ़तर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनंत और अमृत स्वरूप है वैसे ही हमारी भारती भूमि का जीवन है और हम इसी देश की संतान है।'' यह वर्णत्तव्य इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि दार्शनिक वेदांती भाव आधुनिक राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्ध हो जाता है, दर्शन वायवी... नहीं उसके मूल में जीवन जगत' की चिंताएँ किसी रूप में विद्यमान है, यह कोरा वाक्-विलास अथवा बौद्धिक तार्किक व्यायाम नहीं है जो प्रायः खण्डन मंडन पर आश्रित रहता है अथवा साधारण भाववाद पर विवेकानंद की प्रासंगिकता इस रूप में है कि वह अल्प समय में ही भारत के अतीत को गहराई से मापते हैं, वर्तमान चिंताजनक परिदृश्य पर उनकी दृष्टि आती है और वे चिंताकुल होते हैं, राजनीति उनका कार्यक्षेत्र नहीं, इसलिए वे तात्कालिक समाधान की तलाश नहीं करते, इसके विपरीत वे मूल कारकों को खोजते है, और उस अंधकार से संघर्ष का आग्रह करते हैं जिससे इतिहास के ये दुर्भाग्यपूर्ण क्षण आए हैं। कई बार उनके विचार क्रांतिकारी प्रतीत होते हैं, वे कहते हैं, 'हमें निर्भीक साहसी मनुष्यों का ही प्रयोजन है, हमें खून में तेजी और स्नयुयों में बल की आवश्यकता है, लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु चाहिए, न कि दुर्बलता लाने वाले वाहियात विचार।' इस प्रकार मनीषी के चिंतन में भारतीय समाज उपस्थित है।

आधुनिक भारतीय नवजागरण में विवेकानन्द का विशिष्ट महत्व है, उन्होंने वेदान्त को अपने चिंतन का मूलाधार बनाया पर अपने समय संदर्भ में उसकी नई व्याख्या की। उनका विचार है कि यदि समाज की कोई प्रशस्त वैचारिक पीठिका नहीं होगी तो वह नैतिक दृष्टि से बहुत समृद्ध नहीं होगा और शीघ्र लड़खड़ा जाएगा, समय के साथ अग्रसर होने का अर्थ अनुगमन भाव नहीं है पर विचारों की जीवंतता के साथ नया परिचय है, विवेकानन्द सत्कर्म का आग्रह करते हैं और गीता को उद्धृत करते हैं। उन्होंने कर्मठता का जो संदेश युवा पीढ़ी को दिया उसका महत्व ऐतिहासिक है। एक स्थान पर वह कहते हैं, ''अन्य देवगण सो रहे हैं इस समय तुम्हारा एकमात्र देवता है, तुम्हारा राष्ट्र। एक वैरान ने राष्ट्रीय भावना का प्रचार-प्रसार अपने ढंग से किया जिससे नई चेतना का उदय हुआ, बंकिम के उपन्यास यही प्रयत्न करते है, 'रवीन्द्रनाथ और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत तक विवेकानन्द के विचारों की छाया देखी जा सकती है। विवेकानन्द की चिंता में भारत है जो कभी अपने ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था पर जिसकी कूपमंदूकता ने उसे राजनीतिक स्तर पर पराजित किया जिन सकीर्णताओं ने देश को दुर्दशा के द्वार पर पहुँचाया, उनसे मुक्ति के बिना समाज का उद्धार सम्भव नहीं है, प्राचीन इतिहास से चलकर वे वर्तमान समय तक आते हैं और इस पर विचार करते हैं कि आखिर हमारा प्रस्तुत कार्य क्या है? उनका आह्वान है, 'समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो।' राष्ट्र में एक नया आत्मविश्वास जाग्रत करने का कार्य जिन मनीषियों ने किया उसमें विवेकानन्द अप्रतिम हैं, क्योंकि उनका आधार दार्शनिक, वैचारिक है, जिसे समाज का मेरुदंड कहा जाता है।

आधुनिक भारत में युवा पुरुष के रूप में विवेकानन्द वेदान्त और पाश्चात्य शिक्षा दोनों को साथ रखकर शिक्षा को आगे की ओर लाना चाहते थे। शिक्षा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण उनका था। स्वामी विवेकानन्द पुरनरुत्थान और शिक्षा के द्वारा जागरूकता लाना, मानव की सेवा करना आदि था। शिक्षा से अगर सामाजिक परिवर्तन आता है तो स्वामी जी के शिक्षा सम्बन्धी

चिंतक रवीन्द्र नाथ टैगोर का कहना था, ''भारत को समझना है तो उसे स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन समझना होगा। स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिंतन में शुद्धता तथा अपने शैक्षिक चिंतन के आधार पर भारतीय संस्कृति की ख्याति यूरोप और अमेरिका में फैलाने में सफल हुए थे। स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों में अत्यंत गहनता अब तक अमूल्य हीरों की तरह उपलब्ध है।''

विवेकानन्द का शैक्षिक चिंतन व्यापक है। जैसे वे धार्मिक या भारतीय शिक्षा और पाश्चात्य् शिक्षा दोनों का समन्वय करना चाहते थे, शिक्षा को व्यवसायमूलक जीवन मूल्यों से परिपूर्ण विचारोत्तेजक और मानव निमित्त देने के पक्ष में थे। सामाजिक निरकुंशता और अंध विश्वास को दूर करने हेतु कला, विज्ञान, साहित्य और संस्कृति के लिए अवसर प्रदान करना, स्वामी विवेकानन्द ने भौतिकवादी पाश्चात्य् समाज में आध्यात्मिक भोग और वेदान्त की शिक्षा का प्रभाव डाला। वे उन भारतीय चिंतकों में से हैं जिन्होंने वेदान्त की परिभाषा की। वह कहते थे कि आधुनिकीकरण की होड़ का आधार भी भारतीय संस्कृति, साहित्य होना चाहिए।

सम्पर्क : 721/722, इजमीमा काम्पलेक्स इन्टरफेस,
मलाड वेस्ट, बम्बई- 400064
मो. 07208339786/9953390488

पता नहीं आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था। स्वामीजी ने जो कुछ लिखा या कहा था, वह हमारे हित में है और वह आने वाले लम्बे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा। वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में वे भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के महान संस्थापकों में से एक थे।

-पं. जवाहरलाल नेहरू

डॉ. सुशील त्रिवेदी

स्वामी विवेकानंद और हिन्दी नवजागरण

भारत के सामाजिक और आध्यात्मिक इतिहास में युगान्तर लाने के लिए अनेक ऋषियों, संतों और जननायकों के योगदान को स्मरण किया जाता है। ऐसे युगान्तरकारी इतिहास पुरुषों में स्वामी विवेकानन्द का नाम शीर्ष स्थानीय है। उन्नीसवीं शताब्दी में उन्होंने अपने जीवन के अल्प काल में भारत और विश्व को जो संदेश दिया था वह न केवल धर्म और दर्शन के क्षेत्र में सर्वमान्य हुआ बल्कि अन्य सामाजिक क्षेत्रों में भी परिवर्तनकारी सिद्धांत सिद्ध हुआ है।

भारत के महान नायक नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने कहा है, ''स्वामी विवेकानन्द पूर्ण विकसित पौरुष से सम्पन्न थे, उनके रग-रग में योद्धापन भरा था। वे शक्ति के उपासक थे और यही कारण है कि उन्होंने अपने देशवासियों का उत्थान करने के लिए वेदान्त की एक नवीन व्यावहारिक व्याख्या दी थी।... वे विश्व के प्रथम ऐसे सर्वोच्च स्तर के योगी थे जिन्होंने ब्रह्म-साक्षात्कार करने के बाद भी स्वदेश एवं मानवता के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया था।''

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद भारत में ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन ने पुराने धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। ब्राह्म समाज ने बंगाल में अंध श्रद्धा और रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष किया किन्तु ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा भी की। प्रार्थना समाज ने महाराष्ट्र में भी रूढ़ियों और अंधविश्वास के विरुद्ध संघर्ष किया किन्तु वह पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित था। गुजरात, उत्तरप्रदेश और पंजाब में आर्य समाज का प्रभाव था। उन्होंने वेद को आधार मानकर नई चेतना फैलाई। आर्य समाज का प्रसार मध्यवर्ग के बीच अधिक हुआ। इसके साथ ही तमिलनाडु में एनी बेसेंट ने थियॉसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना की और हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता पर जोर दिया। बंगाल में ही रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद ने की थी। सन् 1896 में विवेकानन्द विश्वधर्म संसद में सम्मिलित होने के लिए शिकागो गये। उनकी वक्तृता से प्रभावित होकर ''न्यूयॉर्क हेराल्स ट्रिब्यून'' ने लिखा था, ''विश्वधर्म संसद में विवेकानन्द सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने

के बाद ऐसा लगता था कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।''

विवेकानन्द का मुख्य प्रयोजन रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचार करना था, किन्तु उसके साथ-साथ सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रुचि थी। मानवीय समता के विश्वासी होने के कारण उन्होंने जाति, सम्प्रदाय छुआछूत आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति अत्यन्त प्रगाढ़ थी। शिक्षित समुदाय तथा उच्च वर्ग की भर्त्सना करते हुए उन्होंने लिखा है, ''जब तक देश के हजारों लोग भूखे हैं, अज्ञानी हैं, मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूँगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चुका है।'' उनके अनुसार धर्म वह है जो शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे; जो आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे। विवेकानन्द ने हीनता की भावना से ग्रस्त देश को यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है, इस देश का आध्यात्मिक चिंतन असमानान्तर है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य-मनुष्य की समता, एकता, बन्धुत्व और स्वतंत्रता की ओर भी उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया। पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत देशवासियों को पहली बार यह एहसास हुआ कि हमारी अपनी परम्परा में भी कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें संसार के समक्ष गौरवपूर्व ढंग से रखा जा सकता है।

किसी भी समाज का प्रामाणिक चित्र उस समाज की भाषा के साहित्य में उभरता है। यह भाषा साहित्य, अपने समाज की आशाओं, आकांक्षाओं और चुनौतियों को भी अभिव्यक्त करता है। इस लिहाज से देखें तो स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य ने हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण लाने में जो भूमिका निभाई थी वह उनके समकाल में ही और फिर परवर्तीकाल में स्पष्टतः उभरकर आयी।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति विरोधात्मक थी। वे पुनर्मूल्यांकन और बुद्धिसंगत ज्ञान के पक्ष में थे। वे जानते थे कि प्राचीन संस्कृति पर गर्व होना राष्ट्रीय आत्म सम्मान का अंग है। स्वाधीनता संग्राम के लिए आत्म सम्मान की भावना अत्यंत मूल्यवान है। इसी तरह समाज और इतिहास की समस्याओं पर विचार करते उन्होंने आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाया था। उन्होंने भारतीय चेतना को रूढ़ियों से मुक्त करने का आग्रह किया था और यह चेतना हिन्दी साहित्य के सभी साहित्य अंगों में देखी गई है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ सन् 1857 में शुरू हुआ था। 1857 में जो पहला स्वतंत्रता संग्राम हुआ था उस कारण ईस्ट इंडिया कंपनी को समाप्त कर दिया था और भारत वर्ष ब्रिटिश सम्राज्य का उपनिवेश बन गया था। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। इसी समय साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुःख के साथ पहली बार जुड़ा। यह प्रक्रिया हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु युग में शुरू हुई थी। नया युग अपनी अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा की खोज कर रहा था और खड़ी बोली आधुनिक चेतना के फलस्वरूप गद्य के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई। इस काल में देश में विवेकानंद के कारण नवजागरण आया जिसका सीधा प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा। हिन्दी साहित्य आदिकाल और मध्यकाल की प्रवृत्तियों को छोड़कर अपने नवीन पर्यावरण में विकसित होने लगा।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधने के कोशिश की थी। सन् 1857 का संग्राम वास्तव में भारत के आम आदमी द्वारा की गयी क्रांति थी। सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से हिन्दी प्रदेश में नवजागरण के पहले चरण का पहला आरंभ माना जाता है और 1867 से 1900 तक भारतेन्दु हरिचन्द्र के युग को दूसरा सोपान और 1900 से 1920 तक महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग को उसका तीसरा सोपान माना जाता है।

इस नवजागरण से साम्राज्य विरोधी, सामन्त

विरोधी, सामाजिक सुधार, भाषा समस्या निदान, पुरानी समाज व्यवस्था को बदलने, अंधविश्वास, रूढ़ियों से मुक्ति पाने, पुरानी अर्थव्यवस्था, जाति-बिरादरी के भेदभाव समाप्त करने सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ पुष्ट हुईं। इसमें अंग्रेजों की व्यापार नीति की विस्तृत आलोचना, दास प्रथा और नस्लवाद का जमकर विरोध किया गया। आधुनिक युग में केवल देश भक्ति या वीरता पर्याप्त नहीं होती। राष्ट्र की भक्ति के ये मूलाधार हैं किन्तु जब इनका संयोग विज्ञान और टेक्नोलॉजी से होता है तब राष्ट्र सशक्त होता है। अर्थ तंत्र, राजनीतिक दाँवपेंच पराधीनता, किसान मजदूर की स्थिति अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों स्वाधीनता संग्राम और इतिहास को लेकर हिन्दीभाषा में जैसा विवेचन किया है वैसा योजनाबद्ध विस्तृत और वैज्ञानिक विश्लेषण अन्यत्र कम ही देखने को मिलता है।

नवजागरण समाज का ढाँचा बदलना चाहता है। पुराने रीति-रिवाजों, संस्कारों और समाज के पुराने ढाँचे को कायम रखने वाले सामन्ती तत्व थे जिनका संरक्षक अंग्रेजी राज था। इसलिए सामन्त वर्ग से टक्कर लिए बिना समाज-सुधार की योजनाएँ पूरी न हो सकती थीं। अनेक प्रदेशों में समाज-सुधार के ये प्रयत्न पुराने सामन्ती अवशेष कायम रखते हुए, अंग्रेजी राज का समर्थन करते हुए, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते थे। हिन्दी प्रदेश में समाज-सुधार के ये आन्दोलन प्रखर रूप से सामन्त-विरोधी और अंग्रेज़ों की संरक्षक भूमिका के विरोधी थे। स्पष्ट है कि हिन्दी नवजागरण का महत्व केवल हिन्दी प्रदेश के लिए नहीं था। उसकी उपर्युक्त विशेषताएँ सारे देश के लिए महत्वपूर्ण थीं।

हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु-युग में अर्थात् उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर दौड़ चुकी थी। सामन्तीय सामाजिक ढाँचा टूट चुका था। अंग्रेजी शिक्षा के विकास की गति चाहे जितनी धीमी रही हो और उसके उद्देश्य चाहे जितने सीमित रहे हों, उसका व्यापक प्रभाव देश के शिक्षित समाज पर पड़ रहा था। देश में एक सशक्त शिक्षित मध्य वर्ग तैयार हो गया था जो अत्यधिक संवेदनशील था। यह वर्ग व्यापक राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों की दृष्टि से सोचने लगा था और यह अनुभव करने लगा था कि सभी दृष्टियों से हमारा देश अत्यन्त हीनावस्था में है। भारतेन्दु ने जीवन के सभी क्षेत्रों सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक में परिवर्तन और सुधार के लिए अपने निबंधों, नाटकों तथा भाषणों में जागरण का संदेश दिया। उनके सहयोगियों और समर्थकों ने उनके द्वारा प्रशस्त पथ पर चलकर हिन्दी की जो सेवा की, वह अविस्मरणीय है। भारतेन्दुकालीन साहित्य सांस्कृतिक जागरण का साहित्य है। इस युग में रचित गद्य-साहित्य की प्रत्येक विधा नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना के समीक्षात्मक परिचय से विशेषत: इस सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप स्पष्ट होता है।

हिन्दी नवजागरण मूलत: बुद्धिवादी रहा और वह रहस्यवाद-विरोधी रहा है। यह प्रवृत्ति भारतेन्दु-युग के बाद में द्विवेदी युग और छायावाद काल में भी दिखाई देती है। नवजागरण के सूत्रधारों में स्वामी विवेकानन्द की वैज्ञानिक दृष्टि, वैज्ञानिक प्रशिक्षण की आवश्यकता के प्रति सबसे अधिक सचेत हैं। यह दृष्टि शताब्दियों से चली आती हुई रूढ़ियों की जड़ काटने के लिए, इतिहास और मानव-सम्बन्धों को सही-सही समझने के लिए, प्रकृति के रहस्य जानने के लिए आवश्यक है।

संपर्क : क्वा. 3, श्रीराम नगर, फेज-2,
शंकर नगर, रायपुर, 492007
मो. 09826144434

अमरेन्द्र नारायण

युवा-प्रेरणा के अक्षय स्रोत-स्वामी विवेकानंद

अध्यात्म की आभा से दीप्त मुखमंडल, देश-प्रेम से ओत-प्रोत संवेदनशील हृदय, शक्ति और साहस से चमकती तेजस्वी आँखें; अकर्मण्यता और शिथिलता को ललकारती ओजस्वी वाणी, ऐसा परिचय तो एकमात्र स्वामी विवेकानंद जी का ही हो सकता है। यह भारत वर्ष का सौभाग्य है कि एक युवा संन्यासी के रूप में हमें स्वामी विवेकानंद जैसे महापुरुष मिले जिनमें इन सभी विशेषताओं के साथ-साथ अन्य कई विलक्षण गुणों का अद्भुत समावेश था।

उस समय भारत और भारतवासियों को निरीह, निम्न कोटि का और कहीं-कहीं तो अर्धसभ्य या असभ्य तक समझा जाता था। हमारी सदियों पुरानी सभ्यता और संस्कृति को, हमारी आध्यात्मिक धरोहर को, हमारे जीवन मूल्यों को उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से भी देखा जाता था। हमारे आत्मविश्वास को और हमारे स्वाभिमान को कुंठित कर दिया गया था।

ऐसी हताशाजनक और प्रतिकूल परिस्थितियों में, एक पराधीन देश का नागरिक होने के बावजूद, स्वामी जी ने आत्म-विश्वास और स्वाभिमान की हुंकार भरी। उन्होंने देश-विदेश में भारत की आध्यात्मिक धरोहर और भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा विश्व को इसकी अनुपम देन का उद्घोष किया।

देश के युवाओं पर उनका अटूट विश्वास था और वे उन्हें उनकी अन्तर्निहित क्षमता की याद हमेशा दिलाते रहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि उत्साह से पूर्ण भारत के संवेदनशील युवा अपने सामने खड़ी चुनौतियों का सामना करने के लिये कृतसंकल्प हों। वे किसी भी युवा को हीनताग्रस्त एवं आलस्य, निष्क्रियता और अकर्मण्यता के पाश में आबद्ध देखना नहीं चाहते थे। वे जानते थे कि पराधीनता के वातावरण ने उनके आत्मविश्वास को शिथिल कर दिया था और वे अपने गौरवशाली अतीत को विस्मृत कर दासता की विवशता को आत्मसमर्पण कर चुके थे।

स्वामी जी भारत के युवाओं को भारतीय संस्कृति का सन्देश वाहक बनाना चाहते थे। उनका आह्वान था कि देश के युवा अपने सारे मतभेदों को भूलकर संगठित हों और अपने हुंकार से अपने प्यारे राष्ट्र के जन-जीवन में स्फूर्ति और नव चेतना जाग्रत कर दें। वे ऐसा प्रयास करें कि अपने देश के गौरव से प्रत्येक देशवासी का

मस्तक ऊँचा उठ जाये और सम्पूर्ण विश्व भारत की गरिमा और उसकी महत्ता से प्रभावित हो। उनका विश्वास था कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास होता है। वे कहते थे कि युवकों को युवावस्था की ऊर्जा और ताजगी का भरपूर उपयोग करना चाहिये ताकि वे देश के निर्धन, साधनहीन, अशिक्षित और अशक्त लोगों के लिये काम कर सकें। सर्वोत्तम कार्य वह होता है जो मनुष्य दूसरों के लिये करता है।

स्वामी जी का जन्म दिनांक 12 जनवरी 1863 को हुआ था और दिनांक 4 जुलाई 1902 को वे हमें छोड़ कर चले गये। मात्र 30 वर्षों और 6 महीनों की आयु में ही उन्होंने अपने प्रखर चिंतन और अपनी कर्मठता से असंख्य लोगों को प्रभावित किया। मात्र 30 वर्षों की आयु में, सन 1893 में, स्वामीजी ने शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद में अपनी सुप्रसिद्ध वक्तृता से पूरे सभागार को प्रभावित कर दिया था। उन्होंने अपने हिन्दू होने पर गर्व करते हुए कहा था कि हम तो सार्वभौमिक सहनशीलता में विश्वास रखते हैं और सभी धर्मों को सत्य समझते हैं। उन्होंने गीता का उद्धरण देते हुए भारत की आस्था के मौलिक तत्व का प्रतिपादन किया था। उनके ओजस्वी वक्तव्य की गूँज भारत में भी पहुँची थी और लोगों में उनके विलक्षण व्यक्तित्त्व के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव जगा था।

विश्व धर्म संसद शिकागो में स्वामी जी-स्वदेश लौटने पर स्वामीजी ने युवाओं को संगठित करने का कार्य किया। स्वामीजी ने हजारों युवाओं को प्रभावित किया, उनके ह्रदय में उत्साह भर दिया और उन्हें कर्मठता की प्रेरणा दी। यह हमारा दुर्भाग्य था कि स्वामी जी ने अल्प आयु में ही हमसे विदा ले ली। पर वे हमारे लिये एक अनमोल धरोहर छोड़ गये हैं।

स्वामी जी के विचार भारत की स्वतंत्रता के 69 वर्षों बाद आज भी प्रासंगिक हैं। स्वामी जी राष्ट्रीय एकता के प्रबल समर्थक थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारत ने कई क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। विगत कुछ वर्षों में भारत की प्रतिष्ठा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। आज विश्व में, भारत को एक उभरते हुए शक्तिशाली देश के रूप में सम्मानपूर्वक देखा जाता है। पर इतने से ही हमारे अभीष्ट की सिद्धि नहीं होगी। भारतवर्ष के सामने अनेक चुनौतियाँ है। गरीबी, अन्धविश्वास, अनेकता, भेद-भाव आदि कई विसंगतियों से देश कुप्रभावित है। स्वामीविवेकानंद के व्यक्तित्व और विचार हमारे लिये प्रेरणा के ऐसे स्रोत हैं जो कठिन परिस्थितियों में हमारा मार्ग दर्शन करते हैं। उनसे प्रेरणा लेते हुये, भारत के सम्मान में वृद्धि हेतु देश के युवाओं को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ राष्ट्र निर्माण के कार्य में योगदान देना होगा और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने में अग्रणी भूमिका निभानी होगी। देश के हर व्यक्ति के ह्रदय में राष्ट्र के प्रति प्रेम और हमारे गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरित स्वाभिमान की आभा दीप्त रहनी चाहिये। भारत इन दिनों जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है, उन पर विजय पाने के लिये राष्ट्रीय एकता की नितांत आवश्यकता है।

स्वामी जी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण, सारगर्भित और प्रासंगिक सन्देश है, 'निडर होकर सत्य और सेवा के मार्ग पर चलना।' वे कहते थे कि जीवन थोड़ा है, पर मृत्यु से डरना नहीं चाहिये। अपने जीवन के हर पल का सदुपयोग करना चाहिए।

उनका सन्देश था कि युवकों को युवावस्था की ऊर्जा और ताजगी का भरपूर उपयोग करना चाहिये ताकि वे देश के निर्धन, साधनहीन, अशिक्षित और अशक्त लोगों के लिये काम कर सकें। सर्वोत्तम कार्य वह होता है जो मनुष्य दूसरों के लिये करता है। स्वामी जी का कहना था कि सफल होने के लिये दृढ़ता का होना आवश्यक है। युवाओं में ऐसा आत्मविश्वास होना चाहिये कि मैं सागर को पी सकता हूँ और अपनी इच्छा से पर्वत को चूर कर सकता हूँ। यहाँ स्वामी जी का तात्पर्य पर्वत जैसी ऊँची और सागर जैसी गहरी समस्याओं को समूल समाप्त करने के संकल्प से है। इस के लिये शक्ति, साहस,

उत्साह और धैर्य इन सभी गुणों का समन्वय आवश्यक है। उनका विश्वास था कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास होता है।

स्वामी विवेकानंद जी एक हिन्दू संन्यासी थे, किन्तु धर्म के विषय में उनका दृष्टिकोण व्यापक था। उन्होंने कहा था, मुझे एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने पर गर्व है जिसने हमें सहनशीलता और सार्वभौमिक स्वीकृति की शिक्षा दी है। हम न केवल सार्वभौमिक सहनशीलता में विश्वास रखते हैं, बल्कि हम हर धर्म को सत्य मानते हैं।

स्वामी जी आत्मविश्वास की कमी को एक बड़ी कमजोरी समझते थे। उनका कहना था कि यदि हममें आत्मविश्वास को बढ़ाने पर बल दिया जाता तो हमारी कई बुराइयाँ समाप्त हो जातीं और हमारे कई कष्ट दूर हो जाते। वे दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ने पर जोर देते थे। त्याग और करुणा की भावना से उनका हृदय सराबोर था। वे दुखियों और गरीबों में ईश्वर के दर्शन करते थे और उन के लिये कार्य करने को प्रेरित करते थे।

स्वामी जी ने कठोपनिषद के प्रथम अध्याय के इस मंत्र को अपना उद्घोष बनाया था,

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत- पर वे साथ -साथ यह भी कहते थे कि न केवल स्वयं जागो बल्कि औरों को भी जगाओ।

भारतवर्ष कई समस्याओं से जूझ रहा है। यह समय देश को सशक्त और समृद्ध बनाने के लिये कठिन परिश्रम करने का है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम दृढ़ता से एक साथ आगे बढ़ें। स्वामीजी के आदर्शों के अनुसार युवाओं को ही इस का नेतृत्व करना होगा और इन सभी समस्याओं और चुनौतियों का सामना करने के लिये संगठित होकर कार्य करना पड़ेगा।

आज इस बात की आवश्यकता है कि देश का हर नागरिक स्वामी विवेकानंद जी की जीवनी पढ़े और उनके जीवन से प्रेरणा ले। प्रत्येक नागरिक को युवाओं को आगे बढ़ाने में और उनकी ऊर्जा को देश हित के कार्यों में लगाने के लिए प्रेरित करना चाहिये और उन्हें पूरा सहयोग देना चाहिये। आइये हम अपनी राष्ट्रीय एकता को और सुदृढ़ बनाएँ और देश की प्रगति के संवाहक बनें।

संपर्क : शुभा आशीर्वाद, 1055, रिंगरोड,
साउथ सिविललाइन्स, जबलपुर (म.प्र.)
पिन-482001, मो.09425807200

मैंने स्वामी विवेकानन्द के ग्रंथों को बहुत अच्छी तरह पढ़ा है फलस्वरूप अपने देश के प्रति मेरा जो प्रेम था, वह हजार गुना बढ़ गया।

–महात्मा गाँधी

चन्द्र भूषण

स्वामी विवेकानंद : जीवन प्रबंधन के सूत्र

''जिन्दगी का रास्ता बना बनाया/नहीं मिलता है,/स्वयं को बनाना पड़ता है,/ जिसने जैसा मार्ग बनाया/उसे वैसी ही मंजिल मिलती है।''

स्वामी विवेकानंद का सारा आचार-विचार जीवन मूल्यों से ओत-प्रोत है। आज के भौतिकतावादी और भागम-भाग के दौर में इन मूल्यों की प्रासंगिकता और बढ़ गई है। उनके विचार युवाओं को आंदोलित, स्वस्फूर्त करने के साथ ही आत्मविश्वास से लबरेज करती हैं, निरंतर संघर्ष की ओर प्रेरित करती हैं। उनके अनमोल विचार समाज के सभी वर्गों, चाहे वह स्त्री हों या पुरुष, सभी में जीवन मूल्यों का संचार करने में समर्थ है। आइए, यहाँ हम स्वामी विवेकानंद के जीवन मूल्यों के उन सूत्रों को जानें, जो हर युग में प्रासंगिक हैं, जिन्हें कोई भी आत्मसात कर न केवल अपने आपको बल्कि समाज और देश को भी बदल सकता है।

लक्ष्य-

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत।
(उठो, जागो, रुको नहीं!
जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।)

स्वामी विवेकानंद के उद्घोष का पहला मूल मंत्र है- लक्ष्य। वह युवाओं से आह्वान करते हैं, उठो, जागो, संसार तुम्हें पुकार रहा है। हमारे पास बुद्धि है, धन भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल और केवल हमारी ही जन्मभूमि में है। उसे बाहर करना होगा। अपने रक्त में उत्साह भर कर जागो। मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। रुपया मनुष्य का निर्माण नहीं करता बल्कि मनुष्य सदा रुपये का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।

उदाहरण : नचिकेता उम्र में छोटा था लेकिन उसके सामने लक्ष्य स्पष्ट था कि मृत्यु की समस्या पर यमराज से संवाद हो। वह आत्म विश्वास से भरा था और साहस से बढ़ता गया। वह समस्या का हल करना चाहता था। इसकी मीमांसा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अत: वह बालक वहाँ गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा और अभीप्सित को प्राप्त किया।

कर्म/कर्तव्य- *''कर्म, कर्म, कर्म, यही तुम्हारा/ मूल मंत्र होगा।''*

स्वामी विवेकानंद का मानना था कि अच्छी रणनीति बनाकर ही हम अपने सपनों को वास्तविकता में बदल सकते हैं। इसके साथ ही वह रणनीति या योजना बनाने पर अधिकतम समय बर्बाद करने के बजाय उसके कार्यान्वयन पर ध्यान देने पर जोर देते हैं। ... वह कहते हैं पूरी लगन के साथ कार्य करते रहो। पड़े रहकर, जंग लगकर मरने से कार्य में घिस-घिस कर मरना कहीं अधिक अच्छा है।

उदाहरण : एक हठी किसान था। एक दिन उसने प्रण किया कि खेतों में जब तक नहर से नाली बनाकर पानी न पहुँचा दूँ कोई दूसरा काम न करूँगा। बेटी, बेटा, पत्नी सब आए, समझाए कि नहा लो, खाना खा लो, फिर नाला खोदते रहना। लेकिन वह जब तक नहर का पानी खेतों तक नहीं पहुँचा दिया उसने दिनभर नाला खोदता रहा। बाद में वह नहाया, खाया और चैन की नींद सो गया।

उसी जगह दूसरा किसान खेतों में पानी लाने का उपक्रम करने गया। पत्नी ने कहा खा लो, धूप अधिक है, बाद में नाला खोद लेना। किसान ने कहा, तुम कहती हो तो चलो बाद में कर लेंगे। एकाग्रता के अभाव में वह किसान खेतों में पानी लाने में असफल रहा। इसलिए कार्य, काम या कर्तव्य में अनुशासन आवश्यक है।

सकारात्मक दृष्टिकोण,

''यदि हजार बार भी असफल हो जाओ,/तो एक बार फिर प्रयत्न करो।''

स्वामी विवेकानंद का स्पष्ट मत था कि जो कर चुके, सो कर चुके। अनुताप (संताप) मत करो। तुम किसी भी कर्म के फल को नष्ट नहीं कर सकते, फल अवश्य प्राप्त होगा। अतएव साहसी होकर उसके सम्मुख डटे रहो, किन्तु सावधान, दोबारा वैसा कार्य मत करना।

संकट से पलायन नहीं,

''संकटों से भागो नहीं,/उनका सामना करो''

स्वामी विवेकानंद साहस के अवतार हैं। उनके जीवन की हर घटना साहसिकता से भरी हुई है, वीरता उनका स्वाभाविक गुण था। उनका कहना था, तुममें महान बनने की महत्वाकांक्षा होनी चाहिए। कायर ही सर्वदा भय से काँपते हैं। हार-वीर के अंग का आभूषण है। इसका मतलब यह नहीं कि बिना लड़े ही हार मान लूँ। वह कहते हैं जिन लोगों में धैर्य नहीं होता, वह संकटों से भागते हैं। यदि हम चाहते हैं कि भय, बाधा, विपत्ति एवं अज्ञानता हमसे दूर रहे तो हमें उनका सामना करना होगा।

उदाहरण : वाराणसी में दुर्गा मन्दिर से लौटते समय बन्दरों के एक झुंड ने स्वामी विवेकानंद का पीछा किया। वह भागने लगे, बन्दर भी पीछे दौड़े। तभी एक वृद्ध संन्यासी ने उनसे कहा कि ''भागो मत, दुष्टों का सामना करो।'' स्वामी विवेकानंद उनकी आवाज सुनकर दुष्टों का सामना करने के लिए मुड़े। इसके बाद बन्दरों ने स्वामी जी का पीछा छोड़ दिया। तात्पर्य विघ्न-बाधाओं को देखकर कभी भागना नहीं चाहिए, निर्भीकता से उनका सामना करना चाहिए। प्रवृति के सामने डटे रहो। कभी डर कर मत भागो।

आत्मविश्वास/दृढ़ता-

''संसार का इतिहास उन थोड़े व्यक्तियों का इतिहास है जिनमें आत्मविश्वास था।''

''विश्वास, विश्वास, अपने आप पर विश्वास''

स्वामी विवेकानंद कहते हैं हम बहुत रो चुके और अब हमारे लिए नरक बनाने की आवश्यकता नहीं है। अब हमारे देश को जरूरत है- लोहे के हाथ-पैर, फौलाद के पुट्ठे और वह दृढ़ संकल्प शक्ति जिसे दुनिया की कोई वस्तु रोक नहीं सकती, जो प्रकृति के रहस्यों की हद तक पहुँच जाती है और अपने लक्ष्य से कभी विमुख नहीं होती, चाहे उसे समुद्र की तह में जाना या मृत्यु का सामना ही क्यों न करना पड़े। महानता का मूलमंत्र विश्वास है, दृढ़ और अटल विश्वास अपने आप पर और सर्वशक्तिमान ईश्वर पर विश्वास। जो स्वयं पर विश्वास नहीं रखता वही नास्तिक है।

उदाहरण : हिमालय की पहाड़ियों पर विचरण

करते हुए स्वामी विवेकानंद ने एक थके हुए, हताश वृद्ध व्यक्ति को पहाड़ के नीचे देखा। उस वृद्ध ने कहा, मैं चलने में असमर्थ हूँ, इतनी लम्बी दूरी कैसे तय करूँगा, मेरी छाती फटी जा रही है। विवेकानंद ने कहा, ''आप अपने पैरों की तरफ जरा गौर से देखिए, आपके पैरों के नीचे और आपके पीछे जो पृथ्वी पड़ी है, उसे आप रौंद कर पार कर ही चुके हैं और सामने जो राह देख रहे हैं, वह भी तो वैसी ही एक राह है। इस राह को भी आप इसी तरह शीघ्र ही पार कर डालेंगे।...'' यह बात सुनकर वृद्ध में निराशा के भाव खत्म हुए और पैर को आगे बढ़ाते हुए गंतव्य पर पहुँच गया।

उत्तरदायित्व-''*दूसरों पर दोष लगाने की चेष्टा तुम्हें दुर्बल करेगी। अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करो। सब कामों के लिए अपने को ही उत्तरदायी समझो।*''

स्वामी विवेकानंद कहते हैं किसी की गलतियों के बारे में बोलकर आप किसी की मदद नहीं कर सकते। दोषारोपण से नकारात्मक भावना जागृत होती है और खुद की तरफ पारदर्शिता से देखने से और खामियों को सुधारने के लिए कुछ सही कदम लेने से रोकती है।

उदाहरण : एक मन्दिर के सामने साधु रहता था और वहीं पास में एक घर में वेश्या रहती थी। साधु हर दिन वेश्या को बुलाकर उसके बुरे कर्मों के बारे में उसे बताता था और वेश्या भगवान से दुष्कर्मों के लिए माफी माँगती थी। साधु पूजा-पाठ और ध्यान छोड़कर वेश्या के घर आने-जाने वालों की गिनती के लिए उसके घर के सामने एक पत्थर डाला करता था। बाद में वहां पत्थरों का ढेर लग गया। साधु वेश्या से प्रतिदिन उसके दुष्कर्मों के बारे में बताता था और वेश्या अपने पापों के लिए हर दिन ईश्वर से प्रार्थना करती थी।

एक दिन संयोग से दोनों की मृत्यु एक ही दिन हो गई। यमदूत साधु को नरक ले गए और विष्णुदूत उस वेश्या को वैकुण्ठ ले गए। साधु को जब पता चला तो वह जोर से चिल्लाया कि भगवान यह कैसा न्याय है? तब विष्णुदूतों ने स्पष्ट किया कि उस वेश्या ने अपनी असामर्थ्य के लिए भगवान से हर दिन प्रार्थना की और साधु ने तो हर दिन केवल वेश्या को दोषी ठहराने में समय गँवाया और कभी भी भगवान की प्रार्थना के लिए समय नहीं निकाला। इसलिए भगवान का निर्णय योग्य और न्यायोचित था।

द्वंद/संघर्ष-''*जब दिल और दिमाग के बीच संघर्ष हो तो दिल का कहना मानो।*''

''*दिमाग की भाषा कुछ लोग ही समझ सकते हैं, परन्तु हृदय की भाषा सभी समझते हैं।*''

चिन्ता का मूल कारण है, क्या ठीक है और क्या गलत, के बीच टकराव। यदि समय रहते इन चिन्ताओं को निकाल नहीं फेंका तो वे हमें ही जला डालती हैं।

उदाहरण : एक दिन खेतड़ी के राजा ने स्वामी विवेकानंद के सम्मान में संगीत का आयोजन किया जिसमें एक वेश्या(बाईजी) गाना गाने वाली थी। स्वामी विवेकानंद राजा के महल में अतिथि थे। उन्हें मालूम चला तो संगीत संध्या में नहीं गए लेकिन जब वेश्या ने मार्मिक और व्यथित तान छेड़ी तो विवेकानंद को बड़ी आत्मग्लानी हुई कि वह तो संन्यासी हैं जो किसी जाति-धर्म या वर्ग को नहीं मानते और किसी से घृणा नहीं करते तो फिर नारी जाति से क्यों? उसी क्षण विवेकानंद संगीत उत्सव में उपस्थित हो गए। कहा जाता है कि गाना समाप्त होने पर बाईजी को 'माता' संबोधित कर स्वामी जी ने उनसे क्षमा प्रार्थना की।

पुरुषार्थ-''*कायर लोग तो केवल दया के पात्र हैं।*''

''*जो अपने को दुर्बल सोचता है, वह दुर्बल हो जाता है।*''

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि कायरता से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। कायरों का कभी उद्धार नहीं होता और यही निश्चित है। उनका मानना था कि मरते हुए भी संग्राम करो। कायरता को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता।

वह कहते हैं तुम जो कुछ सोचोगे, तुम वही हो जाओगे। यदि तुम स्वयं को दुर्बल समझोगे, तो दुर्बल हो जाओगे, वीर्यवान सोचोगे तो वीर्यवान बन जाओगे। यदि तुम स्वयं को शुद्ध सोचोगे तो शुद्ध हो जाओगे।

अशुद्ध सोचोगे तो अशुद्ध रहोगे। पुरुषार्थ यह है कि हम स्वयं को कमजोर न समझें वरन वीर्यवान, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ मानें।

उदाहरण : एक बार स्वामी विवेकानंद राजयोग पर भाषण दे रहे थे। भाषण के बीच में एक एंग्लो-इंडियन बार-बार उठकर भाषण पर टिप्पणियाँ करने लगता। बुद्ध पर बोलते तो उसकी निन्दा। साधुओं को चोर-बेईमान कहकर गालियाँ देने लगा। लेकिन स्वामी विवेकानंद रुके नहीं और अपने भाषण में अंग्रेजों की काली करतूतों पर से पर्दा हटाने लगे। वह एंग्लो-इंडियन अपने आप को सँभाल न सका और रो पड़ा। तात्पर्य यह है कि आप मर्यादा बनाए रखें लेकिन हद से बाहर होने लगे तो अपनी पौरुषता का परिचय देने में कोई हर्ज नहीं है।

तनाव/हीन भावना से मुक्ति-

''शुद्ध और शान्त मन का एक व्यक्ति पच्चीस लोगों के बराबर कार्य कर सकता है।''

''कार्य में पूरा ध्यान दो लेकिन तनाव में कोई कार्य मत करो।''

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि जो व्यक्ति शीघ्र ही क्रोध, घृणा या किसी अन्य आवेग से अभिभूत हो जाता है, वह कोई कार्य नहीं कर पाता, अपने को चूर-चूर कर डालता है और कुछ भी व्यावहारिक नहीं कर पाता। केवल शान्त, क्षमाशील, स्थिरचित व्यक्ति ही महत्वपूर्ण कार्य कर पाता है।

स्वामी जी का मानना है कि घटनाएँ अपनी जगह पर घटती ही रहेंगी लेकिन उससे उदास होकर अपना जीवन जटिल बना लेना मूर्खता है।

मानव सेवा-

''मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है।''

''दूसरों के लिए रत्तीभर काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्तीभर सोचने से धीरे-धीरे हृदय में सिंह जैसा बल आ जाता है।''

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि दूसरों की भलाई और सेवा करना एक महान सार्वलौकिक धर्म है। वह कहते हैं मेरे बच्चों! फल की चिन्ता न करते हुए तन और मन से कर्म करो। दूसरों की सेवा करते हुए चाहे नरक भी चले गए तो क्या? यह केवल स्वयं के लिए स्वर्ग हासिल करने से भी अधिक लाभदायी है।

उदाहरण : स्वामी विवेकानंद बचपन से साधु, संन्यासियों व भिखारियों को दान दिया करते थे। एक दिन माँ ने कहा कि इस तरह खुले हाथों से दान दिया करोगे तो गृहस्थी कैसे चलेगी? दान की प्रवृत्ति फिर भी न रुकी तो माँ ने उसे एक कमरे में बन्द कर दिया। कमरे में वह उदास बैठे थे उसी समय एक संन्यासी आया और भिक्षा माँगने लगा। बालक विवेकानंद ने कमरे में एक बन्द बक्सा देखा और उसे खोलकर उसमें से नए कपड़े दरिद्र संन्यासी को दे दिए।

प्रभावशाली व्यक्तित्व और निडरता-

''बल, बल! यह वो है जिसकी हमें जीवन में बहुत जरूरत है।''

स्वामी विवेकानंद का मानना है कि बलवान शरीर में बलवान मन का निवास होता है। केवल शरीर की शक्ति काफी नहीं है बल्कि एक प्रभावशाली व्यक्तित्व का मतलब शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों का मिलन है। उल्लेखनीय है कि स्वामी जी ने बचपन से सशक्त शरीर का विकास किया। लाठी चलाना, कुश्ती, मुक्केबाजी, घुड़सवारी जैसे खेल सीखे।

देश भ्रमण के दौरान दुर्बल युवाओं को देखकर उन्हें काफी दुःख पहुँचा। उन्होंने आह्वान किया कि पहले बलवान बनो फिर धर्म की चिंता करो। उनका एक मत था कि गीता पाठ करने की अपेक्षा तुम फुटबॉल खेलो क्योंकि बलवान शरीर व मजबूत स्नायुओं की सहायता से तुम गीता को अच्छी तरह समझ सकते हो। शरीर में शुद्ध रक्त होने से तुम कृष्ण की प्रतिभा और महान तेजस्विता को भी अच्छी तरह समझ सकते हो।

संपर्क : प्लॉट नं. 146, ज्ञानखंड-3
इंदिरापुरम, गाजियाबाद-201014 (उ.प्र.)
मो. 9811271465

राजेन्द्र उपाध्याय

विवेकानंद : जीवन के अनजाने सच

स्वामी विवेकानंद का जीवन एक खुली किताब है फिर भी अभी तक उनके संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को आँका नहीं जा सका है जबकि उस दिशा में निरंतर अनुसंधान चल रहे हैं। इसलिए विवेकानंद के जीवन के अज्ञात और अनसुलझे पहलुओं की खोज आज भी चल रही है, चलती रहेगी।

मशहूर बांगला उपन्यासकार शंकर पूरा नाम मणिशंकर मुखर्जी ने विवेकानंद के जीवन के अनजाने सच को बहुत रोचक अंदाज में इस पुस्तक में पेश किया है। एक व्यक्ति के रूप में कैसे थे विवेकानंद। संन्यासी के कर्तव्य और संतान के कर्तव्य में वे कैसे समन्वय कर पाते थे? क्या वे असंभव को संभव कर पाए थे उनकी बहन ने क्या आत्म हत्या की थी? विलायत से वापस लौटते हुए रास्ते में बीतरागी मँझले भाई ने आखिर इतना मान क्यो ठान लिया कि पाँच वर्षों तक घरवालों को एक भी पत्र नहीं लिखा? दत्त परिवार की हिस्सेदारी के मामले के लिए रुपए-पैसे आखिर कहाँ से जुटाए गए? समूचा परिवार निर्धन कैसे हो गया?

संन्यासी विवेकानंद विदेश में आखिर कैसे वेदांत और विरयानी व्यंजन के प्रचार अभियान में उतर पड़े? विवेकानंद को माँस और अच्छी मछली खाने का भी शौक था। वे तरह-तरह के मसालेदार व्यंजन बनाना जानते थे और वे खाने के तथा खिलाने के भी शौकीन थे। वे कहते थे, अच्छा सन्यासी बनने के लिए अच्छा रसोइया होना भी जरूरी है।

शिकागो में अपना प्रसिद्ध भाषण देने के बाद विवेकानंद कम उम्र में ही दुनिया भर में छा गए थे। दुनिया भर में उनके लिए बुलाने आते थे। विश्वविजय करके लौटने के बाद भी कोलकाता के नामी-गिरामी डाक्टरों ने फीस के तौर पर भिक्षुक संन्यासी से बेहिचक कितने रुपये लिए थे? इलाज का खर्च वहन करने में हैरान-परेशान होकर स्वामी जी को न जाने किन-किन लोगों के सामने हाथ नहीं फैलाना पड़ा था? इसी तरह के अनेक छोटे-बड़े सवालों का जवाब इस पुस्तक में मिलते हैं।

पुस्तक में अनेक दुर्लभ तथ्य जुटाए हैं। दुर्लभ पत्र भी दिए हैं और दुर्लभ

तस्वीरें भी दी हैं। अनुवादक सुशील गुप्ता ने इस पुस्तक का बंगला से हिन्दी में प्रवाहमान भाषा में अनुवाद किया है।

पुस्तक में निवेदन के बाद छह अध्याय हैं। विवेकानंद संयुक्त परिवार के सदस्य थे। विवेकानंद दस भाई बहन थे और उनकी माँ का नाम भुवनेश्वरी था। पहले अध्याय में विवेकानंद के पूरे खानदान की वंशावली का वर्णन है। पिता के देहांत के बाद विवेकानंद को भयावह आर्थिक कष्ट झेलना पड़ा जो जीवनभर रहा। फटेहाल, निराहार, नंगेपाँव, हाथ में नौकरी का आवेदन लिए वे कार्यालय-कार्यालय भटकते रहते थे। हर जगह से निराशा ही मिलती थी। विवेकानंद के जीवन की ये त्रासदी थी कि युवावस्था में ही उन्हें गहराते पारिवारिक मुकदमों का सामना करना पड़ा था। माता-पिता की संपत्ति उनके ही परिजनों ने ही हड़प ली। जगह-जगह मुकदमें चले। स्वामी जी को मुकदमों के खर्च के लिए पैसा जुटाने की चिंता अलग रहती थी।

एक अध्याय का शीर्षक है संन्यासी और चायपान। इसमें बताया गया है कि स्वामीजी चाय के बेहद शौकीन थे। इसी अध्याय में चाय के संस्कृत नाम भी बताए गए हैं। विवेकानंद को 'चाय चिंतक' भी कहा गया है। चाय के बारे में इतना चिंतन मनन करने वाला इस देश में दूसरा नहीं बताया गया है।

स्वामीजी तीखी मिर्च के भी शौकीन थे। स्वामीजी से सवाल किया गया कि आप इतनी मिर्च क्यों खाते हैं? उन्होंने कहा कि जिंदगी भर घूमते-घूमते अँगूठे से टकटकाकर भात खाता रहा हूँ। तब मिर्च ही एकमात्र सहारा थी। मिर्च मेरी पुरानी मित्र और बंधु है। इंसानों से प्यार, गर्म चाय, खुशबूदार तंबाकू और दिमाग खराब कर देने वाली मिर्च इन चारों मामलों में विवेकानंद सीमाहीन थे।

अगला अध्याय 'संन्यासी की सेहत' शीर्षक से है। आश्चर्य है कि स्वामी जी को 31 रोग थे जिनमें सिरदर्द, हफँनी, पथरी से लेकर डायबिटीज तक थी। इतनी-इतनी बीमारियों के होते हुए भी स्वामीजी निरंतर भ्रमण और वेदांत प्रचार में लगे रहे। पेट के रोग से वे जीवनभर परेशन रहे। इस अध्याय में इन सभी रोगों की चर्चा है जिनसे स्वामीजी पीड़ित रहे। निरंतर यात्रा, लगातार भाषण और अनियमित खानपान ने स्वामीजी को भीतर से जर्जर कर दिया था। फिर भी उनमें अदम्य संघर्ष की शक्ति थी।

स्वामीजी पशुप्रेमी भी थे। मठ के चिड़ियाघर में उन्होंने कुत्ते, सारस, गाय, हिरण आदि पाल रखे थे। वे न केवल उन्हें प्रेम करते थे वरन उनमें से हरेक का उन्होंने नामकरण कर रखा था।

विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 को हुआ था। वे कुल उनतालीस वर्ष, पाँच महीने, चौबीस दिन इस धरती पर रहे। इतनी कम उम्र में दुनिया भर में अपना नाम कमा लेने वाला संन्यासी कोई दूसरा नहीं है। विवेकानंद का जीवन इस बात का प्रमाण है कि प्रतिकूल अवस्था में आत्म विकास ही प्रकाशमय जीवन है। 4 जुलाई 1902 की रात 12 बजे विवेकानंद नाम का सूर्यअस्त हो गया लेकिन उन्होंने जो प्रकाश फैलाया वो हजार वर्ष तक इस धरती पर रहेगा। विवेकानंद महान और अद्वितीय थे और जीवन के हर क्षेत्र में उन्होंने अपनी अद्वितीयता बनाए रखी। लेखक ने बहुत श्रम करके हमें उस संन्यासी के बारे में बताया है जिसके बारे में हम कितना कम जाते थे।

पुस्तक : विवेकानंद : जीवन के अनजाने सच

लेखक : मणिशंकर मुखर्जी। अनुवाद : सुशील गुप्ता।

Add. B-108, Pandara Road,
New Delhi-110003
Res. Ph- 011:2307-3445

डॉ. गीता गुप्त

धर्म और संस्कृति के चिन्तक : स्वामी विवेकानन्द

रवीन्द्रनाथ ने कहा है, 'यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानन्द को पढ़ना चाहिए।' अरविन्द के अनुसार, 'पश्चिमी जगत् में विवेकानन्द को जो सफलता मिली, वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्यु से बचने को नहीं जगा है वरन् वह विश्व-विजय करके दम लेगा।' और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा है कि 'स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता की उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी, उसके अतीत के प्रति गौरव एवं भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे। स्वामीजी ने सुस्पष्ट रूप से राजनीति का एक भी सन्देश नहीं दिया किन्तु जो भी उनके अथवा उनकी रचनाओं के सम्पर्क में आया, उनमें देशभक्ति और राजनीतिक मानसिकता अपने आप उत्पन्न हो गई।' इनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वामीजी धर्म और संस्कृति के चिन्तक थे। राजनीति से उनका कोई सरोकार न था किन्तु राजनीति स्वयं संस्कृति की चेरी है। स्वामीजी ने अपनी वाणी और कर्तृत्व से भारतीयों में यह स्वाभिमान जगाया कि हम अत्यन्त प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं, हमारे धार्मिक ग्रन्थ संसार में सबसे उन्नत और हमारा इतिहास सबसे महान् है, हमारी संस्कृत भाषा विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है और हमारा साहित्य सबसे उन्नत साहित्य है। यही नहीं, हमारा धर्म ऐसा है जो विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है और जो विश्व के सभी धर्मों का सार होते हुए भी उन सबसे अधिक है। स्वामीजी की वाणी ने हिन्दुओं में यह विश्वास जगाया कि उन्हें किसी के भी सामने लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता बाद में जन्मी और इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के जनक स्वामी विवेकानन्द थे।

सन् 1862 ई. में शिकागो में अखिल विश्व के धर्मों के महासम्मेलन में स्वामीजी ने अपने ज्ञान, उदारता, विवेक और वाग्मिता से पश्चिम के लोगों को मन्त्रमुग्ध कर दिया। उनके भाषणों पर टिप्पणी करते हुए 'द न्यूयॉर्क हेराल्ड' ने लिखा था, 'धर्मों की पार्लियामेण्ट में सबसे महान् व्यक्ति विवेकानन्द हैं।' शिकागो-सम्मेलन से उत्साहित होकर स्वामीजी ने अमेरिका और इंग्लैण्ड में तीन साल तक रहकर अपने भाषणों, वार्तालापों, लेखों, कविताओं, वक्तव्यों और कृतत्व के द्वारा हिन्दू धर्म के सार को सारे यूरोप में फैलाया और लगभग डेढ़ सौ वर्षों में ईसाई धर्म प्रचारक संसार में हिन्दुत्व की

जो निन्दा फैला रहे थे, उसे रोकने में सफल हुए।

स्वामीजी ने यूरोप तथा अमेरिका को संयम और त्याग का महत्व समझाया किन्तु भारतवासियों का ध्यान समाज की आर्थिक दुरावस्था की ओर आकृष्ट किया और धर्म की एक नयी विलक्षण व्याख्या प्रस्तुत की। उनके अनुसार, 'धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है। धर्म न तो पुस्तकों में है, न धार्मिक सिद्धान्तों में। वह केवल अनुभूति में निवास करता है। धर्म अन्धविश्वास नहीं है, धर्म अलौकिकता में नहीं है, वह जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक तत्व है। मनुष्य में पूर्णता की इच्छा व अनन्त जीवन की कामना है, ज्ञान और आनन्द प्राप्ति की चाह है। इनकी खोज जीवन के उच्च स्तर पर की जानी चाहिए। जहाँ ऊँचा स्तर आता है, वहीं धर्म का आरम्भ होता है। जीवन का स्तर जहाँ हीन है, इन्द्रियों का आनन्द वहीं अत्यन्त प्रखर होता है। सभी देशों में निचले स्तर के मनुष्य इन्द्रियों के आनन्द में अत्यन्त उत्साह दिखाते हैं किन्तु जो सच्चे अर्थों में शिक्षित, सुसंस्कृत हैं, उनके आनन्द का आधार विचार और कला होती है, दर्शन और विज्ञान होता है। किन्तु आध्यात्मिकता तो और भी ऊँचे स्तर की चीज़ है, जिसका आनन्द भी अत्यन्त सूक्ष्म और प्रखर होता है।

स्वामीजी मानते थे कि व्यक्ति अथवा समूह के जीवन की सफलता उसकी आधिभौतिक समृद्धि अथवा बौद्धिक उपलब्धियों पर निर्भर न होकर आध्यात्मिक उन्नति पर निर्भर है। अतएव मनुष्य को पवित्रता, भक्ति, विनयशीलता, सचाई, नि:स्वार्थता और प्रेम का सर्वाधिक विकास करना चाहिए।

स्वामीजी ने भारतवासियों को जो उपदेश दिया, वह केवल धर्म के लिए नहीं था बल्कि यहाँ के लोगों में असन्तोष जगाकर उन्हें कर्म-मार्ग पर आरूढ़ करने का प्रयास था। व्यक्ति और समाज-दोनों की रक्षा के लिए तथा शान्ति के लिए भी वे धर्म को आवश्यक मानते थे। लेकिन धर्म-साधना के लिए जीवन से भागकर गुफा में नाक-कान दबाकर प्राणायाम करने की परम्परा के विरोधी थे। जिन विचारों, धर्मों और आचारों से कायरता की वृद्धि एवं पौरुष का दलन होता है, स्वामीजी उनके अत्यन्त विरुद्ध थे इसीलिए बुद्ध की अहिंसा की उन्होंने कभी भी खुलकर प्रशंसा नहीं की। वे ऐसे सुधारक और सन्त थे जिनकी अनुभूतियों में पुराने धर्म नवीन रूप ग्रहण करते हैं। वे यह नहीं सह सकते थे कि परम्पराएँ भारतवासियों की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध करें अथवा धर्म उन्हें निर्धन और ग़ुलाम रहने को विवश करे।

उपनिषदों के अनुसार सभी आत्माएँ एक हैं क्योंकि वे एक ही परब्रह्म के असंख्य प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इससे स्वामीजी ने निष्कर्ष निकाला कि 'सच्ची ईशोपासना यह है कि हम मानव मात्र की सेवा में अपने आप को लगा दें। जब पड़ोसी भूखा हो, तब मन्दिर में भोग चढ़ाना पुण्य नहीं, पाप है। जब मनुष्य दुर्बल और क्षीण हो, तब हवन में घृत् जलाना अमानुषिक कर्म है। संसार में अगणित नर-नारियों में परमात्मा भासमान है। मेरे जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरुद्ध संघर्ष करना है, जो विधवाओं के आँसू पोंछने में असमर्थ है, जो मातृ-पितृविहीन बच्चे के मुख में रोटी का टुकड़ा नहीं दे सकता। वास्तविक शिव की पूजा निर्धन और दरिद्र की पूजा है, रोगी और कमज़ोर की पूजा है।

स्वामीजी निर्धनता, पुरोहितवाद और धार्मिक अत्याचार सिखाने वाले दर्शन के विरोधी थे। वे हिन्दुत्व की शुद्धि के लिए कटिबद्ध थे और उनका प्रधान क्षेत्र धर्म था लेकिन धर्म और संस्कृति अन्योन्याश्रित हैं। भारत में राष्ट्रीय पतन के कई कारणों में कुछ का सम्बन्ध धर्म से भी था। अत: स्वामी विवेकानन्द ने धर्म का परिष्कार आरम्भ किया और इस प्रक्रिया में कड़ी-से-कड़ी बातें भी बड़ी निर्भीकता से कह दीं।

उनका मत था, 'शक्ति का उपयोग केवल कल्याण के लिए होना चाहिए। भारत का कल्याण शक्ति की साधना में है। जन-जन में छिपी शक्ति को हमें साकार करना है। शक्ति, पौरुष, क्षात्र-वीर्य और ब्राह्म तेज, इनके समन्वय से भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिए। अथर्ववेद

में एक मन्त्र है, जिसका अर्थ है कि मन से एक बनो, विचार से एक बनो। प्राचीन काल में देवताओं का मन एक हुआ, तभी से वे नैवेद्य के अधिकारी रहे हैं। मन से एक होना समाज के अस्तित्व का सार है किन्तु द्रविड़ और आर्य, ब्राह्मण और अब्राह्मण, इन तुच्छ विवादों में पड़कर तुम जितना झगड़ोगे, तुम्हारी शक्ति उतनी ही क्षीण होती जाएगी, तुम्हारा संकल्प एकता से उतना ही दूर पड़ता जाएगा। स्मरण रखो कि शक्ति-संचय और संकल्प की एकता-इन्हीं पर भारत का भविष्य निर्भर है।'

हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक होने पर भी स्वामी विवेकानन्द में इस्लाम के प्रति कोई द्वेष नहीं था। उनकी कल्पना थी कि इस्लाम की व्यावहारिकता को आत्मसात किये बिना वेदान्त के सिद्धान्त जनता के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। सन् 1898 ई. में उन्होंने लिखा भी था कि 'हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि उसके दो धर्म, हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जाएँ। वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के संयोग से जो धर्म खड़ा होगा, वही भारत की आशा है।'

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दुत्व के सार्वभौम रूप का व्यापक विस्तार किया और संसार में प्रचलित अनेक धर्मों की अनिवार्यता बताते हुए कहा कि मनुष्य सर्वत्र अन्न ही खाता है किन्तु देश-देश में अन्न से भोजन तैयार करने की विधियाँ अनेक हैं। इसी प्रकार धर्म मनुष्य की आत्मा का भोजन है एवं देश-देश में उसके भी अनेक रूप हैं। मानव का कर्त्तव्य है कि वह अन्य धर्मों का सार अपने भीतर पचा ले और अपनी वैयक्तिकता की पूर्ण रूप से रक्षा करते हुए उन नियमों के अनुसार अपना विकास खोजे, जो उसके अपने नियम रहे हैं। स्वामीजी के अनुसार आत्मा की भाषा एक है किन्तु जातियों की भाषाएँ अनेक होती हैं। धर्म आत्मा की वाणी है। वही वाणी अनेक जातियों की विविध भाषाओं तथा रीति-रिवाज़ों में अभिव्यक्त हो रही है।

स्वामीजी ने घोषणा की कि जीवन का धर्म आदान-प्रदान है। विश्व सभ्यता अभी अधूरी है। पूर्ण होने के लिए वह भारत की राह देख रही है। वह भारत की उस आध्यात्मिक सम्पत्ति की प्रतीक्षा में है जो पतन, गन्दगी और भ्रष्टाचार के होते हुए भी भारत के हृदय में जीवित और अक्षुण्ण है। पश्चिम वालों से हमें एक विनिमय करना है। धर्म और आध्यात्मिकता के स्तर की चीज़ें हम उन्हें देंगे और बदले में भौतिक साधनों का दान हम सहर्ष स्वीकार करेंगे।

उन्होंने यह चेतावनी दी थी कि 'भारत की रीढ़ धर्म है। वह दिन बुरा होगा जब यह देश अपनी आध्यात्मिक रीढ़ को हटाकर उसकी जगह पर एक राजनीतिक रीढ़ बैठा लेगा।' धर्म को वे व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उपयोगी मानते थे। उनका विचार था कि 'धर्म को समाज में जिस ढंग से लागू किया जाना चाहिए था, उस ढंग से वह लागू नहीं किया गया है। किन्तु यदि कभी भी कोई विश्व-धर्म जैसा धर्म उत्पन्न होने वाला है तो वह बिल्कुल हिन्दुत्व के ही समान होगा, जो देश और काल में कहीं भी सीमित या आबद्ध नहीं होगा; जो परमात्मा के समान ही अनन्त और निर्बाध होगा तथा जिसके सूर्य का प्रकाश कृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर एक समान चमकेगा। यह धर्म न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई होगा, न मुसलमानी, अपितु वह इन सबके योग और सामंजस्य से उत्पन्न होगा।'

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की जो सेवा की, वह अमूल्य है। उनके उपदेशों से ही भारतवासी अपने पतन की गहराई माप सके, अपने आधिभौतिक विनाश, निष्क्रियता और पौरुषहीनता को जान सके और विवेकानन्द की वाणी से ही सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। उन्होंने ही उद्घोष करते हुए कहा था, 'साहस का सूर्य उदित हो चुका है। भारत का उत्थान अवश्य होगा। किसी में यह दम नहीं है कि वह अब भारत को रोक सके। भारत अब फिर से निद्रा में नहीं पड़ेगा। यह भीमाकार देश फिर से अपने पाँवों पर खड़ा हो रहा है।'

संपर्क : ई-182/2, प्रोफेसर्स कॉलोनी
भोपाल-462002 (म. प्र.), मो. 9424439324

दीपक पगारे

शब्दों से स्वतंत्रता की अलख जगाई

आमतौर पर माना जाता है कि स्वामी विवेकानंद ने देश की स्वतंत्रता के प्रति कभी रुचि नहीं दिखाई। बल्कि इस दिशा में सोचते भी नहीं थे। लेकिन वास्तविकता इससे परे है। वस्तुत: यह है कि स्वामी जी ब्रिटिश शासन से मुक्ति दिलाने के लिए काफी चिंतित थे और उन्होंने प्रयास भी किए। इस कड़ी में उन्होंने रियासतों को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ एकजुट करने के प्रयास किए थे। यह बात और है कि इसमें वे सफल नहीं हो पाये।

सन् 1892 में भारत भ्रमण के दौरान स्वामी विवेकानंद ने देखा कि गोरी सरकार हमारे देश के व्यापारियों और किसानों का शोषण कर रही है। आम नागरिक त्रस्त है। यहाँ उन्होंने महसूस किया कि भारत को इस दासता से मुक्ति दिलाने के लिए जागृत करना होगा। इससे भी बढ़कर जब वे पश्चिम में गए तो उन्हें आभास हुआ कि भारत ही पश्चिम का मार्गदर्शन कर सकता है। यह राष्ट्र समृद्ध प्रतीत होते तो जरूर हैं लेकिन चूँकि यहाँ आध्यात्मिकता का अभाव है, ऐसे में भारत ही यह मार्ग दिखा सकता है। लेकिन यह देश तो स्वयं ही गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। मानवता के कल्याण के लिए स्वामी जी शक्तिशाली और जागृत राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे लेकिन यह परतंत्रता की बेड़ियों में रहकर संभव नहीं था। वापस लौटते ही उन्होंने भारत को जगाने के लिए सभी स्तरों पर कार्य किया। विशेषकर उनके शब्दों ने उस दौर को झकझोर दिया था।

अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वामी जी ने सबसे पहले राष्ट्रबोध जागृत किया। उन्होंने लोगों को यह आभास कराया कि हम विशिष्ट सांस्कृतिक इकाई हैं, हम अपने शासकों के विरुद्ध संगठित हैं। हिन्दुओं के विभिन्न संप्रदायों में भी विभाजन हैं। सभी एक-दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता था कि बस एक हिन्दू नाम के अतिरिक्त ऐसा कुछ भी नहीं था जो साझा प्रतीत होता हो, यहाँ तक कि हिन्दू नाम की कोई पहचान, सम्मान अथवा योग्य स्थिति हो। कुछ लोग तो हिन्दू नाम से पुकारा जाना भी नहीं चाहते थे। वे अपनी जाति और संप्रदाय को ही महत्व देते थे। इस सबके बाद भी स्वामी जी ने अद्वैत दर्शन के आधार पर सबको संगठित किया। उन्होंने सगर्व यह घोषणा की कि वे हिंदू हैं। इससे हिंदुओं का आत्मसम्मान बढ़ा। इसके अलावा भारत के प्रति लोगों के मन में प्रेम संचारित

किया। उनमें भारत भूमि के लिए बलिदान का भाव जगाया। उनका कहना था कि यदि किसी व्यक्ति को अपनी मातृभूमि के लिए कार्य करना है तो उसे बलिदान के लिए तैयार रहना होगा। कोई व्यक्ति तब तक बलिदान नहीं दे सकता जब तक कि उसके मन में मातृभूमि के लिए प्रेम न हो। 'भारत' के प्रति प्रेम जगाने के उनके प्रयासों के बारे में तो जैसफाइन मैक्सलोड ने कहा है, 'स्वामीजी भारत का उच्चारण ही इस तरह से करते थे कि उनके विदेशी शिष्यों के मन में भी गहराई तक इसकी गूँज निर्मित होती थी। स्वामी जी के मुख से इसका उच्चारण सुनकर ही भारत के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। उनके मन में कितना आवेग, करुणा रही होगी जिससे ऐसा प्रभाव उत्पन्न हो सका।'

स्वामी जी ने महसूस किया कि लगातार विदेशी आक्रमणों से भारतवासी आत्मरक्षा की मुद्रा में तो आ गए हैं, लेकिन इस आत्मरक्षा के प्रयास में वे आत्मकेन्द्रित भी होते जा रहे हैं। ऐसे में स्वामी जी ने लोगों के सामने भारत माता के महान आदर्शों का व्यापक दृष्टिकोण रखा। उन्होंने लिखा, हे भारत! मत भूल कि तेरे स्त्रीत्व का आदर्श सीता, सावित्री, दमयंती हैं; मत भूल कि तू जिस ईश्वर को पूजता है, वह तपस्वियों में सबसे महान तपस्वी, उमानाथ, परमत्यागी भगवान शिव हैं; मत भूल कि तेरा विवाह, तेरा धन, तेरा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए नहीं है, तेरे व्यक्तिगत आनंद के लिए नहीं है; मत भूल कि तेरा जन्म माता की वेदी पर बलिदान होने के लिए हुआ है; मत भूल कि तेरी समाज-व्यवस्था अनंत असीमित मातृत्व का ही प्रतिबिंब है; मत भूल कि निम्न वर्ग के लोग, अज्ञानी, दरिद्र, अशिक्षित, मोची, भंगी, तेरे ही माँस और रक्त हैं, तेरे ही भाई हैं। हे वीर! निडर बन, साहसी बन, गर्व कर कि तू भारतीय है और गर्व से यह घोषणा कर कि मैं एक भारतीय हूँ, सभी भारतीय मेरे भाई हैं। कह कि अज्ञानी भारतीय, दरिद्र और अभावग्रस्त भारतीय, ब्राह्मण भारतीय, परित्यक्त भारतीय, मेरे भाई हैं। कमर पर चिथड़ा लपेटने वाले, तू भी अपने उच्चतम स्वर में गर्व से यह घोषणा कर कि प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है, प्रत्येक भारतवासी मेरा जीवन है, भारत के देवता और देवियाँ मेरे ईश्वर हैं। भारतीय समाज मेरे शैशव का पालना है, मेरी युवावस्था का आनंद-उद्यान है, मेरी वृद्धावस्था का पवित्र स्वर्ग, काशी है। बोलो भाई, भारत की मिट्टी मेरा सर्वोच्च स्वर्ग है, भारत का उत्कर्ष ही मेरा उत्कर्ष है और दिन-रात यह दोहराओ और प्रार्थना करो, हे गौरीनाथ, हे जगन्माता, मुझे साहस प्रदान करो! हे शक्ति की देवी, मेरी दुर्बलता दूर करो, मेरी कायरता दूर करो और मुझे मनुष्य बना दो! स्वामी जी के इन शब्दों का युवाओं पर गहरा असर पड़ा और कई युवा देश के प्रति आत्मोत्सर्ग के लिए आगे आये। छोटे-छोटे समूहों के साथ अनौपचारिक बातचीत में स्वामीजी ने राजनैतिक स्वतंत्रता का तात्कालिक लक्ष्य ही देशवासियों के सामने रखा। क्रांतिकारी ब्रह्मबांधव उपाध्याय के अनुसार, एक बार ढाका में युवाओं का समूह उनसे मिलने आया तो उन्होंने कहा कि बंकिमचंद्र को पढ़ो और देशभक्ति और सनातन धर्म का अनुसरण करो। सबसे पहले भारत को राजनैतिक रूप से स्वतंत्र कराया ही जाना चाहिए। स्वामी जी के शब्द पर विचार और युवाओं पर गहरी छाप छोड़ रहे थे। इनसे प्रभावित होकर बड़ी संख्या में लोग स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आगे आ रहे थे, इनमें युवाओं की संख्या ज्यादा थी। इसका प्रमाण 'विद्रोह कमेटी' की रिपोर्ट में देखा गया। इस रिपोर्ट के मुताबिक ब्रिटिश सीआईडी जहाँ भी छापा मारती, जिस घर की भी तलाशी लेती वहाँ उन्हें विवेकानंद का साहित्य ही मिलता था। अपने विचारों और शब्दों से स्वामी जी ने लोगों के मन में और उस दौर में ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था कि लोगों के भीतर स्वतंत्रता की अलख जागी और वे इसके लिए लड़ने को तैयार हो गए।

संपर्क : 272, मंदाकिनी कोलार रोड, भोपाल

सुरेन्द्र माहेश्वरी

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा-चिन्तन

इतिहास पुरुष स्वामी विवेकानन्द ने वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित करते हुए अपनी ओजपूर्ण वाणी से भारतवासियों को जागृत करते हुए संदेश दिया है कि यदि भारत देश को अशिक्षा, कुसंस्कारों, असामाजिकता, संस्कारहीनता और दुर्बलता से मुक्ति दिलाना हैं तो जन शिक्षा को व्यापकता देनी होगी। श्रीरामकृष्ण ने भी कहा है कि " जब तक मैं जीवित हूँ तब तक सीखता रहूँगा। वह व्यक्ति, वह समाज जिसके पास सीखने को कुछ भी नहीं है वह पहले से ही मौत के झबड़े में है।" स्वामी विवेकानन्द कहते हैं जो शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से जो भी कमजोर बनाता है उसे जहर की तरह त्याग दो। हमारा कर्तव्य है कि हम हर किसी को उसका उज्ज्वल आदर्श जीवन जीने के संघर्ष में प्रोत्साहित करें। जीवन में उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिए हम जितना ज्यादा बाहर आये और दूसरों का भला करें हमारा हृदय उतना ही शुद्ध होगा और परमात्मा उसमें बसेंगे।

स्वामीजी का कथन है कि जिस शिक्षा द्वारा इच्छा शक्ति का प्रवाह और विकास लाया जाता है और फलदायक होता है वही शिक्षा कहलाती है। स्वामीजी का राष्ट्रव्यापी उद्घोष कि "मेरी समस्त भावी आशाएँ उन युवकों में केन्द्रित हैं जो चरित्रवान एवं बुद्धिमान हों।" उन्होंने आव्हान किया कि उठो मेरे शेरों ! इस भ्रम को मिटा दो कि तुम दुर्बल हो, तुम एक अमर आत्मा हो, सनातन हो, स्वच्छन्द जीवन हो। हमारी सोच ही हमे महान बनाती है।" हम वो हैं जो हमारी सोच ने हमें बनाया है। इसीलिए इस बात का ध्यान रखिए कि आप क्या सोचते हैं। शब्द गौण हैं, विचार प्रमुख है। वे दूर तक यात्रा करते हैं। अतः सुसंस्कारी शिक्षा की अनिवार्यता है। हमें ऐसी शिक्षा मिले कि हम हर किसी को उसका उच्चतम आदर्श जीवन जीने के संघर्ष हेतु प्रोत्साहित करें। किसी चीज से डरो मत। तुम अद्भुत काम करोगे। यह निर्भयता ही है जो क्षणभर में आनन्द लाती है। कुछ मत पूछो, बदले में कुछ मत माँगो, जो देना है वो देगा। वो तुम तक वापस आयेगा पर उसके बारे में अभी मत सोचो।

स्वामी विवेकानन्द वेदान्त और पाश्चात्य शिक्षा दोनों को साथ रखते हुए शिक्षा द्वारा विश्व कल्याण की भावना को प्रसारित करना चाहते थे। स्वामीजी का शिक्षा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। उच्च आदर्शो की अभिप्राप्ति के लिए शिक्षा को ही सर्वोपरि साधन मानते थे। मानव विकास के लिए आचरण शुद्धि, भाईचारा, संवेदनशीलता, बंधुत्व की भावना, दलितों का उद्धार नारी चेतना और समरसता की प्रधानता हेतु शिक्षा की अनिवार्यता है। शिक्षा द्वारा आज का बालक जब कल का नागरिक बने तो वह समाजसेवा, धार्मिक सद्भावना, जनशिक्षा और श्रेष्ठ नागरिकता की दिशा में प्रवृत्त होगा। विश्व शांति और अध्यात्म की दिशा में उन्मुख

करने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण संसाधन है। शिक्षा द्वारा ही अभूतपूर्व सामाजिक परिवर्तन संभव हैं। स्वामीजी का शैक्षिक चिन्तन जनकल्याणकारी होने के कारण ही विश्व समुदाय में आदरणीय रहा। यह गर्व की बात हैं कि स्वामीजी ने अपने शैक्षिक चिन्तन द्वारा ही विश्व पटल पर अपना धर्म ध्वज लहराया। उनका जीवन दर्शन व शैक्षिक चिन्तन आदर्श, अनुकरणीय तथा लोकोपकारी सिद्ध हुआ।

भारत देश एक बहुरंगी देश है। भाषा, आचरण, भाव, विचार, पहनावा, रीति रिवाज, संस्कार तथा जीवन शैली में भिन्नता होते हुए भी सभी को एक तत्व के रुप में मानते हुए शिक्षा से समाविष्ट किया है। स्वामीजी सभी धर्मो को समान मान्यता देते रहे है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण शिक्षण प्रशिक्षण का उद्देश्य मनुष्य निर्माण का ही रहा है। वर्तमान में शिक्षा व शिक्षण पर पाश्चात्य प्रभाव अवश्य है किन्तु स्वामीजी के शैक्षिक चिन्तन का पूरा प्रभाव समग्र शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिगत होता है। शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य की शारीरिक क्षमता, मानसिक, भावात्मक, धार्मिक नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक विकास करना है। शिक्षा द्वारा मानव अपनी वैचारिक मुक्तता के साथ ही देश भक्ति से परिपूर्ण रहकर राष्ट्र के लिए समर्पित हो सके, वही सच्ची शिक्षा है।

शिक्षा ऐसी हो जो मानव मन में आत्मविश्वास, आत्मश्रृद्धा, आत्मत्याग, आत्मनियंत्रण, आत्म निर्भरता तथा आत्म ज्ञान जैसे विशिष्ट गुणों का प्रादुर्भाव कर सके। स्वामी जी ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि '' जिस शिक्षा से हम अपने जीवन का निर्माण कर सके, चरित्र गठन कर सके और विचारों का सामंजस्य कर सके वही शिक्षित कहलाने योग्य है। स्वामीजी के अनुसार शिक्षा बच्चे की आवश्यकता और स्वाभाव के अनुसार होनी चाहिए। वे ऐसे बालकों का निर्माण चाहते थे जिनके चेहरे पर आभा, शरीर में बल, मन में प्रचण्ड इच्छा शक्ति, बुद्धि में पाण्डित्य, जीवन में स्वावलम्बन, हृदय में शिवा, प्रताप, ध्रुव तथा प्रहलाद की जीवन गाथाएं अंकित हो और उन्हें देखकर महापुरुषों की स्मृतियाँ झंकृत हो उठे।

बालकों की शिक्षा के लिए शिक्षकों को अपने चरित्र और व्यक्तिगत जीवन को आदर्श रुप में प्रस्तुत करना होगा। स्वामीजी इसीलिए परोपकारी पुरुषों को ही शिक्षण व्यवसाय के लिए उपयुक्त मानते थे। उनके विचारानुसार शिक्षकों के शब्दों का प्रभाव शिष्यों पर तभी होगा जब शिक्षक मन और हृदय से पवित्र होगा। सच्चे गुरु उसे माना हैं जो बालको को उनकी आँखों से देख सके, उनके कानों से सुन सके और उनके मन को समझ सके। ऐसा गुरु ही अपनी आत्मा को शिष्यों की आत्मा में स्थानान्तरित कर सकता है। अनुशासन स्थापना के लिए उन्होने दण्ड के स्थान पर आत्मानुशासन पर विशेष बल दिया। वे चाहते थे कि विद्यार्थी में नम्रता, विनयशीलता, आचारशुद्धता, सीखने की जिज्ञासा, संघर्ष की क्षमता, ज्ञान पिपासा, एकाग्रता तथा गुरु भक्ति आदि विशेषताओं की अनिवार्यता हो।

बालिका शिक्षा के महत्व को प्रतिवादित करते हुए स्वामीजी ने कहा हैं कि'' स्त्री जाति की उन्नति के बिना भारत कभी भी विकास नही कर सकता। उस देश व राष्ट्र के महान बनने की कोई आशा नहीं की जा सकती जहाँ नारी जाति का अपमान हो और वह अशिक्षा के बंधन से मुक्त न रह सके।'' उनकी दृष्टि में निर्धनता, दरिद्रता जनशिक्षा की राह में सबसे बड़ी बाधा है। जन शिक्षा को महत्ता प्रदान करते हुए उन्होने कहा हैं कि ''जन शिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति को उसके समाज, देश और विश्व के साथ संबंधित कर मानवता की भावना का विकास करती है। विश्व के प्रति संवेदनशील वही हो सकता हैं जो राष्ट्रहित के लिए मन वचन और कर्म से तत्पर हो वही सच्चा भारतीय कहलाने योग्य है।

स्वामीजी ने वर्तमान शिक्षा की न्यूनताओं का वर्णन करते हुए बताया कि '' आज की शिक्षा की सबसे बड़ी खामी यह है कि इसके सामने अनुकरण करने के लिए कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। एक चित्रकार अथवा मूर्तिकार यह जानता हैं कि उसे क्या बनाना है तभी वह

अपने कार्य में सफल हो पाता है। आज शिक्षक को यह स्वष्ट नहीं हैं कि वह किस लक्ष्य को लेकर अध्यापन कार्य कर रहा है। सभी प्रकार की शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करना है। इसके लिए वेदान्त के दर्शन को ध्यान मे रखते हुए मनुष्य निर्माण की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए।

आज की शिक्षा अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबन्धक, प्रशासक तो तैयार कर रही है लेकिन वो इन्सान तैयार नहीं कर पा रही है जो संवेदनाओं से परिपूर्ण हो, जिसमें मानवता निवास करती हो, जो सृजनशील हो जो समाज के पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने में परिपूर्ण हो। इसका नितान्त अभाव है। स्वामी जी ने विश्व शांति की परिकल्पना से अभीभूत होकर शिक्षा के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन चाहते हुए कहा है कि हम बालक को एक ऐसे नागरिक के रुप में विकसित करना चाहते है जो विश्व के नागरिकों की तकलीफ दुख दर्द, अभाव, कष्ट, व्यथा, संताप का अनुभव कर सके। हमें ऐसा आदमी नही चाहिए जो मात्र अनुभव करे पर ऐसा आदमी चाहिए जो वस्तुओं और स्थितियों को परिपूर्ण बना सके। जो प्रकृति को पूरे मन से गहराई तक समझ सके उसमें खोज कर सके। हमे ऐसा मनुष्य चाहिए जो रुके नहीं पर निरन्तर कार्य करें और कार्यो को सही रुप में सम्पूर्णता तक पहुँचा सके।

स्वामीजी ने युवा पीढ़ी को सन्देश दिया है कि तुम जीवन का एक ध्येय बना लो, उसपर मनन करों उसके सपने देखो शरीर का प्रत्येक अंग उस लक्ष्य से आप्लावित हो अन्य सभी विचारों को छोड़ो, कठिन परिश्रम करों अगर तुम जीवों या मरो कोई गम नहीं बिना परिणाम सोचे अपने ध्येय की पूर्ति में लगे रहो तो मात्र छः माह में लक्ष्य की सिद्धी निश्चित होगी। स्वामीजी का विचार था कि रोगी चिकित्सक के पास जाने को तैयार नहीं हो तो चिकित्सक ही रोगी के पास क्यों न जाए ? यदि गरीब लोग शिक्षा के निकट नहीं आ सकते तो शिक्षा को ही उनके लिए खेतों पर उनकी फेक्ट्री या सर्वत्र जाना होगा।

स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक चिन्तन बड़ा व्यापक था। उन्होने धर्म की शिक्षा नारी शिक्षा तथा जन शिक्षा पर विशेष बल दिया है। वे जीवनोन्मुखी और विचारोत्तेजक शिक्षा के पक्षधर रहे है। वे भारतीय समाज के सुधार हेतु शिक्षा में कला, विज्ञान, साहित्य और संस्कृति ज्ञान के पोषक रहे है। वे शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन से ऐसा भारत चाहते थे जो परम्परागत अंध विश्वास, पाखण्ड, अकर्मण्यता, जड़ता और आधुनिक सनक तथा कमजोरियों से स्वतन्त्र रहकर आगे बढ़े। स्वामीजी शिक्षा द्वारा लौकिक और पारलौकिक दोनों को जीवन के लिए तैयार करना चाहते थे। कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक बनने की उनकी सीख रही है।

स्वामीजी के शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक कर शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास हो सके। बालक के चरित्र का विकास हो, उसका मन विकसित हो, बुद्धि बढ़े और आत्मनिर्भरता की दिशा में उन्मुख हो सके। बालक व बालिकाओं की समान शिक्षा व्यवस्था हो। धार्मिक व नैतिक शिक्षा पुस्तकों के स्थान पर आचरण व संस्कारों से दी जानी चाहिए। लौकिक व पारलौकिक ज्ञान की शिक्षा ग्रहण कर सके। गुरु शिष्य का निकटतम सात्विक संबंध हो तथा शिक्षा जन शिक्षा के रुप में सर्वसाधारण को शिक्षित कर सके। उन्होने देश को विकसित करने के लिए तकनीकी शिक्षा को महत्व दिया। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है अतः शिक्षा यही से प्रारम्भ हो इसके लिए परिवार संस्कारवान पाठशाला के रुप में प्रस्तुत हो सके।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने भारत राष्ट्र को सर्व शिक्षा से जाग्रत करते हुए विश्व बंधुत्व व वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को प्रगाढता प्रदान की। उनका शैक्षिक चिन्तन ही इस दिशा में सर्वोपरि रहा तथा विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति को प्रचारित करते हुए उसे अपने शैक्षिक चिन्तन से लाभान्वित किया।

संपर्क : प्रधानाचार्य-राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
टहुँका, जिला-भीलवाड़ा (राजस्थान)
मो. 9829925909

दिलीप 'विद्यानंदन'

दिव्य विवेकानंद

हे! ब्रह्मचर्य के ज्योति पुंज,
वेदांती ज्ञानी संन्यासी।
अद्भुत सम्मोहक व्यक्तित्व,
दुनिया दर्शन को थी प्यासी॥
बंगाल प्रांत की भूमि धन्य,
धन्या माता भुवनेश्वरी।
पितु विश्वनाथ जी के आँगन,
यह आलोक प्रभा उतरी॥
तेजोमय ताम्रवर्ण दीप्त भाल,
था नेत्रों में भाव अनूठा।
डिगा सका ना प्रबल प्रलोभन,
पड़ गया वहाँ आकर झूठा॥
युवकों के लिये प्रेरणा हो,
यौवन को संयम में ढाला।
आस्था विश्वास के चरण बढे,
राष्ट्रोन्नति का था मतवाला॥
वेदांत सत्य साकार किया,
यूरोप-अमेरिका को बतलाया।
'मानव-धर्म' का सहज योग,
परिवर्तन असीम लेकर आया॥
कर जोर हृदय से करते हम,
गुरू रामकृष्ण जी का वंदन।
दिया विवेकानंद-दिव्य,
भारत-भू के भाल का चंदन॥

संपर्क : पी.जी.टी.(हिंदी)
केन्द्रीय विद्यालय, नाभा छावनी, जिला - पटियाला (पंजाब)
मो. 08437752641

अजय कुमार दुबे

रिसते घाव

एक दिन उसकी मेरी निगाहें मिलीं तो उसने मेरी ओर व्यथा से देखा, लगा था कि मेरा दर्द उसे व्यथित कर रहा है। क्या तुम्हें दर्द नही होता ?'' ''होता है'' आप तो जानते हैं, मेरा दर्द। मैंने लोगों की गंदगी बहा ले जाने का ही का किया है। लोगों को अपने अंदर की गदगी बाहर फैंक देने की आदत है। जैसे-जैसे विकास हुआ है, आदमी गंदा और गलीज होता गया है।

उसने बातचीत इस प्रकार शुरु की, जैसे भरी हुई बैठी हो और जरा किसी के उकसाने पर फूट-फूट कर रो पड़े।

''बड़ी-बड़ी आलीशान कोठियों से लेकर झुग्गी-झोपड़ी अलग-अलग रूप है मेरा। आलीशान कालोनियों मे कूड़ा करकट, गंदा-मैला सब ढँका छिपा रहता है, जो जमीन के नीचे बने विशाल गढ्ढों में समाता जाता है और वही गंदगी बड़े और विशाल रूप में धरती की छाती-फाड़ कर निकल पड़ती है। उनकी देखा-देखी दिखावटी जिंदगी जीने का आदि मध्य वर्ग भी अपने मकान में चारों ओर नाली को फटकने भी नही देना चाहता। घर साफ-सुथरा रखना चाहते हैं। सारी गंदगी नाली में फेंकते है और मेरा पेट फट जाता। सारा मैला सड़क पर बहने लगता है।

''सारा शहर गुटखों के पाउचों की थैलियों से अटा पड़ा है। सड़क पर, मकानों के बाहर, गली-कूँचों पर हर जगह, कही गुरु पड़ा है, कही संजोग है कही पावर है। जैसे राजनीति का अखाड़ा हो। राजनीति में कोई गुरु सा गुर्रा रहा है, कोई संजोग से पावर में है, सो इतरा रहा है। कहीं पावर कट है, कही पावर ही पावर है और नये-नये कीर्तिमान बना रहा है। आपको मालूम होगा-नाली समाज का दर्पण होती है। अक्सर महिलाओं में सुना जाता है,''उसकी नाली मेरी नाली से गंदी क्यों?''

वे क्या जाने। जो जितना गंदा होता है, वैसी ही गंदगी फैलाता है। सब मिल कर मुझे कोसते हैं मेरा कसूर क्या है अगर मैं गंदी हूँ। ये गंदगी मेरी अपनी तो नही। मैं आदमी, औरतों के दिमाग की, शरीर की, सभी गंदी बातों, गंदे सोच की निकासी हूँ। वे तो सभी अपना सब कुछ नाली में फैंक कर चैन की वंशी

बजाते हैं लेकिन चैन फिर भी नहीं मिलता। उसके जूनून,उसके क्रोध,उसके आतंक परिणाम है- मेरा भरा, कटा-फटा पेट। अपने अचार दुराचार, दुरव्यवहार स्वयं इसान का खून मेरी रगों, नसों में बहा है। कभी उसकी लाश मेरे उपर पड़ी होती है, क्षत-विक्षत घायल और खून बहता है, मेरे साथ-साथ। अनेकों बार दंगों लड़ाई-झगडों और युद्धों में समाज के दोरंगापन, दोरंगे आचार-विचार, क्रिया-क्रलापों को मैंने सहा है, भोगा है, पी गई हूँ, सभी जहरों को बार-बार और वह गलीज होता गया है। आदमी जितना आगे बढ़ा है, उतना ही बोझ बढ़ा है मेरे कंधों पर। मेरे कंधे झुक गए है कमर टेढ़ी गई है। शरीर उथला हो गया है-गंदगी ढ़ोते-ढ़ोते। सड़क, गली अक्सर लड़ती रहती है, मुझसे, ''तू अपना गन्दा सँभाल नही सकती, जब देखो गंदी गलीज फैंक देती है मेरे ऊपर। हद हो गई। कई बार कहा है, अपनी गंदगी अपने पास रखों लेकिन तू है कि मानती नही, गंदी नाली कही की।''

''मैं क्या करूँ? आदमी भी कहाँ बाज आता है, कई बार निवेदन किया समझाया, शिकायत भी की, उसे कहाँ फिक्र है, मुझ अबला की।''

इस बात को कई बार कह चुकी हूँ। मुझे देख कर नाक भौं सिकोड़ना, घृणा भरी नजर से देखना अलग बात हैटौर मेरे बारे में तरह की बातें करना अलग बात। अपने-अपने मकानों, दुकानों, अट्टालिकाओं, आलीशान कोठियों अस्पतालों, फैकटियों से इस कदर लोग कूड़ा फेंकते हैं कि लगता है जेसे बरसात हो रही हैं। अपने किचन की खिड़की से, दरवाजों से आँगन से संडास की खिड़की से जिसे देखो वही फैंक रहा है। सोते जागते, उठते बैठते, आते-जाते, बस फैंक रहा है। जिससे मन भर गया, उठाया और फैक दिया- डिब्बे, टूटे पैन बेकार, अखबार आम की गुठली, छिलके, झूठन, नेपकिन, काँच-प्लास्टिक की बोतलें और भी न जाने क्या-क्या। ऐसी बरसत होती है कि कुछ न पूछो। अपना घर साफ कर अपनी गंदगी दूसरे पर फैकना परम्परा बन गई है। यहाँ तक कि पश्चिमी संस्कृति की अंधी दौड़ में आदमी का स्वार्थ जिससे नहीं सधता उसे फैंक देता है, वृद्धा आश्रम इसके जीते जागते उदाहरण, देखो-देखो चारों ओर अपने आसपास कितना कूड़ा करकट इकट्ठा हो गया है। तुम तो मुझ पर चिल्लाती हो, उधर बड़े भईया अलग मुझ पर बरसते है, ''क्या-क्या ढ़ो लाती है, कुछ अक्ल भी है तुम्हें, इतनी मरती-खपती रहती। तुम भी अपना सारा मैला इधर-उधर डाल दिया करो। कुछ सड़क पर कुछ लोगों के मकानों में। दुनिया उल्टी बह रही है, तुम भी उल्टी बहना शुरू कर दो, फिर देखो। कोई क्या कर लेगा, देखा नही, नेता क्या कर रहे हैं, उनका कोई कुछ कर पा रहा हैं? किसे फुरसत है, इस कूड़ा शहर में। सब देख रहे है, सब अंधे हैं, देख रहे है दूसरों को, अंधे हैं अपने लिए। तुम भी करो जो मन चाहे।''

लेकिन मैं जानती हूँ, उल्टे बहने से बड़ों की गंदगी गरीबों पर ही तो जाएँगी। चौथी, पाँचवी, बीसवीं मंजिल तो चढ़ नही सकती। नतीजा यह होगा गरीब की झोपड़ी मकान गंदगी से भर जाएगा। वैसे भी कौन कमी है वहाँ पर और कोई चारा भी नही है। मैं आदमी जितनी भ्रष्ट तो नही हो सकती न।''

कोशिश तो मैने की है कि अपनी गंदगी सड़क पर उलट दूँ। परंतु क्या करूँ, नई सड़क बन जाने से मैं ही नीची हो गई हूँ, सड़क ऊँची। मैं भी चाहती हूँ कि ऊँचा उड़ूँ इतना ऊँचा कि लोगों के मकानों की खिड़की तक पहुँच सकूँ। जहाँ कही मौका मिलता है, मैं भी कहाँ चूकती हूँ। मेरा क्या है समाज की स्थिति पर ही मेरा होना न होना निर्भर करता है। महानगरों की बड़ी विशाल भीषण गंदगी मैन होल ले जाता है मरन तो हम छोटी-छोटी नालियों की होती है।

गंदगी का अनोखा महा-सम्मेलन देखना हो तो बड़े सरकारी अस्पताल, रेलवे स्टेशन, सार्वजनिक पार्क, मैदान, पुराना शहर और गरीबो की बस्ती, पाँच सितारा होटलों के किचन देखो। अक्सर एक दूसरे से कहती मिल जाएगी ''तुम मुझ से साफ क्यों?''

गरीब की लुगाई सबकी भौजाई, जिसे देखो वही हड़का रहा है। मैं नाली अबला हूँ जिसे जो समझ में

आता है, फेंक देता है मेरे उपर 'लो संभालो'। नगर व्यवस्था में सफाई की बड़ी लोहे की मशीनें आ गई हैं। जो जब कभी आ जाती है-बड़े भइया काँप-काँप जाते है, उनका दु:ख देखा नही जाता। इस बुरी तरह से रौंदते हैं कि सारा शरीर जख्मी हो जाता। मेरी जब किसी को याद आ जाती है तो कूड़ा निकाल कर सड़क पर और जब कभी सड़क साफ की जाती है तो सड़क का कूड़ा मेरे ऊपर फैंक दिया जाता है। मेरा मुझ में और उसका भी मुझ में। मन हुआ उठा लिया नही तो पड़ा है। जरा सी बरसात हुई नही कि कि सारी गंदगी सड़क पर। कही-कही तो बड़ा अच्छा नजारा देखने को मिलता है, कही मैं सड़क पर,कही सड़क मुझ पर। यह सड़क समागम चलता रहता है, अनवरत कभी इधर कभी उधर।

काफी देर हो गई थी। उसकी बातें खत्म होने को ही नही आ रही थी। मैंने कहा, ''बड़ी देर हो गई,अब चलता हूँ। उसकी शक्ल देख कर लगा, अभी और भी बाकी हैं-रिसते घाव।'' हाँ-हाँ जाओ, कोरी हमदर्दी सब करते है, राजनेताओं के आश्वासनों के तरीके से रिसते घावों पर फाहा रखने का क्या फायदा-वे तो रिसते रहेंगे और तुम्हारे चारो और गंदगी का साम्राज्य हो जाएगा।'' उसने बददुआ दी। जाते-जाते कानों में दुखिया का चीत्कार सुनाई पड़ा-''और कौन है यहाँ इस बेवा का।''

कई दिन हो गए थे। सोचा आज हालचाल पूँछ लूँ। देखते ही व्यंग से फूट पड़ी -''आखिर आ ही गए उसका भाव देख कर उसकी ओर देखने की हिम्मत न कर सका। आँखों में ऐसा कुछ था, जिसे देख कर उसके घावों के दर्द का अहसास हुआ-अव्यक्त।

तुम्हे क्या है, जी रहे हो आराम की जिंदगी। सुबह दस बजे दफ्तर गये, पाँच बजे वापिस दोस्तों में। मैं रात-दिन अनवरत बहती रहती हूँ, सावन-भादों में, गर्मी में, ठंडी में। हमारी ओर कौन देखता है न ही कोई चाहता है। जायो-जायो मेरे पास खड़ा देख कर तुम्हे भी लोग जाने क्या क्या कहने लगेंगे। मेरी स्थिति तो बदनाम गलियों की की तरह हो गई है जहाँ लोग छिप कर जाते हैं। मैं तो वैश्या से भी गई गुजरी हो गई है कौन किसका मुँह पकड़ पाया है। आदमी ने अपने अहं का सारा कहर इसी नाली पर ही तो बरसाया है। उसके बर्बर अमानुषिक क्रोध का शिकार समाज में दो ही हुए है-नारी और नाली। नारी को उसने अपनी हवस, क्रोध नफरत के परिणामस्वरूप वैश्या के रूप में समाज को दिया है। वहीं नाली को भी इसी विवशता से गुजरना पड़ा है। मैं समाज में घट रहे प्रत्येक क्षण की साक्षी रही हूँ। विश्वास न हो तो जरा शहर का चक्कर लगाकर देखो। अनेक रूपों में दिखूँगी। कहीं मेरा रूप संकीर्ण है, तो कहीं फैल गई हूँ, कही बुढ़ा गई हूँ, कहीं जर्जर हूँ, कही फोड़ा हूँ, कहीं संवेदनशील भी मिल जाऊँगी। कभी डर जाती हूँ, कभी सहम जाती हूँ, कहीं सड़क पर हूँ, कही किसी के घर से गुजर जाती हूँ। बाहर निकल कर मेरा रूप बदल जाता है। मेरा रूप हर दस कदम पर बदल जाता है। जवानी देखे तो अर्सा बीत गया। मेरा हाल देख कर भी आदमी नही समझ रहा है लेकिन मैं देख रही हूँ भविष्य में भीषण सूखा जिसे देखकर वह त्राही-त्राही कर उठेगा।

हर प्रांत, शहर कस्बे,गाँवों की नालियों में कुछ वी.आई.पी. कुछ नेता नाली है, कुछ पुलिस नाली है, वी.आई.पी. नालियों में रात्रि में होने वाली पार्टियों की झूठन ,शराब, नेताओं,अधिकारियों गैरत बहती है उनकी पत्नियों का मेकअप बहता है। अधिकारियों का ईमान बहता है और अंत में सारा चरित्र बह जाता है। यह सब चलता रहता है, अनवरत, कभी ज्यादा कभी कम। हाँ यहाँ सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। सफाई होती रहती नियम से लेकिन मेरी गंगोत्री भी यही है।

मैने टोक दिंया,''तुम्हें तो बड़ी जानकारी है। समाज की? क्या कुछ देखा भी है या यूँ ही, सुनी सुनाई बेपर की उड़ा रही है।''

नाली ने मेरी ओर गुस्से से देखा, चेहरा तमतमा गया, बोली-''मैंने जो देखा-सुना है वो तो शब्दों में कहा भी नही जा सकता हाँ! फिर भी तुम्हारी मंशा है तो मैं तुम्हें बहुत-सी अंदर की बाते बता कर अपना हाजमा

भी ठीक कर लूँगी, बहुत है जो कुलबुली रही है निकल पड़ने को।''

शहर के सिविल लाईन्स में मेरा स्वरूप देखने योग्य मेरा असली रूप यहीं दिखाई देता है। सारे ढपोरशंखी प्रदर्शन यहीं होते है। सिविल लाईन्स में कुछ लोग अपने को पढ़ा-लिखा समझने वाले हाय तौबा मचाते है। सबसे गंदे लोग यही मिलते हैं, मन से भी शरीर से भी। उसी दिन कोने वाले मकान में रहने वाले शराब के नशे में धुत्त लड़खड़ाते हुए रात के दो बजे क्लब से लौटे ,यही मुँह के बल गिर पड़े, कमीज के बटन खुले हुए थे और गिरते हुए पेंट की चैन भी खुल गई। इतनी तेज गंध आ रही थी कि मैं नाली भी सिहर गई। लगता था महीनों से नहाया न हो। कमर के नीचे का हिस्सा बालों के जंगल से भरा था और लगता था कि जैसे स्त्री संसर्ग से उठ कर सीधे यहाँ आकर गिर गए हों क्योकि वो गंध मैं अच्छी तरह पहचानती हूँ। स्त्री-पुरुष से स्खलित होने से निकलती गंध। कोई दो घंटे बाद स्वयं उठ कर अपने घर की घंटी बजाई थी। इससे पहले उनके घर से नशे में धुत्त एक आदमी निकल कर जा चुका था। उसने भी ध्यान नही दिया कि कौन पड़ा है नाली में।

यहीं के लोग अपने को ज्यादा शिक्षित समझते है और जब तब जागरुक होने का सबूत देते रहते है। एक रात शांत पड़ी सो रही थी कि किसी के चिल्लाने की आवाज सुन कर जाग पड़ी, आवाज आ रही थी, साली कुतिया, मेरी बात नही मानती तेरे खसम आते हैं तो सारा प्रेम उमड़ आता है और जब मैं कहता हूँ तो बीमारी का बहाना करती है, ''बालों को पकड़ कर सिर दीवार में दे मारा और सुबह खबर मिली- मेमसाब सीढ़ी से गिर कर मर गई। तुम्ही बताओ क्या प्यार भी जबरदस्ती पा सकता है कोई। प्यार के लिए प्यार ही तो करना पडेगा। बाद में सब ठीक हो गया और मेमसाब सीढ़ी से गिरी मान ली गई। अनेको किस्से हैं कहाँ तक बताऊँ। ऐसी बातें भी देखने को मिल जाती कि कुछ कहते नही बनता जिन दिनों दंगों में सारा शहर जल रहा था, एक युवती दौड़ती हुई चिल्ला रही थी-बचाओ-बचाओ। सभी सिविल लाईन्स की दरवाजे बंद हो गये थे और खिड़कियाँ खुली हुई थी और उनमें से चेहरे झाँकते तमाशा देख रहे थे। नुक्कड़ का चाय वाला अपनी दुकान बंद कर रहा था, उसने इस भयभीत लड़की की जान बचाई थी। वो भिड़ गया उन दरिंदों से जो तलवार लिए दौड़ रहे थे, खून बहाने को। लाठी से सबको मार भगाया था। सुबह सबने तारीफ की थी।

लेकिन गरीब इलाकों में तो लोग आवश्यकता तक नही समझते, मेरी ओर देखने की-मेरी सफाई होनी चाहिए। जैसा चलता है वैसा चलता रहता है। किसको इतनी फुरसत है। गरीब न तो पढ़ा होता है न ही लिखना ही जानता इसलिए मैं भी पड़ी रहती हूँ अलसाई सी,जस की तस। धीरे-धीरे मेरा रूप बिगड़ने लगता है और जल्दी ही बुढ़ा जाती हूँ, गरीब की औरत की तरह। अशिक्षा के कारण मेरे भी एक के बाद एक बच्चे, छोटी-छोटी नालियों का जन्म होता जाता है।

मैं भी धीरे-धीरे समाज पर बोझ बनती जाती हूँ आदमी के बच्चों की तरह। मेरा दुख किसे दिखा है, अपना दुख बहुत है, लोगों को देखने के लिए, दूसरे का कौन देखे।

मैं भी चकित था इस नाली की सोच पर, शर्मिंदा भी हुआ कि कितना दुख-दर्द भरा है-नाली के शरीर,दिल दिमाग में, घाव के अंदर घाव हैं, अनन्त और मवाद पड़ गया है जो धीरे-धीरे रिस गया है इस समाज में। यह नासूर कैसे खुशहाल जिंदगी दे सकता है। खुशहाल जिन्दगी जीने के लिए किसी को आगे आना होगा, नाली की जिंदगी सुधरने के लिए। आखिर वो दिन कब आयेगा?

क्यों क्या सोचने लगे, पड़ गये न चक्कर में। ये ऐसी भूलभुलैया है, जिससे पार पाना आसान नही है भ्रष्टाचार के समुद्र में मुझ जैसी छोटी-सी नाली को कौन पूछता है। मैं तो पड़ी हूँ अनन्त काल तक किसी सुबह के इंतजार में। शायद कभी उद्धार हो जाए।

संपर्क : 691,सिविल लाईन्स, झाँसी (उ.प्र.)
फोन नं. 0510-2447313

ध्रुसित बूच

मेरे गरबे में

अनुवाद : क्रांति कनाटे

मेरे गरवे में लाख-लाख ज्योति,
कोई झेलने वाला आता नहीं।
मेरे गरबे में लाख-लाख मोती,
हो, बीनने वाला आता नहीं।
मेरी चुनरी में फूलबेल खिली,
कोई झूलने वाला आता नहीं।
मेरे हैया में रूप का रेला,
हो, रीझने वाला आता नहीं।
मेरी झाँझर में अमृत फुहार,
हो, भीगने वाला आता नहीं।
मेरे हैया में बावरी एक मछली,
कोई बींधने वाला आता नहीं।
मेरा जोबन है पंख रहा खोल,
कोई झुलाने वाला आता नहीं।
मेरे हैया में मौन रहा बोल,
हो ताड़ने वाला आता नहीं।

गरब = मिट्टी की रंगीन, सुसज्जित तथा छिद्रयुक्त छोटी-सी मटकी जिसमें नवरात्रि में दीपक रखा जाता है।

इस रस्ते पर

दिन-रात अँधियारा दौड़ता
इस रस्ते पर,
रात-दिन उजियारा होता
इस रस्ते पर।

कौन छा जाता? समझ न आता
इस रस्ते पर;
मन नहीं माने! हृदय पिराए
इस रस्ते पर।

दर्द मिला पर न बँट पाता
इस रस्ते पर
धीमे-धीमे जल छिड़काता
इस रस्ते पर।

भले जियूँ मैं, भले मरूँ मैं
इस रस्ते पर
न खिल पाता, न खिर पाता
इस रस्ते पर।

अनसोचा अँधियारा दौड़ता
इस रस्ते पर
बेरोक उजियारा बहता
इस रस्ते पर।

आज सुबह

आज सुबह एक फूल खिला
और हवा में गूँजी प्रीत,
आँख मिची मैंने, दिल खिला
और कुहुक उठा एक गीत।

कौन आकर बरसा
यह तो मैं भी न जानूँ,
कोई अनदेखा आया
मन ही मन मानूँ
बरसन-आने की तो
होती ऐसी ही रीत।

फूल बना मैं? पवन हुआ?
क्यों यह हराकच?
झूला मेरा आकाश छुए
कि आकाश पधारे घर।
नहीं रे नहीं मेरी नहीं,
किसी और की-
आज हुई है जीत।

बेड़ा पार

मैं खुद अपना लश्कर,
मैं खुद अपना हथियार,
मैं खुद अपना बखतर,
पड़े पुकार तो हूँ तैयार।
ऊँचे-ऊँचे हो गए झाड़?
मैं तैयार।
बीच में बाधा बने पहाड़?
मैं तैयार।
नई लड़ाई? नया दाँव?
मैं तैयार।
चाहो, तो लो अवसर का लाभ
मैं तैयार।
अपने सिवाय किसका बखतर?
अपने सिवाय किसका हथियार?
अपने सिवाय दूजा कहाँ लश्कर?
जो समझे, उसका बेड़ा पार।

संपर्क : 203, टॉवर-3, साईनाथ स्क्वेयर,
मदर्स स्कूल के पीछे, जलाराम चौकड़ी,
बड़ौदा-390021
मो. 09904236430

डॉ. रामयश बागरी

लोकायन

सब के घर मा देवारी
हमरे घर मा घुप्प हय
हम सब कुछु लखित हन
पय तऊ चुप्प हय।
हम काम करिथन हय
पय हाँथ हमार बंधे हय
कान्धा हमार बन्दूक
ऊं धरे हय।
जऊन पहिले सुनके
चऊ आत रहने
आज बोही देखित हय
पय घाऊ घुट पहय
सबके...।।
जब से पुलिस चउकस
चउबन्नी होइ गय
चोर उचक्का चका
चक्का कोई गे
लाल बत्ती लप्प
लुप्प होइ गय
सबगे घर मा दिया
देवारी हमरे घर मा
घुप्प है।

संपर्क : पन्ना नाका, सतना (म.प्र.)
मो. 9977386090

नियति सिंह

राजस्थान का बलिदान

वीर भूमि है राजस्थान, सभी करें इसका गुणगान।
अमर सपूतों का बलिदान, कण-कण में भर दे अभिमान।।

यह राणा प्रताप की धरती, सब में अद्‌भुत साहस भरती।
मातृ भूमि हित जीवन अर्पित, आन-बान के लिए समर्पित।
स्वाभिमान का अंतर्मन में, घास की रोटी खाई वन में।
राजमहल के व्यंजन त्यागे, झुके नहीं अकबर के आगे।।
दिया देशहित जीवन अपना, पूरा किया अधूरा सपना।
कभी न अपना धीरज खोया, बल पौरुष सदा सँजोया।।

धीर वीर योद्धा बलवान, किया अनोखा कार्य महान।
वीर भूमि है राजस्थान, सभी करें इसका गुणगान।।

रक्तताल की अमर कहानी रामशाह जैसा बलिदानी।
देश प्रेम की धधकी ज्वाला, बना दिया इतिहास निराला।
बलिदानों की अमर कहानी, धन्य हुई नारियाँ सयानी।
मातृभूमि हित ममता त्यागी, बना दिया जीवन बैरागी।।

देख तेज तलवार दुधारी, दिया शत्रु को चकमा भारी।
कुँवर उदय के प्राण बचाई, अमर हो गई पन्ना दाई।।

हुआ बहुत बैरी हैरान, असली मर्म न पाया जान।
वीर भूमि है राजस्थान, सभी करें इसका गुणगान।।
बजी जभी रौरव रणभेरी, घिरी युद्ध आपदा घनेरी।
मातृभूमि की लाज बचाने, बलिबेदी की सुछवि सजाने।।
निकल पड़ी जयघोष लगाती, चली वीर गाथाएँ गाती।
वीर व्रती नारियाँ निराली, जौहर व्रत अपनाने वाली।।

कर्णवती, पद्‌मिनी सतियाँ, अमर हुई जिनकी आहुतियाँ।
आओ उनको शीश झुकाएँ, उनको निज आदर्श बनायें।।

है जिनका अतुलित अवदान, किया जिन्होंने अग्नि स्नान।

वीर भूमि है राजस्थान, सभी करें इसका गुणगान।।

युद्धभूमि में कदम बढ़ाते, संकल्पों के सुमन चढ़ाते।
राव चले थे विचलित मन से, मोह नहीं था निज जीवन से।।
अनुपम ओज भरा था तन में, रानी की चिंता थी मन में।
जौहर का भय आया छिपने, एक निशानी माँगी नृप ने।।
रानी ने भय दूर किया था, अपने सिर को काट दिया था।
कटा हुआ सिर सजा थाल में, खिंची शौर्य की रेख भाल में।।

हाड़ी रानी का बलिदान, मन भर देता सम्मान।
वीर भूमि है राजस्थान, सभी करें इसका गुणगान।।

था चेतक घोड़ा अलबेला, रुका नहीं बढ़ चला अकेला।
मातृभूमि की चाह उसे थी, राणा की परवाह उसे थी।।
अपने प्राण डाल संकट में, डटा रहा रण में झंझट में।।
घायल राणा हुए समर में, उनको लेकर भागा क्षण में।
पथ में बाइस फिट की खाई, कूदा अपनी जान गँवाई।
राणा जी का प्राण बचाया, हुआ शहीद अमर पद पाया।।

अम्बर में गूँजा जयगान, जय-जय चेतक वीर महान।
वीर भूमि है राजस्थान, सभी करें इसका गुणगान।।

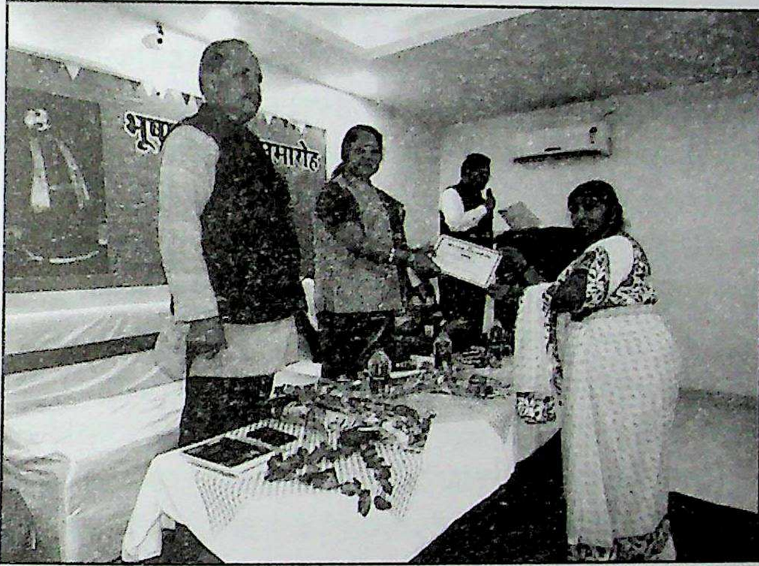
संपर्क : द्वारा-श्री पंचबहादुर सिंह
ग्राम व पोस्ट वरवारीपुर, वाया कादीपुर,
जिला-सुलतानपुर (उ.प्र.) -2281451

शिवाजी व सुराज : अनिल माधव दवे

दमोह : प्रो. यशवंत गुर्जर : पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि लेखक का उद्देश्य केवल शिवाजी का चरित्र दर्शन करना नहीं है बल्कि उनके द्वारा स्थापित एवं प्रशासित राज्य के व्यवस्था का अध्ययन करना है। प्रजा केन्द्रित विकास ही सुशासन का मूल तत्व है। प्रजा की भागीदारी के बिना किसी भी राज्य में प्रगति नहीं देखी। हमारे सभी महापुरुषों ने इस तथ्य को अच्छी तरह से जाना और समझा। सदियों पहले ऐसे ही एक महानायक को छत्रपति शिवाजी महाराज के नाम से जाना गया। वह एक कुशल प्रशासक और समर्थ शासक थे। उन्होंने सुशासन के आधार पर समाज की स्थापना कर इस देश के इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। चन्द्रकांत पाटकर : शिवाजी ने सभी वर्गों को राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत किया और एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया जिसमें सभी विभागों का सृजन एवं संचालन कुशलता से हो। पुर्तगाली बायसराय काल द विसेंट ने महाराज की तुलना सिकंदर और सीजर से की है। दुर्भाग्य से कुछ भारतीय इतिहासकारों ने शिवाजी को समुचित सम्मान नहीं दिया। भारत केवल सौदागरों के खेल का मैदान बन गया। यह कटु है, पर सत्य है। शिवाजी महाराज की राजनीति और राज्यनीति मानो अमृत और संजीवनी दोनों हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज की शासन व्यवस्था एक सुप्रयास, सिद्ध किया हुआ महाप्रकल्प ही है। श्री अनिल दवे ने इस पुस्तक में हमें उसी से परिचित कराया है। राकेश गौतम : शिवाजी एक विचार है, एक कार्यशैली है, वे इस देश की सनातन संस्कृति के उद्घोषक हैं। न केवल नेताओं या शासकों के लिए यह पुस्तक पठनीय है अपितु भारतवंशी युवाओं और बाल पाठकों को भी ऐसी कृतियाँ अध्ययन करने योग्य हैं।

भूषण स्मृति समारोह

29 एवं 30 नवम्बर 2016 को छतरपुर में सम्पन्न



साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल द्वारा 29 एवं 30 नवम्बर 2016 को छतरपुर में भूषण स्मृति समारोह आयोजित किया गया। साहित्य के माध्यम से इतिहास का ज्ञान होता है। बुन्देलखण्ड के युगपुरुष महाराजा छत्रसाल का जीवन चरित लालकवि के छत्रप्रकाश से ही ज्ञात होता है। भूषण कवि जब बुन्देलखण्ड आये तो महाराजा छत्रसाल ने उनकी पालकी को स्वयं कंधा देकर सम्मानित किया। ऐसे महान शासक छत्रसाल की गौरव गाथाओं से नई पीढ़ी को अवगत कराना चाहिए। मध्यप्रदेश सरकार ने छत्रसाल महराज के जीवन चरित को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का काम करने का संकल्प लिया है। उसी की कड़ी में यह आयोजन है। यह विचार महिला एवं बाल विकास राज्यमंत्री श्रीमती ललिता यादव ने मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् की साहित्य अकादमी के भूषण स्मृति समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में व्यक्त किये। अध्यक्षता वरिष्ठ कवि सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' ने की।

समारोह के प्रारंभ में माँ सरस्वती की प्रतिमा के पूजन-अर्चन उपरान्त अतिथियों का स्वागत पुस्तक भेंटकर साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. उमेश कुमार सिंह ने किया। आयोजनं की सहयोगी प्रसंग नर्मदा आयोजन समिति की ओर से प्रवीण गुप्त द्वारा अतिथियों का स्वागत किया गया। समारोह का संचालन डॉ. बहादुर सिंह परमार ने किया।

साहित्य अकादमी निदेशक ने स्वागत वक्तव्य के साथ 'भूषण और छत्रसाल' विषय की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। साहित्य अकादमी द्वारा प्रदेश में संचालित अकादमी की पत्रिका 'साक्षात्कार' का महाराजा छत्रसाल पर केन्द्रित अंक तथा डॉ. बहादुर सिंह परमार की पुस्तक 'बुन्देली लोकसाहित्य' का लोकार्पण अतिथियों द्वारा किया गया। लोकार्पण उपरान्त महाराजा छत्रसाल शोध संस्थान, छतरपुर के अध्यक्ष भगवत शरण अग्रवाल, सचिव राकेश शुक्ला 'राधे' तथा सरस्वती शिशु मंदिर के प्राचार्य अकादमी निदेशक डॉ. उमेश कुमार सिंह का सम्मान पुष्पगुच्छ, शाल,

श्रीफल से किया गया एवं वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद्, टीकमगढ़ के अध्यक्ष डॉ. हरिविष्णु अवस्थी ने अकादमी द्वारा भूषण और छत्रसाल विषय पर विद्यार्थियों की निबंध प्रतियोगिता तथा रचना पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसके विजेताओं को पुरस्कार स्वरूप प्रमाण पत्र अतिथियों द्वारा प्रदान किये गये। विजेता छात्रों में निबंध प्रतियोगिता में सर्वज्ञा श्रीवास्तव प्रथम, प्रतीक्षा चतुर्वेदी द्वितीय तथा साक्षी खरे तृतीय रहीं। रचना पाठ में कु. विभा मिश्रा प्रथम, सतपाल सुल्लेरे द्वितीय तथा चन्द्रवीर खरे ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इन प्रतियोगिताओं का निर्देशन श्रीमती मधुरिमा श्रीवास्तव द्वारा किया गया।

'भूषण और छत्रसाल' पर आयोजित संगोष्ठी में आलेख वाचन करते हुए डॉ. हरीसिंह घोष ने कहा कि भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के संरक्षण हेतु संकल्पित महाकवि भूषण का प्रादुर्भाव ऐसे कठिन समय में हुआ जब देश की अस्मिता, स्वाभिमान, आस्थाओं, मान्यताओं और विश्वासों पर लगातार आघात हो रहा था। कवि भूषण को संरक्षण देने वाले वीर शिवाजी तथा महाराज छत्रसाल भारतीय अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे थे। इस विषय पर अपनी बात रखते हुए टीकमगढ़ से पधारे डॉ. हरिविष्णु अवस्थी ने कहा कि कवि भूषण अपने काल की जन-भावनाओं को व्यक्त करने वाले रचनाकार हैं। उन्होंने अनेक उद्धरण देकर महाराज छत्रसाल और भूषण के गहरे आत्मीय संबंधों को रेखांकित करते हुए कहा कि भूषण जीवन के उत्तरार्ध में छत्रसाल के सान्निध्य में ही रहे। डॉ. बहादुर सिंह परमार ने अपने वक्तव्य में भूषण के राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रदेय को रेखांकित करते हुए कहा जिस समय हिन्दी कविता दरबारी संस्कृति के संरक्षण में रहकर कामिनी के केशों की कमनीयता में उलझकर रह गई थी, उस समय भूषण जन सरोकारों से संपृक्त होकर, देश की दशा से उद्वेलित होकर राष्ट्रीयता का भाव जागरित कर रहे थे। संगोष्ठी में प्रो. एन.के. जैन, डॉ. एच.सी. शर्मा, श्रीमती मालती श्रीवास्तव, प्रो. एस.के. छारी आदि ने भी अपने विचार रखे। अध्यक्षीय वक्तव्य में सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' ने कहा कि छत्रसाल और भूषण अपने काल के बड़े कवि हैं इसलिए दोनों में गहरी मित्रता का भाव दृष्टव्य होता है। आज छत्रसाल द्वारा प्रतिपादित न्याय, कूटनीति, राजनीति पर चलने की आवश्यकता है।

समारोह के द्वितीय चरण में वरिष्ठ कवयित्री श्रीमती मालती श्रीवास्तव की अध्यक्षता में रचना पाठ किया गया। जिसका संचालन व्यंग्य के जाने माने हस्ताक्षर संजय खरे 'संजू' द्वारा किया गया, जिसमें सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष', श्री प्रकाश पटैरया 'हृदयेश', सुरेन्द्र शर्मा 'सुमन', श्रीमती प्रभा विधु, श्रीमती मधुरिमा श्रीवास्तव, वीरेन्द्र खरे 'अकेला', अवनीन्द्र खरे, श्रीमती संतोष पटैरया, देवेन्द्र चतुर्वेदी, विजय शुक्ला आदि ने काव्य पाठ कर उपस्थित लोगों की प्रशंसा अर्जित की। अंत में कृतज्ञता ज्ञापन स्थानीय संयोजक प्रवीण गुप्त द्वारा किया गया।

- प्रभारी प्राचार्य,
शासकीय नवीन महाविद्यालय,
राजनगर जिला छतरपुर (म.प्र.)

'साक्षात्कार' पत्रिका प्राप्त हुई। सभी आलेख अच्छे हैं। ऐतिहासिक आलेख 'गणेश शंकर विद्यार्थी' एवं महावीर प्रसाद जी द्विवेदी' के आलेख विचारों की प्रसंगिकता का दर्शन करवाते हैं। सुखदेव व्यास, 18, जहाजगली, उज्जैन (म.प्र.)।

'साक्षात्कार' पूर्णांक 442 आद्योपांत पढ़ा। हमेशा की तरह (संपादकीय) 'जागो फिर एक बार' लाजवाब है। 'साक्षात्कार' में डॉ. शिव दयाल जी का वरद् व्यक्तित्व और कृतित्व उद्भाषित होता है। धरोहर में आई सामग्री अमूल्य-निधि लगी। आलेख भी सार्थक व समीचीन। कहानी/लघुकथा/व्यंग्य/कविता भी स्तरीय तथा आज के वातावरण को उद्घाटित करने में सफल। समीक्षा भी सटीक और मुक्तमन से हुई हैं। 'साक्षात्कार' को स्तरीय बनाए रखने के लिए आपका संपादन, संपादकीय-पूर्णता का प्रतीक है।—राधिका देवड़ा, तराना जिला-उज्जैन (म.प्र.)।

'साक्षात्कार' का प्रत्येक अंक जिस तरह प्रभावित करता है, वैसे ही इस अंक ने भी प्रभावित किया। सम्पादकीय में आपके विचारों से सभी पाठकों को बहुत कुछ सोचने-समझने की प्रेरणा मिलेगी। धरोहर में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और कुबेरनाथ राय के निबंध, कालजयी हैं। दोनों ही हिन्दी के पुरोधा हैं। श्री अवनिजेश अवस्थी का आलेख : अटलजी का आत्म संघर्ष, बहुत ही शिद्दत से मन को छू गया। अटल जी का सम्पूर्ण जीवन सतत् संघर्ष, समर्पण, भारत के विकास के लिए उनका चिन्तन आदि से सभी वाक़िफ हैं। माननीय अटल बिहारी वाजपेयी भारत माँ के सच्चे सपूत तो हैं ही बल्कि विश्व के सर्वमान्य राजनीतिज्ञ हैं। कविता/कहानी/लघुकथा/समीक्षा आदि सब कुछ बहुत ही सार्थकता लिए हुए हैं।—अब्दुल सत्तार अन्जान, नयापुरा, तराना, जिला-उज्जैन (म.प्र.)।

'साक्षात्कार' के मई अंक से ज्ञात हुआ कि इस पत्रिका के सम्पादन का उत्तरदायित्व आपने ग्रहण कर लिया है। प्रसन्नता हुई। बधाई। 'साक्षात्कार' से मैं काफी समय पूर्व से जुड़ा रहा हूँ और समय-समय पर पूर्व सम्पादकों ने मेरी काव्य रचनाएँ इस गरिमामय पत्रिका में प्रकाशित की हैं।—अखिलेश 'अंजुम', 2-झ-4, दादाबाड़ी, कोटा (राजस्थान)

'काशीफल' कथा का शीर्षक इससे अच्छा हो ही नहीं सकता। कहानी के पात्रों में डॉ. दुबे मूल पात्र हैं, जिनकी मानसिकता को उभारने में कथाकार सफल रहा है। वर के पिता के शालीनता पूर्ण वाक्य डॉ. दुबे के लिए अत्यन्त मार्मिक सिद्ध होते हैं— ''प्रोफेसर साहब हम काशीफल खाने वाले भला आपकी बराबरी कैसे कर सकते हैं?'' यह एक साधारण सा वाक्य जिसने पिता और पुत्री दोनों को आत्महत्या

के लिए विवश कर दिया। दूसरों का उपहास करने वालों का ऐसा भयानक अन्त भी सम्भव है। कहानी का संदेश भी यही है। कथाकार कथा का संदेश पाठकों तक पहुँचाने में सफल रहा है। कथाकार श्री गौतम जी को बधाई।— हरिश्चन्द्र भार्गव, 1, शास्त्रीनगर, शिवपुरी (म.प्र.)

'साक्षात्कार अंक 439, जुलाई 2016 गुरु पूर्णिमा अंक तथा अंक 440, अगस्त 2016 दो पुस्तक प्राप्त हुईं। धन्यवाद। दोनों पुस्तक काफी ज्ञानप्रद, प्रेरणादायक हैं। दीपक शर्मा का लेख 'तस्मै श्री गुरुवे नमः' बहुत बढ़िया है। यह उक्ति काफी ज्ञानपूर्ण है कि 'प्रत्येक अच्छे कार्य का एक समय होता है और समय पर होने वाले कार्य से ही मनुष्य की उन्नति होती है।' दोनों पुस्तकों के लेख, कहानी, कविताएँ सभी पठनीय हैं। पुस्तक का सम्पादन काफी भावपूर्ण तथा ज्ञानार्जन से पूर्ण है। परिश्रम श्लाघनीय है। कुशल सम्पादन हेतु साधुवाद।—बी.एस. शांताबाई, प्रधान सचिव-कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, 178, फोर्थ मेन रोड, चामराजपेट, बेंगलूर-18 (कर्नाटक)

'साक्षात्कार' जैसी उच्च साहित्यिक पत्रिका में आपने मेरी रचना 'रामचरित मानस मेरी दृष्टि में' को प्रकाशित कर मुझे प्रोत्साहित किया, धन्यवाद।—रूपनारायण काबरा, ए-438, किशोर कुटीर, वैशाली नगर, जयपुर (राजस्थान)

'साक्षात्कार' पत्रिका प्राप्त हुई। इसके लिए धन्यवाद। मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य जगत में यह पाठकों को पसन्द आयेगी।—महामहिम केशरी नाथ त्रिपाठी, राज्यपाल-पश्चिम बंगाल शासन, राजभवन, कोलकाता।

नवम्बर के अंतिम दिन आया 'साक्षात्कार' का लिफाफा, देखकर लगा, कदाचित् नवम्बर का अंक दोबारा आ गया है। सुखद आश्चर्य हुआ कि वह दिसम्बर का अंक निकला। दिसम्बर जिसके शुरू होने में अभी भी कुछ घंटे बाकी थे। मुद्दत बाद अंक यथामाह ही नहीं कुछ पहले ही पाठक के हाथों में पहुँचना शुरू हुआ है। इस प्रबन्ध कौशल और प्रशासन क्षमता को सलाम करता हूँ। साहित्य अकादमी से मेरा पुराना रिश्ता है। प्रदेश की पत्रिका का प्रदेश के नायक छत्रसाल पर एकाग्र अंक पढ़कर गर्व, प्रसन्नता और संतोष हुआ। भूषण के लिए शिवाजी और छत्रसाल दोनों ही बराबरी के क्षौत्र पुरुष थे। उनके सामने द्विविधा थी कि किसकी सराहना करूँ। लेकिन हमने भूषण को ही नहीं छत्रसाल की भी उपेक्षा की है। उम्मीद है, डॉ. देवेन्द्र दीपक की लेखनी से ऐसे ही पैने सवाल छत्रसाल की उपेक्षा को लेकर भी उठाए जा सकेंगे। हमारे प्रदेश ने छत्रसाल के प्रति अपनी कृतज्ञता को कभी उस तरह रेखांकित नहीं किया जिस तरह महाराष्ट्र ने शिवाजी के प्रति रेखांकित किया है। कैलाश मड़वैया, छत्रसाल पर जिनका आलेख अंक में है, ज़रूर अपनी रचना क्षमता और संगठन कुशलता के जरिए इस दिशा में सक्रिय हैं। पर हम जानते हैं कि राजनीतिक सम्बल के बिना ऐसी सक्रियता को सीमित सुफल ही मिलता है।—जयकुमार जलज, रतलाम (म.प्र.)

'साक्षात्कार' का दिसम्बर 2016 वाला अंक अनुपम तथा एक गंभीर ऐतिहासिक दस्तावेज है। यह संक्षेत्रीय इतिहास' (रीजनल हिस्ट्री) की एक छानबीन भी है। सबालटर्न और संक्षेत्रीय ऐतिहासिक दिशाएँ भी आधुनिक से समकालीनता को निखार-सँवार रही हैं। आपका नगतिदीर्घ संपादकीय भी उत्तेजक है। इतिहास तथ्यों के दीप्त दीपकों के आधार पर बहस, खोज, व्याख्या तथा अंततः वैचारिक विमर्श दैदीप्यमान करता है। आपने भी मौजूदा सत्ता और राजनीति के बरक्स नया ऐतिहासिक संवाद शुरू किया है। इतिहास, विचार और आवश्यकताओं से संचालित होकर 'स्वतंत्रता' तथा राष्ट्र की 'दिशा' देता है। अच्छा है कि नई डिबेट से रिनाँसा, या धुँधलका या संघर्ष, उपजेगा और जनता भी हज़ार कंठों, हजार मुट्ठियों वाली होकर रहेगी। महाराज छत्रसाल पर जो 'साक्षात्कार' का अंक है उसे बहुल एक ऐतिहासिक संवाद में तब्दील करते हुए 'पुस्तक' बनाए ताकि यह सनद बन जाए—बहुआयामी।— डॉ. रमेश कुंतल मेघ, 3, ग्राउंड फ्लोर, फेस-3, स्वास्तिक विहार, मनसादेवी काम्पलेक्स, पंचकुला (हरियाणा)

'साक्षात्कार' का छत्रसाल पर केन्द्रित अंक मिला। अंक बहुत अच्छा है। अश्विनी कुमार दुबे, इन्दौर (म.प्र.)

अंक 441, सितम्बर 2016 अक्टूबर में मिला। माँडने और रंग संयोजन से सज्जित नेत्रलुभावन मुखपृष्ठ ने बार-बार आकर्षित किया। कुल 120 पृष्ठों में से सर्वाधिक 79 पृष्ठ बेहद तसल्ली से पढ़ने के हैं। सिर्फ 40 पृष्ठ कविता, कहानी आदि को मिले हैं। हरि जोशी व्यंग्य 'शुद्ध हिन्दी में बता दूँ' व्यंग्य नहीं, वरन् हम हिन्दी प्रेमी और हिन्दी भाषियों की अंतर्वेदना है। नवल जायसवाल की कविता 'योनियों की गाथा' एक साँस में पढ़ डाली, फिर-फिर कई बार पढ़ी। शिल्पा शर्मा की कहानी 'मन की' प्रवाहपूर्ण है, जिसमें महिलाओं की गृहणी रूप में कोल्हू के बैल-सी त्रासदी दर्शाते हुए अंत में जाकर समाधान को भी पुष्ट किया गया है। महेश शर्मा की 'कैदी की रोटी' भी सुंदर कहानी है। सरकारी पद पर बैठे गरीब की रोटी छीन लेने वाले रोटी को तरसते गरीब प्रजापन ही तो हैं, फिर भला रोटी का मालिक गरीब स्वयं को जागीरदार क्यों न समझे। अकादमी की विस्तृत गतिविधियाँ आगे भी देते रहें।—आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर, 'श्री प्रमोदस्थान', 569-बी, सेठीनगर, उज्जैन (म.प्र.)

आपके द्वारा सम्पादित 'साक्षात्कार' के चार अंक जुलाई, अगस्त, सितम्बर तथा अक्टूबर 2016 प्राप्त हुए। मैं आभारी हूँ। मेरी दृष्टि में ये चारों अंक महत्वपूर्ण बन गये हैं क्योंकि जुलाई के सम्पादकीय में आपने भारतीय : हिन्दू जीवन दर्शन को स्पष्ट कर दिया है। यह आज की पत्रकारिता में साहस का कार्य है। साथ ही गुरु-शिष्य परम्परा पर दो-दो लेख प्रकाशित हुए हैं। इस विषय की महत्ता स्पष्ट है। इस संदर्भ में ही गुरुजी गोलवलकर जी के व्यक्तित्व का वर्णन हो गया है। डॉ. सदानन्द गुप्त का ललित, निबन्ध- 'आषाढ़ के प्रथम दिवस' के माध्यम से साहित्य एवं आज के जीवन की गंभीर समीक्षा कर रहा है। तात्पर्य यह है कि डॉ. गुप्त आलोचक ही नहीं, ललित निबंधकार भी हैं। अगस्त अंक का सम्पादकीय तो क्रांतिकारियों पर है-इससे राष्ट्रीय चिंतन सामने आ जाता है। डॉ. बृजबिहारी कुमार ने वार्तालाप में पूर्वोत्तर की समस्याओं को रखा है क्योंकि वे उधर रहे हैं-आचार्य के रूप में। क्रांतिकारी आंदोलन तथा एक प्रमुख दार्शनिक क्रांतिकारी योगी अरविन्द पर प्रस्तुत लेख भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के एक प्रमुख अध्याय को रख रहा है। सितम्बर अंक में गणेशशंकर विद्यार्थी तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख जो भाषा की महत्ता पर हैं, इनसे अपनी भाषा और अपने साहित्य की महत्ता को रेखांकित कर रहे हैं। प्रो. रामेश्वर मिश्र 'पंकज' तथा प्रो. कुसुमलता केडिया- दोनों भारत राष्ट्र को विवेचित कर पाठकों को राष्ट्रचिंतन से जोड़ते हैं। आपने अक्टूबर 2016 में सर्वश्री कुबेरनाथ राय तथा डॉ. रमानाथ त्रिपाठी ने रामकथा तथा राम के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को विश्लेषित कर इस अंक को समृद्ध कर दिया है। समग्रत : 'साक्षात्कार' आपके सम्पादन में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के सशक्त एवं प्रखर स्वर को प्रभावी रूप में गुंजित करने में सफल हैं।—डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, बी-3, त्रिभुवन विनायक रेसीडेंसी, (श्रीराम अपार्टमेंट के सामने), बुद्ध कॉलोनी, जी.पी.ओ. पटना (बिहार)

महाराज छत्रसाल पर केन्द्रित दिसम्बर अंक संग्रह योग्य है। सम्पादकीय तथा प्रकाशित सभी आलेखों से छत्रसाल के सम्बन्ध में प्रेरणादायक और रोचक तथ्यों की जानकारी मिली। इस कम्प्यूटरीय युग में युवा पीढ़ी को गौरवशाली अतीत से जोड़े रहने के प्रयास निरन्तर होते रहना चाहिए। जहाँ तक मेरी जानकारी है छत्रसाल पर ऐसा व्यवस्थित विशेषांक इति पूर्व किसी स्तरीय पत्रिका ने नहीं निकाला है। दिल्ली में जनसंघ (अथवा भाजपा) के प्रयास से छत्रसाल स्टेडियम का निर्माण हुआ है। उनके नाम पर और भी स्मारक बनाना चाहिए।—प्रो. रमानाथ त्रिपाठी, 26, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली

जब भी 'साक्षात्कार' का नया अंक इन रचनात्मक हथेलियों में स्थान पाता हैं अँगुलियाँ आपस में संवाद करती है कि जितनी शीघ्रता से हो श्वेत पटल पर शब्दों को आमंत्रित कर विराजमान कर दूँ। हर शब्द अपने साथ

किसी न किसी शब्द को साथ लेकर आ जाते हैं और अपनी आत्मा में बसे अक्षर की मौलिक आकृति दे नया समन्वय रच डालते हैं। मेरे सामने साक्षात्कार नवम्बर 2016 का अंक सामने है। आवरण मेरा वृक्ष लक्ष्य है। मुझे मिट्टी का दीपक, दीपक में रखे तेल और बाती दिखाई नहीं दे रहे हैं। यहाँ तक प्रज्वलन होती ज्वाला भी लक्षित नहीं है। केवल प्रकाश जनित लौ ही मेरी लक्ष्य परिधि में है। मैं उसे देख रहा हूँ और अपने अन्तःकरण में प्रकाश का प्रवेश करा रहा हूँ। यही वह साधन है जो मुझे इस पत्र की रचना करने में प्रेरित कर रहा है।—नवल जायसवाल, प्रेमन, बी-201, सर्वधर्म, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)

कितनी सटीक/सशक्त/सार्थक दो-टूक अभिव्यक्ति दी गयी है.. 'भारतीय साहित्यकारों की श्रेणियों दृष्टया', गहन अध्ययन-चिंतन-मीमांसोत्तर ही, ऐसी कहनि संभव है। क्या शिरोधार्य बात कही गयी है! कि ''प्रज्ञावान एवं प्रतिभाशाली लेखकों को'.. कि 'वे' प्रकाश की ज्योति उद्दीप्त करने में ही, अपनी कलम का उपयोग करेंगे। 'पंच निष्ठान्तर्गत', राष्ट्र/मनुष्य/श्रम/समय और सत्य' को जिस तरह पिरोया/गूँथा गया है, और उनके एकात्म-अंतरंग में, 'सत्य' के अनुसंधान/'शिव' के अनुकरण। और, 'सुन्दरम' के दर्शन, वरीयता दे— श्रेष्ठी-भाव से अलंकृत किया है, तथा, जो निस्संदेह 'साहित्य का सर्वस्व' हो सकता है.. उद्घृत किया गया है, धारणेय एवं अति-प्रशंसनीय है। 'भारत में कभी भी गंगा-यमुनी संस्कृति नहीं.., यह दृष्टि, साफ़ और स्पष्ट होनी चाहिए।' यह स्पष्टोक्ति कर, उन तथाकथित बड़बोले साहित्यकारों। धर्म-निरपेक्षी बुद्धिजीवियों (वैसे, 'धर्म'.. सापेक्ष ही होता है-अपने-आपमें सापेक्ष है 'धर्म') और सत्ता-लालायित। सत्ता-च्युत नोट-बटोरूओं पर, करारा प्रहार है, कालोचित, जिससे, संभवतः 'वे' तिलमिला जायें, किंतु कुछ विद्रूप नहीं कर पायेंगे। आगे, सम-सामयिकता परिप्रेक्ष्य, जो कहा गया है.. 'वस्तुत, प्रगतिशीलता.. कितना सार्थक, आत्मिक सौंदर्य-बोध से युक्त और भारतीय परम्परा.. साहित्यकार को आत्म-मंथन करना होगा। अनिवार्यतः चिंतनीय-मननीय एवं मूर्त-करण्येय है। (दो) भारतीय मन को जो व्याख्यायित किया गया है, पूरा, दत्तचित्त हो पठनीय/ग्रहणीय है। (तीन) नेमिसाराण्य की भूमिका में, मध्यप्रदेश को, जो-जैसा उल्लेखित किया गया है, अकाट्य सत्य है। ''विमर्शों की निरन्तर.. साहित्यिक और सांस्कृतिक अर्थबोध है।'' यह कहकर, मध्यप्रदेश को गौरवान्वित ही किया गया है। ''सर्वेक्षण का यह परिणाम मर्मान्तक है।'' ''साहित्यकार को औचित्य की दृष्टि.. पैदा करनी पड़ेगी।''.. यह व्यक्त कर, सत्य को उद्घाटित ही तो किया है।—उमेश नेमा, भोपाल।

जयललिता : ऐसा क्या था स्व. जयललिता के व्यक्तित्व में? 68 वर्षीया जयललिता ने 140 फिल्मों में अभिनय किया। फिल्म 'इज्जत' हिंदी में थी। वे हिंदी बोलती, समझती थीं, सिमी ग्रेवाल के साथ अपने एक प्रसिद्ध इंटरव्यू में उन्होंने हिंदी गीत 'आ जा सनम, मधुर चांदनी...' की पंक्ति भी गुनगुनाई थी। द्रविड़ अस्मिता, पेरियार के आत्मरुझान आंदोलन से जन्मी द्रविड़ राजनीति, तमिल भाषा के लिए चरम संघर्ष और फिल्मी नायकों के गहरे असर में तमिल राजनीति शेष देश से हमेशा कुछ अलग ही रही है। पेरियार (मूल नाम ई.वी.रामास्वामी नाइक्कर) ने 1925 में वैदिक रीति-रिवाज, संस्कृत, ब्राह्मण-प्रभुत्व के विरुद्ध निषेध आंदोलन शुरू किया और उत्तर भारत की परंपराएँ थोपने के लिए हिंदू-हिंदू का विरोध चरम तक पहुँचाया। यहाँ तक कि सप्तपदी पर आधारित विवाह पद्धति को अस्वीकार कर केवल 'आत्म सम्मान-विवाह' को प्रचलित किया। उन्होंने पूरे तमिलनाडु में भारत से अलग होने की मुहिम चलाई और घोषित किया कि द्रविड़ समाज का उत्तर भारत, हिंदी, संस्कृत, ब्राह्मण समाज से कोई संबंध नहीं है। इतना तीव्र था यह आत्मसम्मान आंदोलन कि तमिलनाडु में ब्राह्मणों को नौकरी मिलना कठिन हो गया और वे केन्द्र सरकार की नौकरियों में जाने लगे। मंदिरों का सरकारी अधिग्रहण हुआ, जिनके प्रमुख अनीश्वरवादी बनाए गए। ऐसे में द्रविड़ अतिवाद, पृथकतावाद एवं उत्तर भारत के प्रति तीव्र घृणा के प्रवाह को जयललिता ने रोका। उन्होंने समसेतु संरक्षण में महती भूमिका निभाई। ऐसे व्यक्तित्व को साहित्य अकादमी अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

डॉ. भाई महावीर : जीवन में सिद्धांतों से कभी अडिग न होने की शिक्षा और सादगी उन्हें विरासत में मिली। पिता के आदर्शों को अपनाने के साथ उन्होंने जीवन भर समाज सेवा और परोपकार के मार्ग को अपनाया। इस सबकी प्रेरणा उन्हें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से मिली। संघ कार्य करते हुए उन्होंने अर्थशास्त्र में एम.ए. करने के साथ एल.एल.बी. और पी-एच.डी. की। देश विभाजन से पूर्व ही वे डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में व्याख्याता नियुक्त हो गए थे। विभाजन के बाद वे दिल्ली में अध्यापन करने लगे। इसके साथ ही उनकी राजनीतिक पारी भी शुरू हुई। वे भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में एक थे। इसी के साथ वे जनसंघ के प्रथम महासचिव भी बने। 1968 में दिल्ली प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष बनने के साथ ही वे इसी वर्ष दिल्ली से पहली बार जनसंघ की ओर से राज्यसभा सदस्य भी बने। उसके बाद 1978 में उन्हें दोबारा राज्यसभा सदस्य बनाया। वे साहित्य के न केवल प्रेमी थे, अपितु उनके अंदर मानवीय संवेदना कूट-कूट कर भरी थी। ऐसे महामानव को श्रद्धांजलि।

जवाहरलाल चौरसिया 'तरुण' : मध्यप्रदेश ही नहीं संपूर्ण हिंदी जगत में अपने व्यक्तित्व और कृतित्व की उजली छाप छोड़ने वाले श्री तरुण अब हमारे बीच नहीं रहे। उन्होंने हिंदी साहित्य जगत में रचना के अनेक सोपान गढ़े। अनेक पुस्तकों का संपादन किया और जबलपुर के विभिन्न शिक्षण संस्थानों को नया आयाम दिया। अभी-अभी जबलपुर 'गजेटियर' उनके द्वारा तैयार किया गया है, जिसे साहित्य अकादमी छाप रही है। उन्हें आत्मीय श्रद्धांजलि।

अनुपम मिश्र : अनुपम मिश्र एक सच्चे गाँधीनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, पर्यावरणविद, साधक और श्रेष्ठ भारतीय थे, उनका निधन एक अपूरणीय क्षति है। वे सुरुचिपूर्ण सहृदय संवेदनशील सपूत थे। देश के श्रेष्ठ कवि पं. भवानी प्रसाद मिश्र के वे छोटे बेटे थे। उनका जाना गहरा आघात है। पूरा परिवार संस्कारी और श्रेष्ठ है। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

दिसम्बर 2016 में प्राप्त पुस्तकें

1. राष्ट्रकवि डॉ. ब्रजेश सिंह और महाराणा प्रताप-साहित्य
   लेखक : जितेन्द्र कुमार सिंह 'संजय'
2. बेटा दूध करूला करियौ
   लेखक : दीनदयाल तिवारी 'बेताल'
3. जागो जागो शेर हिंदी के
   लेखक : दीनदयाल तिवारी 'बेताल'
4. आखिरी पीढ़ी
   लेखक : नंदकिशोर कुशवाहा
5. चैताली
   लेखक : अमर गोपलानी
6. ओझल होता सच
   लेखक : सदाशिव कौतुक
7. पांचजन्य का नाद चाहिए
   लेखक : डॉ. रामवल्लभ आचार्य
8. अंतरदीप
   लेखक : देवेन्द्र जैन
9. खुजराहो की आत्मा
   लेखक : देवेन्द्र जैन
10. शेष-अशेष
    लेखक : उमेश नेमा
11. सदियों पहले मोहन जोदड़ों में
    लेखक : रश्मि रमानी
12. गीली मिट्टी के रूपाकार
    लेखक : रीतादास राम
13. शक्ति सौरभ
    लेखक : अशोक सिंह राजपूत
14. इस पानी में आग
    लेखक : विनय मिश्र
15. शवयात्रा
    लेखक : स्वदेश भारती
16. औरत नामा
    लेखक : स्वदेश भारती
17. पिता दर पिता
    लेखक : रमेश बक्षी
18. सूख नदी के पानी काहे
    लेखक : रामसखा नामदेव
19. सप्तक के कवि, उपन्यासकार
    लेखक : स्वदेश भारती
20. सदगुरु का तुलसीदास
    लेखक : डॉ. विवेकी राय
21. मानस संगम
    लेखक : बद्री नारायण तिवारी

साहित्य अकादमी के प्रकाशन

कविता

वृक्ष की शिराओं में (द्वि.सं.)
प्रमोद त्रिवेदी 15.00

नरक को कभी शर्म नहीं आती
हरीश पाठक 15.00

मैथिली मंगल
शुकलाल प्रसाद पाण्डेय 12.00

अंगारों की सदियाँ
गौरीशंकर लहरी 00.75

चयनिका
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' 20.00

खिड़कियों पर लगे काग़ज़
हरिशंकर अग्रवाल 15.00

जारी हैं लेकिन यात्राएँ
विनोद निगम 40.00

सिर्फ आँख भर रोशनी में
शशि निगम 40.00

एक तीली बची रहेगी
प्रतापराव कदम 35.00

जो कुछ भी घट रहा है दुनिया में
नासिर अहमद सिकंदर 30.00

काल चित्र
प्रयास जोशी 35.00

यहाँ इस शहर में
भानुप्रकाश 30.00

नाटक

चिंदी मास्टर (अप्राप्त)
राजेश जैन 12.00

कहानी

उन्नीस साल का लड़का
शशांक 14.00

औपचारिक अन्तःकरण (द्वि.सं.)
राजेन्द्रकुमार मिश्र 12.00

सरेआम
हरीश पाठक 12.00

जंग
ए. असफल 40.00

जुमराती मियाँ
विनोद मिश्र 40.00

जो सहमत हैं सुने
यशवंत व्यास 30.00

भाषण, आलेख, निबन्ध संग्रह

प्रेमचन्द आज (व्याख्यान)
सं.डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय 15.00

भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य (खंड 1)
सं. भागीरथ मिश्र 50.00

भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य (खंड 2)
सं. डॉ. विनयमोहन शर्मा 70.00

पानी, पानी, पानी (निबन्ध)
कमला प्रसाद चौरसिया 15.00

निरंजनी सम्प्रदाय के हिन्दी कवि
डॉ. सावित्री शुक्ल 50.00

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य और तुलसीदास
डॉ. भगीरथ मिश्र 5.00

अनुष्टुप (पं. सूर्यनारायण व्यास का साहित्य)(अप्राप्त)
सं. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय 20.00

अक्षर अनन्य
सं. अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव 30.00

भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान
डॉ. हीरालाल जैन 60.00

रीवा राज्य का इतिहास (अप्राप्त)
पं. गुरूरामप्यारे अग्निहोत्री 20.00

मध्यप्रदेश के संगीतज्ञ
प्यारेलाल श्रीमाल 100.00

समय में कविता (रचना समीक्षा)
सं. प्रभाकर श्रोत्रिय 15.00

अन्वय
सं. प्रभाकर श्रोत्रिय 50.00

महाकवि केशव
डॉ. बृजेश द्विवेदी 15.00

भगवान महावीर का बुनियादी चिंतन (24 वाँ सं.) (अप्राप्त)
डॉ. जयकुमार जलज 22.00

पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन
प्रेम भारती 15.00

इक़बाल विमर्श
सं. पूर्णचन्द्र रथ 150.00

हमारा इक़बाल
सं. ममनून हसन खाँ 60.00

अल्लामा इक़बाल : बच्चों के लिए नज़्में
सं. फ़ज़ल ताबिश 15.00

निगाह
सं. पूर्णचन्द्र रथ 40.00

Sakshatkar/R.N.I.30993/76
ISSN : 2456-1924



साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)

मध्यप्रदेश माध्यम/2016